Sammelan Patrika 1923

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क १—भाद्रपद, १९८०

संपादक

वियोगीहरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २) प्रत्येक ≡)

विषय-सूची

परीक्षार्थियों को सूचना

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओं की, संवत् १९८१ की, विवरण-पत्रिका छप रही है, शीघ्र ही प्रकाशित होगी। जो विद्यार्थी परीक्षा देना चाहें उन्हें तुरन्त -)॥ का टिकट भेज कर मँगा लेना चाहिए। इससे परीक्षा सम्बन्धी सब बातें ज्ञात हो जायँगी।

परीक्षा मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !

ब्रजमाधुरीसार

संपादक—श्रीवियोगीहरि

ब्रजभाषा साहित्य हिन्दी-साहित्य का प्राण है। ब्रजभाषा साहित्य आदि से लेकर अन्त तक भक्तिरस से सना हुआ है। प्रायः जितने कवियों ने ब्रजभाषा में कविता की है, वे सभी उच्च कोटि के भक्त थे। ब्रजसाहित्य के माधुर्य्य के सम्बन्ध में अधिक कहना व्यर्थ है। वास्तव में, यह साहित्य इतना बड़ा है कि सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करना हरेक मनुष्य का काम नहीं, अतएव इस सुधारस को जनसाधारण के पास पहुँचाने की इच्छा से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने ब्रजमाधुरी-सार नामक संग्रह प्रकाशित किया है।

इस संग्रह की **चार विशेषताएं** हैं, सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय श्रीसत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है, ऐसा एक भी प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि न होगा जिसकी माधुरी का रसास्वादन पाठकों को इस संग्रह में न कराया गया हो। दूसरी विशेषता यह है कि बहुत से ऐसे कवियों की रचनाओं का इसमें समावेश हुआ है जो आजतक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुई है, तीसरी विशेषता यह है कि इस संग्रह में सम्पादक महोदय ने यथेष्ट टिप्पणी लगा दी है, जिससे थोड़ी हिन्दी जानने-वाले पाठक भी आसानी से इसको समझ सकते हैं और चौथी विशेषता यह है कि प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित्र और उसकी रचनाओं का सूक्ष्म परिचय भी पाठकों को करा दिया गया है, जिससे पाठकों को यह मालूम हो सकता है कि किस प्रकार की परिस्थिति में ऐसे उच्च कोटि के कवियों और कविताओं का विकास हुआ था।

संक्षेप में, जो मनुष्य एक बार भी आद्यन्त इस ब्रजमाधुरीसार को पढ़ जायगा, वह आजीवन इस माधुरी को न भूलेगा। पुस्तक ६३२ पृष्ठों में समाप्त हुई है। सुंदर सचिक्कण काग़ज़; कपड़े की जिल्द। मूल्य केवल २)

मन्त्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन की पुस्तकें

सुलभ-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति ने सुलभ-साहित्य-माला निकालने का निश्चय किया है। इसका उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी प्रेमी इन ग्रन्थ-रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है और यह बहुत ही आवश्यक है कि प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों का उचित आदर किया जाय, क्योंकि इसकी निरपेक्षता से हमारी वर्त्तमान तथा भावी साहित्यिक उन्नति में भारी बाधा पड़ने की संभावना है। अभी हम लोगों ने वर्तमान साहित्य का संगठन ही क्या किया है? यदि हमें अपने साहित्य में प्राण संचार करने की आवश्यकता है, तो प्राचीन ग्रन्थों की खोज करनी तथा बिना लाभ के लोभ के उन्हें प्रकाशित करना भी अनिवार्य है। इसी सिद्धान्त पर सम्मेलन ने इस माला का गूँथना निश्चित किया है। इसमें न केवल प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ ही प्रकाशित होंगे, वरन् वर्तमान विषयों के भी उच्च कोटि के ग्रन्थ निकला करेंगे। दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं:—

१—भूषण ग्रन्थावली (द्वितीय संस्करण)

(सटिप्पण)

भला भूषण कवि की ओजस्विनी कविता को कौन पसंद न करता होगा। अत्युक्ति न होगी यदि यह कहें कि यह हिन्दी में वीर-रस के एक मात्र कवि हैं। साथ ही साहित्य के आचार्य भी। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट

को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान श्री० पं० राम० नरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥=)

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का सामना करना पड़ा, वर्तमान परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इस पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली ही पुस्तक ही है। 'मिश्रबन्धु विनोद' रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

भारतगीत

लेखक—श्री० पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठक जी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा ? आपकी गणना वर्तमान हिन्दी साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन का संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठक जी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना

साहित्य मर्मज्ञ श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६००० संवत् पूर्व से ५०० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा, जहां से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का संदेश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास-विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ संख्या ४०६, मूल्य केवल १॥)

भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु,

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुंदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य २)

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११] भाद्रपद, संवत् १९८० [अङ्क १

वंदना

पद

नमो नमो जय श्रीगोविंद ।

आनँद मय व्रज सरस सरोवर, प्रगटित बिमल नील अरविंद ॥

जसुमति नीर नेह नित पोषित, नवनव ललित लाड़ सुखकन्द ।

व्रजपति तरनि प्रताप प्रफुल्लित, प्रसरित सुजस सुवास अमन्द ॥

सहचरि जाल मराल सङ्ग रँग, रसभरि नित खेलत सानन्द ।

अलि गोपीजन नैन गदाधर, सादर पिवत रूप मकरन्द ॥५॥

—श्रीगदाधर भट्ट

राजुल-विवाह

[ले०—कविवर श्री देवीप्रसाद जी 'प्रीतम']

सोरठा

परम मनोहर धाम, नाम द्वारका जगमगै।
बसैं जहां घनस्याम, जदुबंशिन के मुकुट मणि॥
नेमिनाथ योगीश, तिहि कुल कुल-भूषण भये।
तिन चरनन धरि शीश, कहत चरित वैराग्यमय॥

छंद

तिनके ललित ललाम चरित चित्त दीजिये।
शरबत सुधा समान सुजन रस ये पीजिये॥
जीवन का लाभ लूट सुजस जग में लीजिये।
सायुज्य मुक्ति पाय सफल जन्म कीजिये॥
आनन्द में निमग्न मगन मन से गाइये।
रसिकों के बीच बैठिये, सुनिये, सुनाइये॥

प्रभु के चरित हैं आज धरातल पै छा रहे।
चैतन्य शक्ति से हैं दिलों में समा रहे॥
मंदिर जहां तहां हैं पताके उड़ा रहे।
जैनी गिरन्थ आपकी कीरति हैं गा रहे॥
प्रसिद्ध है समुद्रविजय नाम बाप का।
तीर्थङ्करों में बाइसवां है नाम आपका॥

जैन साहित्य में "राजुल-विवाह" एक अनुपम रत्न है। जैनियों के बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथजी परम योगेश्वर थे। यह राज्य घराने में उत्पन्न हुए थे। जब इनका विवाह जूनागढ़ के महाराज की पुत्री 'राजुल' के साथ होने लगा, तब यह बारात से ही विरक्त हो, तप करने के लिये, भाग गये। पीछे राजकुमारी राजुल ने भी इनकी तपश्चर्या का अनुसरण किया और तीर्थङ्कर नेमिनाथ की कृपा से वह परम पद की अधिकारिणी हुईं। यह कथा हमारे सहृदय "प्रीतम" जी ने बड़े ही भाव पूर्ण चमत्कार के साथ अंकित की है।

—सम्पादक

बचपन से आप एक दया के स्वरूप थे।
रंग सांवला था आपका अँग अँग अनूप थे॥
रानी थी बाग बाग औ फूले से भूप थे।
सूरज स्वरूप ईश की छाया थे, भूप थे॥
छुटपन से ही चरित्र थे सब रस-भरे हुए।
सुनकर रसिक जनों के जिन्हें दिल हरे हुए॥

बढ़ने लगी कला जो दिनों दिन ही माह की,
नरनाह फिक्र करने लगे सुत-विवाह की।
मन में महीप ने यही अभिलाष चाह की,
कन्या कुलीन कोई मिलै रस्मोराह की॥
जूनागढ़ेन्द्र के यहां संयोग मिल गया,
सम्बन्ध शुभ समझ के दिलेशाह खिल गया।

सजने लगी बरात, हुईं सब तयारियाँ,
पहुँचे नरेंद्र द्वार पै चढ़ चढ़ सवारियां।
नौशाह के स्वरूप पै हो हो के वारियां,
विद्युच्छटा अटा पै खड़ी गावैं गारियां॥
मुख पर से राई नौन उतारैं निरख के वर,
तृण तोर दें अशीश न इनको लगै नज़र।

चिहरे पै सिहरे और थी फुलमौर छवि छनी,
चंदन की खौर भाल पै टिपकी वह रससनी।
औंठों पै पीक पान की कज्जल की वह अनी,
चंपक वरन से वागे की रंगत अधिक अनी॥
कंकन कलाइयों में जड़ी हीरों की कनी,
प्रभुजी बना बने, वहां राजुल बनी बनी।

सज-धज के साथ राछ[1] कुंवरजी की फिर चली,
थाठाट-बाट राजसी कोतल औ अरदली।
जगमग से पंचशाखों की शोभा हुई भली,
शहनाइयों की शान दिखाते गली गली ॥
तीर्थङ्कर ऋषभ के दिवाले उतर बना,
करने लगा मुनीन्द्र से कर जोड़ वन्दना।

माया-विलास भोग से प्रभुजी बचाइये,
निर्वाण पद को पाऊं मैं वह दिन दिखाइये।
मुक्तों ने जो पिये हैं प्याले पियाइये,
अपने समान नाथ दया कर बनाइये ॥
चरणों में आपही के य चित नित लगा रहै,
वैराग्य की झलक से झलाझल जगा रहै।

निकले वह झूमते हुए प्याला अजब पिया,
रंगत को उनके ताड़ पिता ने तुरत लिया।
गज पर सवार हाथ पकड़ कर उन्हें किया,
जूनागढ़ ओर हुक्म चलाचल का फिर दिया ॥
पहुँची नगर बरात तो इक धूम मच गई,
दुलहिन के घर जो चाहिये रचना वह रच गई ॥

मंडप विचित्र चारु चँदोवे अँगन तने,
मुतियों के गुच्छ स्वच्छ लटकते थे रसमने।
रंगीन चित्र रंग भवन में थे कुल बने,
सेवा में हाथ जोड़े थे सेवक खड़े घने ॥
बारात के वह आने की ज्योंही खबर मिली,
राजुल जनक-जननि के दिलों की कली खिली।

१ बरात (बुंदेलखंडी)

राजीव लोचना वह जो राजुल थी मन-चली,
शशि की कला कहूं उसे वा कुंद की कली।
नखसिख से अंग-अंग थे सांचे में वह ढली,
विकसित से ओंठ उसके थे गुलकंद की डली॥
फूली कुसुम कली सी ललक दिल ही दिल ललो,
क्या जानती थी आये हैं छलने मुझे छली।

लज्जित सी भौन कौन में बैठी थी रसभरी,
अरगन की देख महँदी हुई दिल ही दिल हरी।
पायन महावरी औ बिंदुल भाल छवि छरी,
उर में झलक छुलक के छलक सेंट दृग परी॥
बढ़ चढ़ के नैन औ चित्त से ढहरी वह नोक की,
मग लग गई वह तकने चढ़ावे की चौक की।

जीवन में यह घड़ी है अजब ही उमंग की,
इक जन्मी डिगरी होती है प्रीतम सुसंग की।
दम्पति-हृदय से निह निकल गुप्त गंग की,
दोआबा बन के चलती है धार एक रंग की॥
तशबीह सूझती नहीं कुछ इस तरंग की,
बुध को बहाती लिह है इस विह तंग की।

टीका की आई साइत और परछन की वह घड़ी,
शहनाइयों के शोर से इक खलबली पड़ी।
दूल्हा के साथ छत्र चमर मोरछल छड़ी,
अगवान छोड़ते हुये गुलनार फुलझड़ी॥
मंडप-भवन को चलने लगे गति गयंद से,
हमदम कदम उठाने लगे मंद मंद से।

गज पर सवार वर ने सुना तरवरों की ओट,
करुणा का शब्द वह कि लगी जिससे दिल पै चोट।
टुकड़े जिगर के होने लगे दिल भी लोटपोट,
समझे कि हां ढकी हुई पत्तोंमें कुछ है खोट॥
पूँछा महावती से कि, ये चिल्ला रहे हैं कौन ?
बोला दबी ज़बान से कुछ देर रह के मौन।

❧

कल वलि पशू यह यज्ञ में कुल काम आयँगे,
पंडे प्रवीण इनको परोसैं पकायँगे।
पंगत विचित्र करके यह खुशियाँ मनायँगे,
वारातियों को मांस यह खुश हो खिलायँगे॥
जीवन-अवधि इन्हों की यही एक रात है,
होते प्रभात जान पै इनके कुघात है।

❧

सुन कर यह सोचने लगे ठंडी सी भरके आह,
कैसे यह संगदिल हैं सियहकार दिल सियाह।
उफ़ इतनी जाने मेरे ही कारण हों क्या तबाह,
कैसा करूँ मैं हाय रे कैसे बुझे यह दाह॥
लानत है ऐसी शादी पै धिक्कार यह विवाह,
बिहतर है छोड़ छाड़ यह जंगल की लूँ मैं राह।

❧

जाकर किसी पहाड़ पै जीवन बसर करूँ,
यह षटविकार शत्रु जो हैं इनको सर करूँ।
घरबार अपना छोड़ हर एक दिल में घर करूँ,
आंसू बहा के कर्म पै दामन यह तर करूँ॥
निज रूप लख के जीव यह अपना निमग्न हो,
मिथ्या जो स्वप्न देख रहा हूं यह भग्न हो।

❧

मन की लगाम दूसरी जानिब को मोड़ दूं,
झगड़े तमाम आलमे फ़ानी के छोड़ दूं।
ममता औ मोह की कड़ी जंजीर तोड़ दूं,
रिश्ता यह जीवदीन का अर्हन से जोड़ दूं॥
आवागमन के चक्र का बंधन न फिर रहै,
कर्मों अकर्म का न निशां अपने सिर रहै।

उठकर कहा, बिठादे महावत तू फील को,
मैं नापसंद करता हूं जीवन ज़लील को।
दृढ़ दिल में कर लिया इसी अपनी दलील को,
सन्मुख बरातियों के चले तोड़ शील को॥
गज से उतर के सामने गिरनार चढ़ गये,
वैराग त्याग भाग में मुनियों से बढ़ गये।

हसरत की आग सीनों में जलती ही रह गई,
बन कर धुत्रों सी आह निकलती ही रह गई।
ग़ैरत गिलेशियर सी उबलती ही रह गई;
सारी बरात हाथों को मलती ही रह गई॥
सच्ची लगन को रोकनेवाला ही कौन था,
बुत से बने खड़े थे जहां जो था मौन था।

कुंडल उतार कानों से अम्बर अलग किये,
कर केश लुंच भेष मुनी के बदल दिये।
प्याले ऋषभ के बख़्शे अमर मंत्र के पिये,
अलमस्त बन के मौज से जग में सदा जिये॥

दोहा

गिरि पर कमलासन लगा, भये आत्म-लवलीन।
अब राजुल के चरित कछु, सुनिये परम प्रवीन॥

राजुल-कथा

मंडप-भवन ने जब यह समाचार सब सुने,
कर कर विलाप मात पिता सब ने शिर धुने।
दुलही के शोक मोह हुए सब से शतगुने,
परवार ने विचार अनेकों ही चित चुने॥
विकसित कमल पै ओस सवेरे ही पड़ गई,
राजुल असीम शोक से धरणी में गड़ गई।

नीरज नयन से झड़ने लगीं अश्रुकण-झड़ी,
छतियों पै टूट फूट वही बन के सतलड़ी।
बढ़ने प्रवाह शोक लगा छिन घड़ी घड़ी,
गुइयों के कान में कहीं इसकी भनक पड़ी॥
भावज समेत बैठीं वह राजुल को घेर कर,
समझाने लग गईं उसे इस ओर फेर कर।

ननदीजी, सावधान हो धीरज हिये धरौ,
चिंता की ज्वाल में न पतंगी सरिस जरौ।
वीरन का मुख चितै रहौ रो रो न घर भरौ,
बाबुल अधीर होते हैं तुम सोच जिन करौ॥
अनरीत ऐसी आजलों देखी न हम सुनी,
बनकर बना बने अहो अधबीच में मुनी।

कुसमय समझ सुलोचना अब शांति को गहो,
पत्थर जिगर पै धर के प्रिया वज्र हो रहो।
जो जो दिखाय दुःख दुसह कर्म सब सहो,
लाजोलिहाज छोड़ के अज्ञा जो हो कहो॥
आयुस तुम्हारी स्वामिनी, हम शीश पै धरैं,
रुख देख देख आपकी सेवा सकल करैं।

गुइयाँ, विपत तुम्हारी है यद्यपि पहार री,
इस दुख अपार का नहीं कुछ वार पार री।
मुख का न दूध छूटा न तन की सम्हार री,
इक जन्म जान लो कि गईं जुवना हार री॥
छतियां दरक रही हैं तुम्हें दुख में देख कर,
औषधि है कौन वीर, वरन कर्म रेख पर।

बोली है, कर्म भोग अवस उस पै वस नहीं,
मैं सब समझ रही हूँ कि दुनियां में रस नहीं।
पर देखिये तो जिनकी कि भींजी भी मस नहीं,
देखा विचार उनने री कुछ जस-अजस नहीं॥
गुनदोष देखे बिनही मुझे त्यागकर गये,
विस्मित हूँ सुन के कैसा यह अनुराग कर गये।

ठाना है मान उनने मनाने ज़रा चलें,
दर्शन के हेत इसही बहाने ज़रा चलें।
पहुँचे हैं कौन ठौर ठिकाने ज़रा चलें,
देखें तो क्यों है आप रिसाने ज़रा चलें॥
चलकर दया को उनकी ज़रा हम परेख लें,
कैसे कृपालु मुनि हैं वह सूरत तो देख लें।

गदगद गिरासे कहते हुए हो गई खड़ी,
लीला यह लख सहेलियों में जान सी पड़ी।
पुरजन सुजन ससासे गये देख दुख-घड़ी,
निकली भवन से अपने वह छाती को कर कड़ी॥
गिरिजा स्वरूप शिव के समागम को वह चली,
बस्ती बरात सब में पड़ी एक खलबली।

(शेष आगे)

काव्य

[ले०—श्रीयुत चक्रधर झा]

परिभाषा

व्य की भिन्न भिन्न सामग्री के समूह अथवा उनके सम्मेलन से जो वाक्य गद्यात्मक वा पद्यात्मक सिद्ध होते हैं, उनको काव्य कहते हैं। 'कुङ्' धातु से कवि शब्द बना है। कुङ् का अर्थ है शब्द, और कवि का अर्थ है शब्द को नियमानुसार रचने वाला। अतएव कवि की रचना ही काव्य कहलाती है। गद्यात्मक तथा पद्यात्मक दोनों ही रचना काव्य है, क्योंकि 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' अर्थात् जिस वाक्य में रस है वही काव्य है। रसहीन वाक्य काव्य नहीं कहला सकता; क्योंकि रस काव्य की आत्मा है। जिस प्रकार जीवित मनुष्य की देह में प्राण रहने पर वह चल फिर सकता है, और प्राण निकल जाने पर देह स्थूल होकर पड़ी रहती है, ठीक यही दशा काव्य की भी है। "लोकोत्तर आनन्द" की प्राप्ति जिससे हो, वह वाक्य (रचना) सत्काव्य कहलाता है। अतएव काव्य गद्यात्मक हो, किम्वा पद्यात्मक, दोनों में रस का होना आवश्यक है।

काव्य के भेद

साधारणतः काव्य के दो भेद हैं, श्रव्य और दृश्य। काव्य के सर्वगुणयुक्त कथा को श्रव्य काव्य कहते हैं। श्रव्य काव्य के पढ़ने तथा सुनने से आनन्द प्राप्त होता है, परन्तु दृश्य काव्य में यह बात नहीं है। दृश्य काव्य नाटक को कहते हैं। नाटक को रंगभूमि में देखने से ही आनन्द प्राप्त होता है। नट लोगों की क्रिया तथा काव्य के सर्वगुणयुक्त अभिनय को नाटक कहते हैं। दोनों प्रकार के काव्य की उपयोगिता अत्यन्त विस्तृत है। समाज के लिये नाटक

की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि श्रव्य काव्य की। प्रत्यक्ष घटनात्मक होने के कारण दृश्य काव्य का प्रभाव विशेष स्थायी होता है। अतः इसकी आवश्यकता और लाभ बढ़कर है। समाज की कुरीतियों को संस्कृत करने का विशेष श्रेय दृश्य काव्य को ही है। जिस समय समाज की कुरीतियों का चित्र रंग-भूमि में दिखलाया जाता है, उस समय दर्शक अपनी कुरीतियों का सच्चा चित्र सामने देखकर समाज सुधार के आवेश से प्रेरित हो कुरीतियों का परित्याग करने के लिये संकल्प कर लेता है। उसकी नसें फड़क उठती हैं, और वह समाज को ठीक रास्ते पर ले चलने के लिये उद्योग करने लगता है। भारतवर्ष में नाटक अत्यन्त प्राचीन काल से खेला जाता है और इसके आद्याचार्य्य भरत मुनि हैं। यूरोपीय काव्य-साहित्य में नाटक का उद्भव स्थान इटली माना जाता है, और वहां के नाटकों की प्रौढ़ावस्था एलिजावेथ का समय है। उसी समय में शेक्सपियर ने नाटक लिखे थे। शेक्सपियर के नाटकों में नवों रस अत्यन्त समीचीनता से समावेशित हैं, और उनमें मानवीय मनोविकारों का अत्युत्तम और स्वाभाविक वर्णन है। एतदर्थ शेक्सपियर के नाटक अत्यन्त प्रभावोत्पादक और चित्ताकर्षक हैं। संस्कृत में भी अनेक नाटककार हुए हैं, जिनका कवित्व और पाण्डित्य अगाध था और उनके नाटक अपरिमित आनन्द-प्रदायक हैं।

श्रव्य काव्य का बाहुल्य प्रायः प्रत्येक साहित्य में है। संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में श्रव्य काव्य की अगणित संख्या है। हिन्दी-साहित्य में ऐसे उत्तम उत्तम श्रव्य काव्य के ग्रन्थ हैं, जिनको पढ़ने से अपरिमित मनोज्ञता का परिचय मिल जाता है, और हृदय आनन्द से उद्वेलित हो उठता है।

काव्य की प्राचीनता

काव्य लिखने की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन समय से है। भारतवर्ष में सर्व प्रथम संस्कृत भाषा बोली और लिखी जाती थी। संस्कृत साहित्य की सबसे प्राचीन पुस्तक वेद है। वेद में वसन्त-

मदमत्त-कोकिला तथा कमनीय कामिनी के विभ्रमजाल का वर्णन नहीं है, वरन् उसमें मानव-जीवन की सार्थकता तथा सदाचरण के सत्परिणाम का कथन है। वैदिक काल भारतीय सभ्यता की बाल्यावस्था है। अतएव उसमें बालक की तोतली बोली है, न कि प्रमत्त युवक का प्रेमालाप।

रामावतारकाल भारतीय सभ्यता की प्रौढ़ावस्था है। उस समय का प्रसिद्ध काव्य रामायण है। रामायण में शृंगार और शान्ति रस के छोटे छोटे समभाव से हैं। परन्तु महाभारत-काल भारतीय सभ्यता की जीर्णावस्था है। महाभारत में, मानव जीवन में, सत्य भाषण को उतना श्रेय नहीं दिया गया है। महाभारत में कूट-नीति की विशद व्याख्या है। किसी प्रकार से स्वार्थ सिद्धि हो जाना ही उस समय का आदर्श था। युधिष्ठिर जैसे सत्यभाषी भी, स्वार्थ भाव से प्रेरित होकर 'हतोऽश्वत्थामा नरो वा कुञ्जरो वा' कहने को विवश हुए। किन्तु रामायण-काल के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र तथा राजर्षि भरत के चरित्र-गाम्भीर्य का पाठ करने से हृदय आनन्द रस में आप्लावित होने लगता है। अस्तु।

भारतवर्ष में काव्य-रचना अत्यन्त प्राचीन काल से होती आयी है। जब से भारतवर्ष में संस्कृत भाषा का शैथिल्य हो गया, तभी से कई भाषाएँ बोली जाने लगीं और प्रत्येक का भिन्न भिन्न साहित्य-निर्माण हुआ। हमारी हिन्दी भी उनमें से एक है, जो वर्त्तमान समय में राष्ट्र-भाषा के पद से विभूषित हो गई है। हिन्दी के काव्य-ग्रन्थ बहुत हाल के बने हुए हैं। इस भाषा का प्रथम ग्रन्थ 'पृथ्वी राज रायसा' माना जाता है, और उसके बाद भिन्न भिन्न काव्यात्मक पुस्तकें रची गई हैं। तुलसी और सूर, देव और बिहारी तथा पद्माकर और भूषण-काल हिन्दी कविता के परमोज्ज्वल काल हैं। इन कालों में बहुत से प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिनकी रचना उत्तम और आनन्दप्रद है।

हिन्दी काव्य की रचना ब्रज-भाषा में की गई है। ब्रज-भाषा अप्रतिम कोमल और मनोज्ञ भाषा है। कविता के लिये यह भाषा

अत्यन्त उपयोगिनी है। व्रजभाषा की कविताओं का माधुर्य्य पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। विशेषतया हिन्दी-काव्य-ग्रन्थ प्रसाद और माधुर्य्य गुणों से परिपूर्ण हैं। किन्तु वीरकवि भूषण तथा सूदन आदि कतिपय कवि-रत्नों ने अपनी ओजमयो रचनाद्वारा हिन्दो साहित्य को ओज गुण से रिक्त रहने से बड़ी बहादुरी से बचा लिया है। भूषण की प्रत्येक कविता ओज गुण से भरी हुई है। किन्तु तुलसी, सूर, देव, पद्माकर और बिहारी आदि सुकवियों की सूक्तियाँ माधुर्य्य और प्रसाद गुणों से सम्पन्न हैं, जिनको पढ़ने से पाठक गहरे सौन्दर्य-सागर में डुबकियाँ मारने लगते हैं, और कविता-माधुर्य्य से उनकी रसना अलौकिक आमोद की मधुरिमा का आस्वादन-उपभोग करती है।

काव्य और समाज

समाज से काव्य का अत्यन्त गहन सम्बन्ध है। जिस समाज का जैसा आदर्श है उसके काव्य का भी वही आदर्श होता है। यदि समाज का आदर्श पारमार्थिक विषयों के चिन्तन में हैं, तो उस समाज के काव्य में उनके चित्र रसात्मक वाक्यों में दिखलाये जाते हैं। क्योंकि कवि का मुख्य धर्म यही होता है कि वह काव्य-रचना के समय अपने समाज का आदर्श नष्ट न करे। यद्यपि कवि निरंकुश होता है, परन्तु समाज के आदर्श को नष्ट करने का अधिकार कवि को नहीं है। उस समय जब समाज की प्रवृत्ति बुरी बात की ओर हो, तो कवि का धर्म है कि वह उस आदर्श का परित्याग कर किसी उत्तम आदर्श की स्थापना करे। उस समय वह निरंकुशता का दोषी नहीं है।

रसात्मक वाक्य होने पर भी जिस कवि की रचना समाज की हितकारिणी नहीं है, तथा जिसका वर्णन नीति संगत नहीं है उसको हम कवि नहीं कह सकते। कवि के कार्य्य का विस्तार हम इतना ही समझ लें कि उसका कार्य्य केवल रसात्मक वाक्य रचना है तो यह पर्य्याप्त नहीं होगा। क्योंकि विद्या की सदुपयोगिता उसमें है

जब विद्वान् रचना-शक्ति-द्वारा जाति की भलाई करे। जब विद्वान् स्वार्थ का परित्याग कर जात्युत्थान के लिये अपना समय व्यय करता है तभी समाज में उसका समादर होता है। समाज की उन्नति के लिये जब कवि वा लेखक किसी महात्मा के चरित्र का चित्र अपने काव्य में अङ्कित करता है, तो जनता उस को पढ़ कर यह समझ जाती है कि मानव-जीवन का उद्देश्य क्षुद्र रूप से जीवन व्यतीत करना नहीं, प्रत्युत् अपने जीवन को महान् बनाने में है। इस कार्य्य में यदि कवि को समाज के आदर्श की सीमा का भी उल्लंघन करना पड़े, तो वह क्षम्य है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के गद्यात्मक तथा पद्यात्मक दोनों ही रचनाएँ समाज-सुधार के साधनों से परिपूर्ण हैं। भारतेन्दुजी ने निश्चय ही अपनी कविता-शक्ति का उपयोग समाज-सुधारात्मक काव्य-रचना में किया है। उनकी कविताओं को पढ़ने से आनन्द प्राप्ति के अतिरिक्त अपने समाज की कुरीतियों का तथा अपनी अत्यधिक अवनत अवस्था का भी पता चल जाता है। उनका 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक मानों समाज-सुधार की संजीवनी बूटी है।

काव्य और पाठक

काव्य और काव्य के पाठकों में क्या सम्बन्ध है, यह विषय अत्यन्त आवश्यक और विचारणीय है। किसी काव्य के पढ़ने के समय पाठक के हृदय में अत्यन्त उल्लास रहता है। यदि काव्य उत्तम हो तो पाठक के पढ़ने की इच्छा और प्रबल हो जाती है। और अन्त में उसका मन ऐसा तल्लीन हो जाता है कि वह उसको बिना समाप्त किये नहीं छोड़ता। इच्छा के प्रबल होने का कारण यही है कि पाठक को उससे अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। किसी कार्य्य को मनुष्य किसी फल-प्राप्ति के लिये करता है। अतएव काव्य पढ़ने का मुख्य उद्देश्य यही रहता है कि ज्ञान प्राप्त हो। किन्तु काव्याध्ययन से जो एक स्वाभाविक आनन्द की प्राप्ति होती है, वह अत्यन्त बहुमूल्य है। इस संसार में आनन्द सभी चाहते हैं। कंगाल और धनी, मूर्ख और पण्डित सभी आनन्द की टोह में रहते हैं।

परन्तु मूर्खों का आनन्द स्वार्थ सिद्धि में है। काव्याध्ययन से जो लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है, उसके सामने स्वार्थ सिद्धि का आनन्द अत्यन्त तुच्छ है।

काव्य में वासन्ती कुसुमों के परिमल का, वसन्त-मदमत्त कोकिलाओं के कलित कूजन का, सायान्ह कुसुम-परिमल मिश्रित-समीरण का तथा मनोहारी प्रकृति-सौन्दर्य का स्वाभाविक विवरण पढ़ कर ऐसा कौन पाठक है, जिसका हृदय आह्लादित नहीं होता है? वस्तुतः कवि की अनूठी सूक्ति को पढ़कर नर-जन्म सफल हो जाता है।

श्रीभारतेन्दु-जयन्ती

छप्पय

जय प्रातःस्मरनीय पूज्यवर हरिश्चन्द्र कवि,
भारतेन्दु रससिन्धु, किधौं कवि कंज-पुंज-रवि;
वल्लभकुल-अनुरक्त, भक्त श्रीराधावर को,
सहृदय, सुधी, सुजान, प्रान या भारत भर को॥

जन्म भूमि को लाल, पियारो देस-दुलारो,
भाषाभरन अमोल, दीन-अँखियन को तारो;
हरीचन्द सो हरीचन्द कवि, सतव्रत धारी,
प्रेम-पुरी को पथिक, दिव्य साहित्य-विहारी॥

जय नाटक-आचार्य्य, आर्य्य-सद्धर्म-उधारक,
सुभ जातीय-विचार चारु स्वातंत्र्य-प्रचारक;
विविध विषय पै बिसद अनेकन ग्रंथ रचे हैं,
अकथ अनूठी उक्तिभाव के चित्र खचे हैं॥

'चंद्रावली' चकोर 'प्रेम पुलवारी' माली,
'प्रेम-माधुरी' मधुप 'भक्तमाला' रसजाली;
जन 'तदीयसर्वस्व' प्रेम को मारग गहिये,
'नमो हरिश्चन्द्राय' भक्ति सों प्रतिदिन कहिये ॥
(कवि कीर्तन से उद्धृत)

स्थायी-समिति का विवरण

तेरहवीं स्थायी-समिति का तृतीय साधारण अधिवेशन रविवार भाद्र शुक्ल ६ संवत् १९८० तदनुसार १६ सितम्बर सन् २३ को सम्मेलन-कार्यालय में ४ बजे सायंकाल से निम्नलिखित सभासदों की उपस्थिति में प्रारम्भ हुआ—

१—श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी
२—श्री प्रो० ब्रजराज
३—श्री पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
४—श्री वियोगीहरि
५—श्री पं० रामजीलाल शर्मा
६—श्री प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव
७—श्री पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी
८—सहायक मंत्री

कार्य-विवरण

१—सर्व-सम्मति से श्रीमान् पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्य विवरण पढ़ा गया, और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—दिल्ली की स्वागत-कारिणी समिति के प्रधान मंत्री का सम्मेलन-तिथि सम्बन्धी पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चित हुआ कि, स्वागत-कारिणी-समिति के मन्तव्यानुसार आगामी चतुर्दश सम्मेलन दिल्ली में फाल्गुन कृष्ण ३, ४, ५, शनिवार,

रविवार, सोमवार, तदनुसार २३, २४ तथा २५ फरवरी सन् २४ की तिथियों में किया जाय।

४—गत अधिवेशन में चतुर्दश सम्मेलन की निबन्ध-सूची में संशोधन करने के लिए जो उपसमिति बनी थी, उसने अपनी संशोधित निबन्ध-सूची उपस्थित की। कुछ हेर फेर के बाद निबन्ध-सूची निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुई—

निबन्ध-सूची

१. दूषित साहित्य से हानि और उसके रोकने का उपाय।
२. समालोचना।
३. हिन्दी-साहित्य की वर्त्तमान दशा।
४. सामयिक समाचार-पत्र।
५. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचना की चर्चा (समालोचनात्मक दृष्टि से)
६. भारतीय पुष्प—वृक्ष और पशु-वर्णन।
७. बाल-साहित्य।
८. सम्पादन-कला।
९. वर्त्तमान कवि-समाज।
१०. स्त्रियोचित साहित्य।
११. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की भविष्योन्नति पर विचार।
१२. हिन्दी-संग्रहालय।
१३. हिन्दी-साहित्य में नायिका भेद और नखशिख वर्णन का स्थान।
१४. दिल्ली का ऐतिहासिक महत्व।
१५. हिन्दी भाषा का रूपान्तर समय समय पर किन किन कारणों से होता रहा?
१६. हिन्दी-लेखकों की मत-विभिन्नता के कारण।
१७. हिन्दी और धार्मिक सुधारक।
१८. अन्य भाषाभाषियों का हिन्दी-प्रेम।
१९. हिन्दी लेखक और प्रकाशक।

२०. हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ और अनुवाद की उपयोगिता।
२१. हिन्दी में मौलिक साहित्य।
२२. कविवर केशव का पाण्डित्य।
२३. हिन्दी पद्य की प्रधान पुस्तकों की व्यापकता।
२४. मुसलमानी राज्यकाल में हिन्दी का आदर।
२५. हिन्दी भाषा में उपन्यास और नाटक।
२६. हिन्दी में राजनीतिक साहित्य।
२७. सिक्ख और हिन्दी।
२८. आर्यसमाज और हिन्दी।
२९. हिन्दी में व्यंग्य साहित्य और उसकी आवश्यकता।
३०. हिन्दी के प्राचीन और नवीन कवियों में भेद।
३१. हिन्दी में गद्य-काव्य।
३२. उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३३. गुजराती साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३४. मराठी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३५. बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३६. तामिल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३७. तैलगू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३८. उड़िया साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
३९. कविता की भाषा।
४०. हिन्दी साहित्य के अभाव और उनकी पूर्ति के उपाय।
४१. हिन्दी में उच्च शिक्षा और उसकी सामग्री।
४२. गोस्वामी तुलसीदासजी के काव्य पर समालोचनात्मक दृष्टि।
४३. न्यायालयों में हिन्दी-प्रचार।
४४. राष्ट्रमिति।
४५. हिन्दी में स्वर-लिपि (Musical Notation)

५—श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी का वह पत्र उपस्थित किया गया, जिसमें उन्होंने अदालतों में हिन्दी-प्रचार की आवश्यकता दिखायी है—

निश्चित हुआ कि श्रीमान् पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी का उक्त पत्र उचित कार्यवाही के लिए श्रीमान् प्रचार मंत्री जी के पास भेजा जाय।

६—श्रीमान् प्रधानमंत्री जी ने सूचना दी कि आगरे के श्रीमान् रामप्रसादजी गर्ग सम्मेलन के स्थायी-सदस्य होना चाहते हैं, इन्होंने नियमानुसार २५०) शुल्क भेज दिया है—

निश्चित हुआ कि यह महानुभाव स्थायी सदस्य बना लिये जायँ।

७—श्रीमान् जयचन्द्रजी विद्यालंकार मंत्री, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वह पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पंजाब प्रान्त में एक हिन्दी-प्रचारक रखने के लिए सम्मेलन से आर्थिक सहायता मांगी है—

निश्चित हुआ कि नियमावली के नियम ४६ के अनुसार लाहौर सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति से आवश्यक व्यय के बाद जो रुपया बचे, उसका आधाभाग पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को दे दिया जाय, और उसी धन से प्रचार का काम आरम्भ किया जाय।

८—श्रीमान् प्रधान मंत्रीजी ने सूचना दी कि मैनपुरी का माथुर चतुर्वेदी पुस्तकालय सम्मेलन से सम्बद्ध होना चाहता है, उसके मंत्री ने नियमानुसार पांच रुपया सम्बद्ध शुल्क भेज दिया है, पुस्तकालय का उद्देश्य हिन्दी पठन पाठन में सहायता करना है—

निश्चित हुआ कि उक्त पुस्तकालय सम्मेलन से सम्बद्ध कर लिया जाय।

श्रीमान् सभापति को धन्यवाद देने के बाद अधिवेशन समाप्त हुआ।

———

हा ! मिश्रजी !!

श्रद्धास्पद श्रीमान् पंडित गोविन्द नारायणजी मिश्र का
स्वर्गवास !
हिन्दी-साहित्य-मंडल के एक अत्यंत देदीप्यमान नक्षत्र का
प्रलय
हिन्दी भारती-भवन का एक सुदृढ़ स्तंभ
गिर पड़ा
सरस्वती के वक्षस्थल को विदीर्ण कर उनका
एक लाल
कहीं चल बसा !

स्वर्गीय पं० गोविन्दनारायण मिश्र
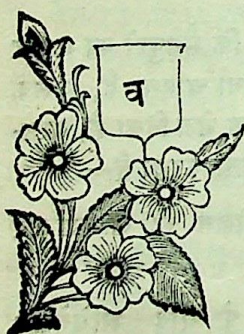
वर्तमान हिन्दी-साहित्य के आरम्भिक युग के प्रकांड आचार्य, संस्कृत के अप्रतिम विद्वान्, प्राकृत भाषा के कुशल कोविद, सनातनधर्म के सुदृढ़ अनुयायी, आचार-निष्ठ, शीलमूर्ति, निरभिमान श्रीमान् पंडित गोविन्द नारायण मिश्र आज पार्थिव शरीर से इस लोक में नहीं हैं। गत भाद्र शुक्ला पूर्णिमा को प्रातःकाल कलकत्ते में मिश्र जी ने इहलीला का संवरण किया। मिश्र जीका संक्षिप्त इतिवृत्त नीचे दिया जाता है।

आप सारस्वत कुमड़िया मिश्र थे। आप के पिता पं० गंगा-नारायणजी मिश्र खत्रियों के पुरोहित होने के कारण कलकत्ते में

आ बसे थे। वहीं कलकत्ते में कार्तिक शुक्ला तृतीया सं० १८१६ विक्रमीय को आप का जन्म हुआ। वहीं आपने शिक्षा पाई और वहीं अपना कार्यक्षेत्र भी बनाया। इधर कई वर्षों से आप काशी-वास करते थे, किन्तु आप की स्वर्गयात्रा उसी नगर में हुई जहाँ कि आप ने जन्म लिया था। यह भी एक ईश्वरीय वैचित्र्य है।

पंडित गोविन्दनारायणजी बड़े ही विद्या-व्यसनी थे। इस व्यसन के कारण आप के नेत्रों की ज्योति भी कुछ कम हो गई थी और डाक्टरों ने अधिक पढ़ने-लिखने से आप को मना भी किया, किन्तु आप आजीवन विद्याध्ययन में बराबर संलग्न रहे। स्मरण शक्ति तो आपकी बचपन से ही बड़ी तीव्र थी। पाँच वर्ष की अवस्था में आप संस्कृत कालेज में भरती किये गये। नौ दस वर्ष की अवस्था से ही आप अध्यापक राममय तर्कालंकार की शिक्षा के कारण संस्कृत में कविता करने लगे थे। सुप्रसिद्ध विद्वान् राय बहादुर पं० राजेन्द्रनाथ विद्याभूषण एम० ए० आप के सहपाठियों में से थे। मिश्रजी ने संस्कृत के साथ साथ प्राचीन हिन्दी-साहित्य और प्राकृत-व्याकरण का भी अध्ययन किया। सन् १८७३ में आप के फुफेरे भाई पं० सदानंदजी मिश्र ने 'सार सुधानिधि' पत्र निकाला। आप उसके सहकारी संपादक हुए। कभी कभी तो आप को उस पत्र का आद्यन्त संपादन करना पड़ता था। इस कार्य के सिवाय 'उचित वक्ता' और 'धर्म दिवाकर' में भी आप के लेख प्रकाशित हुआ करते थे। संवत् १८६१ में एक बड़ी ही गवेषणा पूर्ण पुस्तक लिखी, जिसका नाम 'सारस्वत सर्वस्व' है। उस पुस्तक से यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि आप का पुरातत्त्व से कितना अपूर्व अनुराग था। प्राकृत एवं हिन्दी के व्याकरण संबंधी जटिल प्रश्नों को सुलझा देना तो

आपके बायें हाथ का खेल था। 'हितवार्ता' में आपने विभक्ति-विचार और प्राकृत-विचार नाम के बड़े ही विवेचनापूर्ण लेख लिखे थे। पहला निबंध तो पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुका है। मिश्रजी ने विभक्ति-विचार-लेखमाला में 'जौन बीम्स' महोदय की इस कल्पना का खंडन कर, कि बहुत दिनों तक विभक्ति चिह्नों के लिये स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग होता था और पीछे वे लगातार घिसते रहने से 'ने, से, को, पर, में,' आदि में परिणत हो गये हैं, यह सिद्ध किया कि वे प्राकृत के रूपान्तर हैं। मिश्रजी ने अपने सिद्धान्त को ऐसी ऐसी अकाट्य प्रबल युक्तियों से प्रमाणित किया कि आज तक किसी को उनके सिद्धान्त के खंडन करने का साहस नहीं पड़ा।

आप आलोचक भी एक ही थे। जब स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द जी गुप्त ने 'आत्माराम' के नाम से भारतमित्र में श्रीमान् पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की कड़ी आलोचना की उस समय मिश्रजी ने द्विवेदीजी का पक्ष लेकर 'बंगवासी' में आत्माराम की टें टें लिखकर जो प्रबल प्रत्यालोचना की थी वह उनके तार्किक मस्तिष्क और गवेषणापूर्ण युक्तियों की साक्षी दे रही है। यदि मिश्रजी अपनी यह टें टें लिखकर द्विवेदीजी के पक्ष का समर्थन न करते तो गुप्तजी ने अपने प्रतिभाबल द्वारा उन्हें परास्त कर दिया होता।

मिश्रजी ने कादम्बरी की शैली पर एक बड़ी ही सुन्दर पुस्तक लिखना आरंभ किया था, किन्तु वह अधूरी ही रह गयी। 'वर्ण विवेक' नाम का आपका एक निबंध बड़ा ही उत्कृष्ट समझा गया था। आपने कवि और चित्रकार नाम का एक बड़ा ही उत्कृष्ट भावपूर्ण और मनोहर निबंध लिखना आरंभ किया था, किन्तु वह भी पूरा न हो पाया। आप अपने बहुमूल्य समय को वार्तालाप करने में बहुत

कुछ नष्ट कर देते थे और जो कुछ लिखते थे वह दूसरों के बाध्य करने पर। यही कारण है कि अन्य लेखकों के समान पचासों पोथे न लिख कर मिश्रजी ने इनी-गिनी दो चार पुस्तकें लिखी हैं, किन्तु जो कुछ भी उन्होंने लिखा है वह उनकी अप्रतिम प्रतिभा का परिचायक, प्रकांड विद्वत्ता का प्रकाशक और गंभीर गवेषणा का द्योतक है। मिश्रजी लेखक और वक्ता दोनों ही समान रूप से थे, प्रायः जिसमें लेखनशक्ति होती है, उसमें वक्तृत्व-शक्ति नहीं और जिसमें वक्तृत्व-शक्ति उसमें लेखन-शक्ति नहीं। किन्तु आप इस नियम के अपवाद स्वरूप थे। आप किसी भी विषय पर घंटों धारा प्रवाह सुमधुर भाषण किया करते थे। कई बंगाली विद्वान् आपकी असाधारण वक्तृता सुन कर दंग रह गये थे। आप गुजराती, मराठी, उर्दू और अंग्रेजी में भी थोड़ा बहुत दख़ल रखते थे। संगीत के भी आप प्रेमी थे।

हिन्दी-साहित्य-संसार ने आपका यथोचित आदर नहीं किया। आपको केवल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति बना देना ही पर्य्याप्त नहीं था। उचित तो यह था कि हिन्दी-संसार आपके जीवन के साथ एक ऐसा असाध्य रोग लगा देता कि जिसके कारण आपका आलस्य दूर भागा भागा फिरता और कुछ न कुछ आप अपनी अपूर्व रसवती लेखनी से लिख लिख कर मृतप्राय साहित्य को संजीवनी शक्ति देकर समुन्नत करते रहते।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन के अवसर पर स्वर्गीय श्रीमान् पं० बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने मिश्रजी के संबंध में जो आदर्शसूचक शब्द कहे थे, वे द्रष्टव्य हैं :—

"जिन लोगों ने 'सार सुधानिधि' पत्र पढ़ा है, वे पंडित गोविन्द

नारायणजी मिश्र के गुणों से अनभिज्ञ नहीं है। पिछले दिनों में समाचार पत्रों में आप के जो लेख निकले हैं उनसे आपके अगाध प्राकृत ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। मैं स्वयं आपकी योग्यता से भलीभांति परिचित हूं। ऐसा विद्वान् पुरुष सभापति के आसन को सुशोभित करेगा यह हम लोगों के लिये बड़े ही सौभाग्य की बात है।"

किन्तु हाय! आज न तो वह प्रशंसक ही रहे और न प्रशंसापात्र ही। बदरीनारायण और गोविन्द नारायण की नर-नारायण जैसी जोड़ी आज अस्ताचल को प्रयाण कर गयी। यह वर्ष हिन्दी-संसार के लिये प्रलय का वर्ष है। एक घाव नहीं पुर पाता कि तब तक दूसरा नया घाव उत्पन्न हो जाता है, और यह सभी घाव मर्मघातक एवं हृदय-विदारक हुए हैं।

हम तो चाहते हैं, भले ही हम स्वार्थी कहे जायँ, कि इन पुण्य-कर्मा साहित्य-सेवियों को परमात्मा अभी मुक्ति प्रदान न करे। यह महारथी अभी एक बार फिर भारतवर्ष में जन्म लेकर हम भूले भटके खिन्न विपन्न यात्रियों के मार्ग-प्रदर्शक बनें।

मिश्रजी की वृद्धा सहधर्म्मिणी एवं आपके दौहित्र आदि के साथ हम हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं।

अंग्रेज़ी की आवश्यकता नहीं है।

कुछ काल पहले प्रायः शिक्षित लोगों का यह विचार था कि राष्ट्र संबंधी कार्य विना अंग्रेज़ी के हो ही नहीं सकते। अंग्रेज़ी के भक्त ऐसी ही कई दलीलें पेश करके हिन्दी को राष्ट्र-भाषा पद पर बिठाने से हिचकिचाते थे। और अब भी बहुतों का ऐसा ही ख़याल है। महात्मा गांधी के अदम्य उत्साह और असीम उद्योग के कारण अब यह विचार बहुत कुछ धुंधला सा होता जा रहा है। इसे धूमिल करने का कुछ कुछ श्रेय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को भी है।

हमारी राष्ट्रीय महासभा अब इस बात की प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज उसे अंग्रेज़ी भाषा की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं रही जितनी कि कुछ वर्ष पहले थी। उसके दो सभापतियों-स्वनाम-धन्य हकीम अज़मल खां साहब और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद—ने इस बात का और भी पुष्टीकरण कर दिया है। यह दोनों महोदय अंग्रेज़ी भाषा का बहुत ही परिमित ज्ञान रखते हैं, किन्तु आप लोगों ने हिन्दुस्तानी भाषा द्वारा ऐसे ऐसे जटिल प्रश्नों का समाधान कर दिखाया है जो बड़े से बड़े अंग्रेज़ीदां महाशय से भी होने का नहीं था। हमें यह देखकर बड़ा ही आनन्द हो रहा है और हमें आशा ही नहीं, सुदृढ़ विश्वास है कि, कुछ दिनों में हिन्दुस्तानी भाषा राष्ट्र सम्बन्धी प्रायः सभी कार्यों को पूर्णरूपेण सफल बनाने का श्रेय अपने ऊपर लेगी।

कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष हिन्दी में बोलेंगे !

आगामी कोकानाड़ा कांग्रेस की स्वागतकारिणी के अध्यक्ष, सुना है, अपना भाषण हिन्दी में देंगे। यह शुभ सूचना भारतवर्ष के राष्ट्र-पत्र के मस्तक भाग पर लिखी जानी चाहिये। क्या यह कम सौभाग्य की बात है कि काँग्रेस का स्वागताध्यक्ष, विशेषतः एक मद्रास भाषा-भाषी सज्जन, अपनी वक्तृता को हिन्दी भाषा में अंकित करे। हम आशा करते हैं कि हमारे मद्रासी भाई कांग्रेस में एक ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करेंगे कि कांग्रेस की सारी कार्यवाही हिन्दी उर्दू में छपा करे, हिन्दुस्तानी भाषा में सभापतियों की वक्तृताएँ हुआ करें और उसी भाषा में पत्र व्यवहार भी। यदि इस प्रस्ताव का रूप कांग्रेस की नियमावली में आजाय तो और भी अच्छा हो।

कोकनाड़ा में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

कांग्रेस के साथ ही साथ कोकनाड़ा में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का विशेष अधिवेशन होगा। इस संबंध में हमारे मद्रासी भाई जिस उत्साह से कार्य कर रहे हैं वह सराहनीय है। हमें यह विश्वास हो गया है कि वे इस बात का पूरा अनुभव कर चुके हैं कि बिना एक भाषा के भावैक्यता होनी असंभव है और वह एक राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी ही भाषा हो सकती है। वहाँ के लिये हिन्दी संसार को एक बड़ा ही सुयोग्य और दूरदर्शी सभापति चुनना चाहिये। हमारी राय में तो एक ऐसे सभापति की आवश्यकता है जो साहित्य का जानकार चाहे न हो, किन्तु जिसका हृदय राष्ट्रीय भावों से परिप्लुत हो, हिन्दी व हिन्दुस्तानी का पूर्ण पक्षपाती हो और जो मद्रास प्रान्त में राष्ट्रभाषा प्रचार का एक ऐसा ताँता बाँध दे जो फिर कभी न टूटे। जब तक किसी भाषा का पूर्णरूपेण प्रचार नहीं हो जाता तब तक उसके साहित्य का विकास होना एक प्रकार से असंभव सा है, यह बात हमें न भूलनी चाहिये।

माधुरी—

माधुरी के विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। माधुरी ने एक ही वर्ष में अपने दिव्य माधुर्य्य से हिन्दी-संसार को मोहित, चकित, और लुब्ध सा कर दिया है। यह इसका दूसरा वर्ष है। हमारे सामने दूसरे वर्ष की पहली संख्या उपस्थित है। इसमें तीन रंगीन चित्र, ६ व्यंग्य चित्र और ३१ साधारण चित्र हैं। सुमन-संचय, विज्ञान-वाटिका, पुस्तक-परिचय, महिला-मनोरंजन, साहित्य-सूचना, विविध विषय और चित्र-चर्चा के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध सिद्धहस्त लेखकों के लेख और कुशल शब्द-चित्रकार कवियों की कविताओं का सुमनोहर, सुंदर समुच्चय है। लेख प्रायः हिन्दी के सभी आवश्यक अंगों की पूर्ति करनेवाले हैं। संस्कृत की कोष विद्या, प्रत्यालोचना का उत्तर और संजीवन भाष्य के कुछ अंश की संक्षिप्त आलोचना, यह तीन लेख गंभीर, साहित्यिक, और उच्चस्थान पाने योग्य हैं। अभी माधुरी में प्रकाशित कविताओं के संबंध में हम कुछ नहीं लिख सकते। आशा है, यह होनहार पत्रिका पद्य साहित्य की ओर विशेष ध्यान देगी।

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी के मासिक साहित्य में माधुरी ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। हम इसके सुयोग्य संपादक-द्वय को सप्रेम और सहर्ष बधाई देते हैं।

मतवाला—

संपादक, श्रीयुत महादेव प्रसादजी सेठ; प्रकाशक भी आप ही।

यह पत्र बालकृष्ण प्रेस २३ शंकर घोष लेन कलकत्ता से छपता है। पत्र साप्ताहिक है। प्रति प्याला दो पैसा नक़द लिया जाता है, और एक बोतल का दाम साल भर के लिये २) पेशगी ले लिया जाता है। इस पत्र का सिद्धान्त वाक्य यह है—

"अमिय-गरल, शशिशीकर-रविकर, राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला'॥"

जनाब अकबर के अलफ़ाज में मतवाले के संपादक अख़बार निकालने का उद्देश्य इस तरह बतला रहे हैं :—

"खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुक़ाबिल है तो अख़बार निकालो॥"

मतवाला इस युग की एक चीज़ है। इसकी संपादकीय टिप्पणियां, अग्रलेख, मतवाले की बहक, चलती चक्की आदि शीर्षक बड़ी ही पैनी आलोचना, रँगीली और चुटीली भाषा तथा मतवाली और निराली अदा के साथ देखने में आते हैं। मीठा साहित्यिक हास्य इसका प्राण है। हमें तो इसे पढ़कर पूज्य भट्टजी के 'हिन्दी-प्रदीप' के कतिपय लेखों की झलक मिलती है। यह अपने मीठे नशे की झोंक में बड़े बड़े गंभीर प्रश्नों पर जो निर्भीक आलोचना कर जाता है वह देखते ही बनती है। भगवान् करे हमारे सहयोगी मतवाले का सदा बोलवाला बना रहे।

प्रेम—

ले० श्रीअश्विनीकुमार दत्त; अनुवादक श्रीपुरुषोत्तमदास जी लोहिया; प्रकाशक हिन्दी-मंदिर प्रयाग। पृष्ठ-संख्या डबल फुलस्केप ९०; काग़ज चिकना छपाई रंगीली। मूल्य ।=)

यह छोटी सी पुस्तक वंगीय साहित्य में ऊंचा स्थान पा चुकी है। इस में प्रेम के सिद्धान्त का बड़ा ही सुंदर और विवेचनापूर्ण प्रतिपादन किया गया है। प्रेमतत्व-उपासकों के लिये यह पुस्तक कंठाभरण है। भारतमित्र के संपादक श्रीयुत पं० लक्ष्मणनारायण जी

गर्दे ने इस पुस्तक का जो परिचय लिखा है वह पढ़ने योग्य है। अनुवाद भी साधारणतः अच्छा है।

कथा-कादम्बिनी—

संपादक प्रो० ब्रजराज एम. ए., बी. एस. सी., एल. एल. बी.; प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १६६, छपाई सुंदर, मूल्य ॥।)

इसमें छः सुंदर कथाओं का संग्रह है। यह कहानियाँ अयोध्या-वासी महात्मा श्रीबालकराम विनायक और श्रीबिन्दु ब्रह्मचारी द्वारा संपादित कथामुखी से संग्रहीत की गई हैं। कहानियाँ मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। कहानियों की सामग्री हिन्दू, बौद्ध और जैन साहित्य से ली गयी है। इनके पढ़ने से प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दू-समाज का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। भाषा भी चित्ताकर्षक है। पुस्तक उपादेय है।

निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हो गयी हैं:—

स्वदेशी—

ले० श्रीयुत पं० जगन्नाथजी पाण्डेय बी. ए., एल. एल. बी. पता, भास्कर ग्रंथ कार्यालय, पियरी कलाँ काशी। पृष्ठ संख्या ४८ मूल्य ।)।

लक्ष्मणविनोद—

ले० ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी चांपावत, जयपुर; प्रकाशक भी आप ही हैं। पृष्ठ सं० ३२, मूल्य ।)॥

दानविचार—

ले० श्रीयुत भगवान शर्माजी; पुस्तक, स्थान जरवाह पोस्ट ठीकरी, रियासत धार को लेखक के नामसे लिख भेजने से मिल सकती है।

"साहित्यानन्द"

साहित्य विहार—

लेखक श्रीयुत वियोगीहरि; भूमिका-लेखक, श्रीयुत पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी; प्रकाशक साहित्यभवन लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ सं० १६०; मूल्य ॥=) ।

"मैं वियोगीजी की साहित्य-रसज्ञता और मर्मज्ञता का कायल हूं। आप के जो लेख इस पुस्तक में संग्रह किये गये हैं, उनकी प्रांजल भाषा, चमत्कारपूर्ण वर्णन-शैली, हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव, विषय-गत लालित्य और संदर्भ-सौन्दर्य देख कर प्रत्येक सहृदय विमुग्ध हो सकता है। अत्यंत संतोष की बात है कि बिखरे हुए फूलों को एकत्र करके यह 'हरिचंदन की माला' तैयार कर दी गई है। भगवान् करें इस माला पर भौरों की भीड़ लगी रहे।"

शिवपूजनसहाय, सम्पादक 'मारवाड़ी-सुधार'

नागरी-प्रचारिणी-सभा

(बुलन्दशहर)

स्थानीय सभा की ओर से बुलन्दशहर में तुलसी-दिवस मनाया गया। उपस्थिति लगभग २००० की थी। नगर के प्रायः सभी शिक्षित सज्जन पधारे थे। सभापति का आसन रामायण-प्रेमी खां साहब सैयद अबूमोहम्मद साहब एम० ए०, कलक्टर ज़िला ने सुशोभित किया।

सुपरिंटेंडेन्ट महोदय ने भी अपने अन्य अफ़सरों के सहित पधारने की कृपा की थी।

रामायण के गायन का मुख्य प्रवन्ध किया गया था, जिसका श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बा० बद्रीनारायणजी बी. ए. प्रोफ़ेसर (खुर्जा) और पं० गोपालदत्तजी के व्याख्यान सराहनीय थे। और भी अनेक वक्ताओं के भाषण हुए।

श्रीमान् सभापति महोदय के अपील करने पर "तुलसीरामायण-संघ" स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, और ७५२) के वायदे और २५) नकद चन्दा उक्त कार्य्य के लिये आया। "तुलसीरामायण संघ" का कार्य आरम्भ कर दिया गया है।

बाबूराम शर्म्मा
मंत्री।

आगरे में तुलसी-पुण्यतिथि

नागरी-प्रचारिणी-सभा में विशेष समारोह

यों तो यहां सेन्टजान्स कालेज, वैश्य हाउस, विक्टोरिया हाई स्कूल, डी. ए. वी. हाईस्कूल आदि स्थानों में धूमधाम के साथ उत्सव मनाये गये, किन्तु नागरी-प्रचारिणी सभा में अनुपम समारोह था। १५०० की भीड़ में नगर के सभी श्रेणी के गण्यमान्य विद्वान् रईस, वकील, अधिकारी, प्रोफेसर, शिक्षक, छात्र आदि उपस्थित थे। प्रसिद्ध साहित्य-सेवी कुंवर हनुमंतसिंहजी रघुवंशी के सभापतित्व में कार्य आरम्भ हुआ। अध्यापक रामरत्नजी ने उत्सव की उपयोगिता दिखायी। प्रोफेसर रमण के ललित मधुर गायन होने के बाद काव्य-पाठ हुआ। पं० हरिशङ्करजी शर्मा सम्पादक, 'आर्यमित्र', पं० रामप्रसाद जी सारस्वत, बी. ए. एल. टी., मुं० पन्नालालजी 'प्रेम पुंज' साहित्योपाध्याय पं० गणेशीलालजी आदि ने स्वरचित काव्य पाठ किये। और पं० ब्रह्मानन्दजी विद्यालंकार के प्रभावशाली भाषण हुआ। उपस्थित जनता पर इस उत्सव का बड़ा प्रभाव पड़ा।

मंत्री,
नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।

श्रीनागरी-प्रचारिणी-सभा, बाढ़ (पटना)

कालीप्रसाद पारितोषक

उपर्युक्त परितोषिक बिहार प्रान्त के हिन्दी-लेखकों को सभा की ओर से प्रतिवर्ष प्रदान किया जायगा। सभा की प्रबन्ध-समिति की बैठक द्वारा निम्नांकित विषयों पर यह पारितोषिक सभा के आगामी वार्षिक अधिवेशन के सुअवसर पर दिया जाना स्वीकृत हुआ है।

इतिहास

(१) बिहार प्रान्त के हिन्दी साहित्य का इतिहास। एक सुवर्ण पदक २५) रु०

(२) मगध का इतिहास। १५) रु० का पुस्तक-पुरस्कार।

काव्य

(१) (क) बिहार प्रान्त के किसी प्रसिद्ध तथा मनोरंजक स्थान के प्राकृतिक दृश्य का वर्णन। १०) रु० का पुस्तक-पुरस्कार। या (ख) बिहार प्रान्त के किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति का वर्णन। सभा की ओर से एक ५०) रु० का "विशेष कालीप्रसाद पारितोषिक" निम्नलिखित विषय पर देना निश्चित हुआ है, जो केवल सं० १९८० के लिये होगा।

विषय

(१) बिहार तथा बंगाल के बौद्धकालीन वाणिज्य का इतिहास इस विषय पर बिहार प्रान्त के अतिरिक्त अन्य अन्य प्रान्त के सुलेखकों को भी अपना अपना लेख भेजने का अधिकार है। लेख भेजने की अवधि १५ दिसम्बर तक होगी। आशा है, सुलेखकगण उपर्युक्त पारितोषिक को सफल बनाने की चेष्टा करेंगे।

निवेदक
रामेश्वरीप्रसाद "राम"
मंत्री।

सद्दान

बम्बई के सुप्रसिद्ध व्योपारी श्रीमान् सेठ शिवनारायणजी नेमाणी जे. पी. (J. P.) महोदय ने मारवाड़ी-सम्मेलन द्वारा संस्थापित मारवाड़ी हिन्दी पुस्तकालय कालबा देवी रोड, बम्बई को अपने पौत्र के शुभ विवाह के उपलक्ष में १५५२) पुस्तकें खरीदने के निमित्त दानस्वरूप प्रदान किये हैं। श्रीमान् सेठजी का यह सत्कार्य प्रशस्य और स्तुत्य है। हिन्दी-संसार की ओर से आप को बधाई।

पुस्तकों का पुष्कल दान

श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस के अध्यक्ष श्रीस्वर्गीय सेठ खेमराजजी के सुपुत्र श्रीनिवासजी ने अपने यहां की प्रकाशित सब पुस्तकों की एक एक प्रति मारवाड़ी हिन्दी पुस्तकालय कालबा देवी रोड, बम्बई को दानस्वरूप दिया है। अतः पुस्तकालय आप को धन्यवाद देते हुए दूसरे पुस्तक-विक्रेताओं को आप के अनुकरण करने का प्रार्थी है।

रामकान्त त्रिपाठी, प्रकाश पुस्तकाध्यक्ष

धन्यवाद !

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्थायी पुस्तकालय के लिये इस मास में निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। प्रेषक महोदयों को धन्यवाद !

संख्या	पुस्तक	विषय	लेखक	प्रकाशक	दाता
१	महिला महत्व	साहित्य	शिवपूजन सहाय	जित्तू प्रसाद राम सुन्दर ५५ सुकियास्ट्रीट कलकत्ता	शिवपूजन सहाय
२	युद्ध की २५०० बातें	इतिहास	श्यामाचरण वर्म्मा	अभ्युदय प्रेस, प्रयाग	अभ्युदय प्रेस
३	मालवीयजी और पंजाब	राजनीति		"	"
४	कर्मवीर	साहित्य	कृष्णकान्त मालवीय	"	"
५	रामायणीय कथा	साहित्य	भगवानदास हालना	"	"
६	निबन्ध नवनीत	"	प्रतापनारायण मिश्र	"	"

७	सिराजुद्दौला	इतिहास	भगवान दीन पाठक	अभ्युदय प्रेस प्रयाग	अभ्युदय प्रेस
८	हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	साहित्य	रामनरेश त्रिपाठी	हिंदी मंदिर प्रयाग	हिन्दी मन्दिर प्रयाग
९	मधुर मिलन	साहित्य	जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	पुस्तक भवन १८३ हरिसन रोड	पं० जगन्नाथ प्र० चतुर्वेदी
१०	अर्थ विज्ञान	समाजशास्त्र	मुक्ति नारायण शुक्ल	आदर्श कार्यालय कानपुर	आदर्श कार्यालय
११	सरल गीता	दर्शन	लक्ष्मीनारायण गर्दे	हिं० पुस्तक भवन १८१ हरिसन रोड	हिं० पुस्तक भवन कलकत्ता
१२	कर्मयोग	,,	छविनाथ पांडेय	,,	,,
१३	रहिमन विलास	साहित्य	ब्रजरत्नदास	साहित्य सेवा-सदन काशी	साहित्य सेवा-सदन काशी
१४	राजपूतों की बहादुरी	साहित्य	रामदहिन मिश्र	रामनरायन लाल प्रयाग	रामनरायन लाल प्रयाग
१५	रामायण के उपदेश	साहित्य	,,	,,	,,

संख्या	पुस्तक	विषय	लेखक	प्रकाशक	दाता
१६	श्रीरामकृष्ण कथामृत	धर्म	रामदहिन मिश्र	रामनरायन लाल प्रयाग	रामनरायन लाल प्रयाग
१७	विज्ञानकी सरल बातें	विज्ञान	"	"	"
१८	ईसब नीति कथा	धर्म	"	"	"
१९	भारत का भूगोल	इतिहास	"	"	"
२०	पुरानों की कहानियां	साहित्य	"	"	"
२१	भारत का प्राचीन इतिहास	इतिहास	"	"	"
२२	बाल भारत	साहित्य	"	"	"
२३	बाल रामायण	"	"	"	"
२४	बूढ़े का व्याह	"	सैयद अमीर अली मीर	हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई	सैयद अमीर अली मीर
२५	सदाचारी बालक	"	"	"	"

सम्मेलन की पुस्तकें

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिंगल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल जी विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुंदर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छंदों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अंत में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

पद्य-संग्रह

संपादक—{ श्री ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुंदर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सागर में से ५२० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उन की जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा २ उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक काग़ज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४८५, मूल्य २)

साहित्य-रत्न-माला

सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को साहित्यरत्न की उपाधि दी जाती है। परीक्षा में बैठने के पहले २०० पृष्ठ का निबन्ध लिखना अनिवार्य्य है। साहित्य-रत्न-माला में वे ही निबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायँगे, जिन्हें परीक्षा-समिति स्वीकृत कर लेगी। इस माला का प्रथम पुष्प है :—

अकबर की राज्य-व्यवस्था

लेखक—साहित्य-रत्न श्री० शेषमणिजी त्रिपाठी, बी. ए.

इसमें सम्राट् अकबर की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया गया है। अकबर के राज्य काल में भारतीय समाज, धर्म, नीति तथा जीवन की क्या अवस्था थी, वर्तमान राज्य प्रणाली, तत्कालीन व्यवस्था के मुक़ाबले में कैसी है आदि बातों का पता इस पुस्तक से भली भांति लगता है। इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत ही लाभदायक है। पृष्ठ संख्या २८०, मूल्य १)

सम्मेलन की अन्य पुस्तकें

१—सूर्य सिद्धान्त

सम्पादक—श्री० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य सिद्धान्त अपने ढँग का एक ही है। इसे देखने से यह पता भली भांति चल जाता है कि आर्यों ने उन सिद्धान्तों का बहुत पहले साक्षात्कार कर लिया था, जिन्हें जानकर पश्चिमी पंडित आज डींग हांक रहे हैं। इसमें खगोलविषयिक सभी बातें आ गयी हैं। सौर जगत का पूरा पूरा विवरण इस अपूर्व ग्रन्थ में दरशा दिया गया है। इस पर संसार की प्रायः सभी भाषाओं में टीका टिप्पणी हो चुकी है। हिन्दी में दो तीन और

टीकाएँ मिलती हैं, पर उनसे ठीक ठीक भाव समझ में नहीं आता। श्री द्विवेदीजी ने इसके गूढ़ से गूढ़ विषय भी सरल और स्पष्ट भाषा में समझाने की पूर्ण चेष्टा की है। मध्यमा के ज्योतिष विषय में यह स्वीकृत है। सजिल्द पृष्ठ २३२, मूल्य १।)

२—इतिहास

ले०—स्वर्गीय श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर

यह श्री चिपलूणकर जी के निबन्ध का अविकल अनुवाद है। इतिहास सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य बातें इसमें आ गयी है। मूल्य ≡)

३—हिन्दी-भाषा-सार

संपादक { श्री० लाला भागवानदीन
श्री० रामदास गौड़

हिन्दी में क्रमशः गद्य का विकास किस किस प्रकार हुआ, इसका पता इस पुस्तक से चल सकता है। इसमें सुयोग्य संपादकों ने हिन्दी के प्राचीन उत्तमोत्तम गद्य लेखकों के चुने हुए लेख दिये हैं। नीचे टिप्पणी भी लगा दी हैं। गद्यात्मक निबन्धों का यह एक आदर्श संग्रह है। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। एण्टिक कागज़, सुंदर छपाई, पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥।)

प्रथमालङ्कार-निरूपण

ले०—साहित्याचार्य्य श्री चन्द्रशेखरजी शास्त्री

प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों को अलंकारविषयिक ज्ञान करा देने के लिए यह 'निरूपण' बड़े काम का है। अलंकारों के लक्षण और उनके उदाहरण बड़ी ही सरलता से समझाये गये हैं। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। मूल्य =)

पुस्तकें मिलने का पता—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

निम्नलिखित दो पुस्तकें पौन मूल्य पर मिल सकेंगी।

१—देशभक्त लाजपत

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय जी की जीवनी इस पुस्तक में बड़ी ही खोज के साथ लिखी गयी है। इसकी वर्णन शैली भी मनोरम है। लाला जी के जीवन में देश-सेवा करते हुए कैसी कैसी घटनाएँ हुई हैं, उन्हें क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कष्ट सहन करते हुए भी वे अपने पथ पर कैसे डटे रहे हैं, आदि सभी बातें लेखक ने इस पुस्तक में यथा स्थान संपादित कर दी हैं। पृष्ठ संख्या ३२५ मूल्य १), रियायती मूल्य केवल ॥।)

२—नीति-दर्शन

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

यह नीतिशास्त्र की अद्वितीय पुस्तक है। अनेक ग्रन्थों से इस का सम्पादन किया गया है। हिन्दू धर्म-व्यवस्था, राजनीति, समाज संगठन आदि सभी ज़रूरी बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डाली गयी है। यह प्रत्येक नवयुवक को अपनानी चाहिये। पृष्ठ संख्या २१० मूल्य ॥।), रियायती मूल्य केवल ॥-)

पुस्तक-विक्रेताओं को सूचना

१—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित समस्त पुस्तकों पर १००) से अधिक की पुस्तकें लेने से २५ फी सदी कमीशन मिलता है।

२—१००) से कम की पुस्तकें लेने से २० फी सदी कमीशन मिलता है।

३—१०) से कम के आज्ञापत्र पर कोई कमीशन नहीं दिया जाता है।

शीघ्र ही सूचीपत्र मँगाइये।

मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

'साहित्य-भवन लिमिटेड' द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

साहित्य-विहार—लेखक, श्रीवियोगीहरि

यह वियोगीजी के चुने हुए भक्ति विषयक और साहित्य विषयक ११ सुन्दर लेखों का संग्रह है। अधिकतर लेख पत्र पत्रिकाओं में निकल चुके हैं और लोगों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसको पढ़ने से न सिर्फ आपको हिन्दी प्राचीन साहित्य की चासनी चखने को मिलेगी, किन्तु आपको वह अपूर्व आनन्द मिलेगा जो आपको अच्छे से अच्छे नाटक और उपन्यास पढ़ने से नहीं मिल सकता। मू० ॥।≡)

योगी अरविंद की दिव्यवाणी—सम्पादक, श्रीवियोगीहरि

श्रीअरविन्द भारतमाता के उन सपूतों में से हैं जिन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए ही जन्म लिया है और उसी के लिए प्राण निछावर करना अपने जीवन का उद्देश मान रक्खा है। आपके लेख आध्यात्मिक विचार, योग, राष्ट्र और जाति सम्बन्धी दिव्य उद्गारों का संग्रह करवाया है। मूल्य ।-)

गल्प लहरी—लेखक, स्वर्गीय श्रीगिरजाकुमार घोष

घोष बाबू से हिन्दी साहित्य अच्छी तरह परिचित हैं। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इनके लेख बहुत पसंद करते थे। आप गल्प और आख्यायिका लिखने में सिद्धहस्त थे। यह पुस्तक आप की चुनी हुई सुन्दर गल्पों का संग्रह है। मूल्य १।)

होमर गाथा—सम्पादक, स्वर्गीय श्रीगिरजाकुमार घोष

महाकवि होमर के 'ओडिसी' और 'इलियड' नामक काव्यों का भावानुवाद। मूल्य १)

इनके अतिरिक्त हमारे यहां हिन्दी संसार की समस्त पुस्तकें उचित मूल्य पर मिलती हैं)॥ का टिकट भेज कर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

पुस्तकें मिलने के पता—

साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में छपा।

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क २—आश्विन, १९८०

संपादक

वियोगीहरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २) प्रत्येक ≡)

विषय-सूची

परीक्षार्थियों को सूचना

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओं की, संवत् १९८१ की, विवरण-पत्रिका छप गई है। जो विद्यार्थी परीक्षा देना चाहें उन्हें तुरन्त ‒)॥ का टिकट भेज कर मँगा लेना चाहिए। इससे परीक्षा सम्बन्धी सब बातें ज्ञात हो जायँगी।

परीक्षा मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !

ब्रजमाधुरीसार

संपादक—श्रीवियोगीहरि

ब्रजभाषा साहित्य हिन्दी-साहित्य का प्राण है। ब्रजभाषा साहित्य आदि से लेकर अन्त तक भक्तिरस से सना हुआ है। प्रायः जितने कवियों ने ब्रजभाषा में कविता की है, वे सभी उच्च कोटि के भक्त थे। ब्रजसाहित्य के माधुर्य्य के सम्बन्ध में अधिक कहना व्यर्थ है। वास्तव में, यह साहित्य इतना बड़ा है कि सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करना हरेक मनुष्य का काम नहीं, अतएव इस सुधारस को जनसाधारण के पास पहुँचाने की इच्छा से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने ब्रजमाधुरी-सार नामक संग्रह प्रकाशित किया है।

इस संग्रह की **चार विशेषताएं** हैं, सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय श्रीसत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है, ऐसा एक भी प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि न होगा जिसकी माधुरी का रसास्वादन पाठकों को इस संग्रह में न कराया गया हो। दूसरी विशेषता यह है कि बहुत से ऐसे कवियों की रचनाओं का इसमें समावेश हुआ है जो आजतक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुई है, तीसरी विशेषता यह है कि इस संग्रह में सम्पादक महोदय ने यथेष्ट टिप्पणी लगा दी है, जिससे थोड़ी हिन्दी जाननेवाले पाठक भी आसानी से इसको समझ सकते हैं और चौथी विशेषता यह है कि प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित्र और उसकी रचनाओं का सूक्ष्म परिचय भी पाठकों को करा दिया गया है, जिससे पाठकों को यह मालूम हो सकता है कि किस प्रकार की परिस्थिति में ऐसे उच्च कोटि के कवियों और कविताओं का विकास हुआ था।

संक्षेप में, जो मनुष्य एक बार भी आद्यन्त इस ब्रजमाधुरीसार को पढ़ जायगा, वह आजीवन इस माधुरी को न भूलेगा। पुस्तक ६३२ पृष्ठों में समाप्त हुई है। सुंदर सचिक्कण कागज; कपड़े की जिल्द। मूल्य केवल २)

मन्त्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन की पुस्तकें

सुलभ-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति ने सुलभ-साहित्य-माला निकालने का निश्चय किया है। इसका उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी प्रेमी इन ग्रन्थ-रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है और यह बहुत ही आवश्यक है कि प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों का उचित आदर किया जाय, क्योंकि इसकी निरपेक्षता से हमारी वर्त्तमान तथा भावी साहित्यिक उन्नति में भारी बाधा पड़ने की संभावना है। अभी हम लोगों ने वर्तमान साहित्य का संगठन ही क्या किया है? यदि हमें अपने साहित्य में प्राण संचार करने की आवश्यकता है, तो प्राचीन ग्रन्थों की खोज करनी तथा विना लाभ के लोभ के उन्हें प्रकाशित करना भी अनिवार्य्य है। इसी सिद्धान्त पर सम्मेलन ने इस माला का गूँथना निश्चित किया है। इसमें न केवल प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ ही प्रकाशित होंगे, वरन् वर्तमान विषयों के भी उच्च कोटि के ग्रन्थ निकला करेंगे। दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं:—

१—भूषण ग्रन्थावली (द्वितीय संस्करण)

(सटिप्पण)

भला भूषण कवि की ओजस्विनी कविता को कौन पसंद न करता होगा। अत्युक्ति न होगी यदि यह कहें कि यह हिन्दी में वीर-रस के एक मात्र कवि हैं। साथ ही साहित्य के आचार्य भी। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट

को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान श्री० पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥=)

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का सामना करना पड़ा, वर्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इस पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली ही पुस्तक ही है। 'मिश्रबन्धु विनोद' रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

भारतगीत

लेखक—श्री० पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठक जी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा? आपकी गणना वर्तमान हिन्दी साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन का संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठक जी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना

साहित्य मर्मज्ञ श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≈)

भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६००० संवत् पूर्व से ५०० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा, जहां से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का संदेश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास-विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ संख्या ४०६, मूल्य केवल १॥)

भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु,

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुंदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य २)

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११] आश्विन, संवत् १९८० [अङ्क २

संध्या-दर्शन

आजु ब्रजराज को कुँवर बन तें बन्यो
देखि, आवत मधुर अधर रंजित वेनु ।
मधुर कल गान निज नाम सुनि स्रवन पुट
परम प्रमुदित वदन फेरि हूंकृति धेनु ॥
मद-विघूर्नित नैन मंद बिहँसति बैन
कुटिल अलकावली ललित गोपद रेनु ।
ग्वाल बालनि जाल करत कोलाहलनि
स्रंग दल ताल धुनि रचत संचत चैनु ॥
मुकुट की लटक अरु चटक पटपीत की
प्रगट अंकुरित गोपी मनहिं मैनु ।
कहि गदाधर जु इहि न्याय ब्रज-सुंदरी
विमल बनमाल के बीच चाहतु ऐनु ॥

—गदाधर भट्ट

राजुल-विवाह

[ले०—कविवर श्रीदेवीप्रसादजी 'प्रीतम']

(गतांक के आगे)

नर नारियों के उमड़े नगर-बीच दल के दल,
करुणा मई चरित्र यह सुन हो रहे बिकल।
आपुस में कह रहे थे सभी नैन कर सजल,
उपजे कहां से हाय अमरबेल में यह फल॥
अद्भुत अनूप रूप औ सुखमा पै चित दिये,
झुंडों पै झुंड साथ में राजुल के हो लिये।

❧

कोमल कमल कली सी तुषारों लगी हुई,
पपरी पड़े से होंठ ज़बां रस-पगी हुई।
उज्ज्वल विभूति अग्नि से कुछ जगमगी हुई,
संजीवनी के जोग से जोगिन जगी हुई॥
पुरजन सुजन समाज सहित सँग सहेलियाँ,
घेरे जुही को बेल मनो चम्प-वेलियाँ।

❧

गिरनार के रसाल औ चंपा नज़र पड़े,
कदली कदम्ब शर्म से झुक झुक ज़मीं गड़े।
उज्ज्वल शिखर शिलान पै जगमग से नग जड़े,
दूबा हरित सी देख के रोंगटे हुए खड़े॥
कचनार कुंद कलियों पै भौंरों के झौंर झुंड,
निर्मल सजल से ओंठों छलकते हुए वह कुंड।

❧

वारिद बरन वह धूम्र व पल्लव हरे हरे,
छत्ते लटकते शाखों से मधुमक्खि रसभरे।
दर्शन से पाप जिनके अमित जन्म के जरे,
राजुल चढ़ी शिलान जिगर कर कमल धरे॥
करने लगी तलाश कहाँ मुनि-निवास है,
जिनके कि दर्शनों की लगी दिल में आस है।

आसन के पास पहुँची तो गुरुजन पलट गये,
आगे वही बराती भी लज्जा से हट गये।
नैहर की नारियों के जथा पथ से कट गये,
हमझोलियों के झुंड सघन वन में डट गये॥
कोमल चरन चटान पै रखती हुई चली,
रसनाह नेह प्रेम से चखती हुई चली।

पहुँची शिखर पै देखा कि उज्ज्वल चटान है,
पीपल की छाया कल्पलता के समान है।
मूंदे हुए हैं नैन लगा मुनि का ध्यान है,
जाना कि दिल रुबा यही प्रानों का प्रान है॥
कर जोड़ कर खड़ी हुई मुनिवर के सामने,
दिल की तड़प कलेजा लगी कर से थामने।

रोकी सजल नयन की उमड़ती हुई घटा,
सोची, कहां शिला ये कहाँ उच्च वह अटा!
सिर से उतार मौर किये लुञ्च कुल जटा,
दूल्हा स्वरूप त्याग के दिखलाई यह छटा॥
बोली बचन कि, नाथ! ज़रा आंख खोलिये,
दासी खड़ी हुजूर में टुक मुख तो बोलिये।

देखा पलक उघार तो दुलही है इक खड़ी
कचनार की कली पै सघन ओस सी पड़ी।
दृग घन घटा से उसके बरसती हैं इक झड़ी,
दिल यों धड़क रहा है कि ज्यों जेब की घड़ी ॥
मुरझा रहा है चेहरा उदासी सी छाई है,
मृग-लोचनी यह वन में कहाँ भूल आई है।

अनबन से मुझ बना के यह बिगड़ा सिंगार है,
कहती है फूलमाल कि अब मेरी हार है।
बेंदी में वह दमक न वह मुखकी बहार है,
लल्लाट पर चमक न वह तन की निखार है ॥
बिथरा सिंदूर मांग सजल मोतियों भरी,
हरहार बनगई है गले की वह लह्नरी।

बोले, अकेली आई कहां वन में तुम लली ?
पर्वत पै किस तरह से यह फूली कमल-कली ?
किसने बताई तुमको कठिन भूमि की गली ?
हम तो विरक्त हो ही चुके, जाव तुम चली ॥
संसार मेरी दृष्टि में सेमर का फूल है,
भूलें किसी के नेह में अब हम तो भूल है।

सुन प्राणपति के बैन ये राजुल हुई विकल,
मुख सूख कर गुलाब सा आंसू पड़े निकल।
पलकों झलक छलक के कपोलों पै नैन जल,
घूंघट को करके तर चला कंचुकि की ओर ढल ॥
उर थाल सिंच सनेह के अंकुर हरे हुए,
बोली बचन विनीत मधुर रसभरे हुए।

राजुल-विलाप

प्राणेश ! मेरी ओर दया कर निहारिये,
मझधार में पड़ी हूँ मुझे नाथ तारिये।
अधबीच छोड़ मुझको कठिन व्रत न धारिये,
धन मन भवन यह आपकी सूरत पै वारिये॥
अबला अनाथ हूँ, नहीं तन में तनिक तथा,
दिल में उभर भरी है सो सुन लीजिये कथा।

संजोग की थी जब से कि कानों झनक पड़ी,
अभिलाष दिल की बढ़ती थी छिन छिन घड़ी घड़ी।
तन पर लगी थी प्यारे अजब प्रेम की छड़ी,
निशिपति को देख गिनती थी तारे खड़ी खड़ी॥
शृंगार करती आपका मन में थी मन-मई,
सपने में दर्श देती थी सूरत नई नई।

रच पुतलियों का खेल में करती थी कल्पना,
बन कर स्वयं बनी औ बनाकर तुम्हें बना।
रसकेलि करके लूटती रहती थी रस घना,
आनन्दकंद रंग बहुत दिन यही छना॥
मंडप पै नेह-बल्लरी चढ़ती ही नित गई,
हिमकर-कला सुप्रीति की बढ़ती ही नित गई।

श्रवणन में जो चरित्र सुने थे वह चित दिये,
मन ने मनन से अंग बनाकर खड़े किये।
निदिध्यासन उसका करती रही आपके लिये,
मनमोहिनी सुरूप निरख अब तलक जिये॥
फिर ये सुना, बरात लिये सँग जगर मगर,
दूलहा स्वरूप बन के हैं आये मेरे नगर।

उठती जलधि-तरंग है ज्यों पूर्णिमा की रात,
डुलते पवन-प्रसंग से पीपल के ज्यों हैं पात।
जिस रंग से बसंत में खिलता है पारिजात,
दिल की दशा हुई यही सुनकर सुखद सी बात॥
उठने लगी हिये में उमग इक हिलोरसी,
मुखचन्द्र के लिये जो बनी मैं चकोरसी।

सखियों ने कर सिंगार बनाया मुझे बनी,
हरदी चढ़ी जो चौक बनी चम्पई तनी।
चुनरी में छन के बैंदी की आभा बड़ी घनी,
कज्जल की रेख पीक वह पानों की रससनी॥
पिय-आगमन की आस चढ़ी मुख पै रोशनी,
पुतली ललक चलीं कि, मिलेंगे वह अब धनी॥

अनुराग रँग दिखाता था अपना छलक छलक,
शरबोर दृग की कोर से जलकन झलक झलक।
मग जोहतीं थी, आते हैं प्राणेश कब तलक?
मीनों के जाल यानी हटा कर अलग अलग॥
चखपूतरीं उमगतीं थीं दिल में ललक ललक,
पलभर नहीं झपातीं थी उतकंठ से पलक।

इतने में आँधियाँ उठीं आतप पवन चली,
जिनके झकोर लगते ही बिथरी कली कली।
सूखे से पत्र बन के लगीं उड़ने रँग रली
फूली जो फिर रहीं थी हुई उनको बेकली॥
मुरझा गई लगन की वह दूबा हरी हरी,
उत्साह चाह की वह सुखद मंजरी भरी।

सुख सेज पौढ़ने की वह आई न शुभ घरी,
अभिलाष मन की मन ही में मेरे रही भरी।
सिंच सिंच विपत की बेल हुई नित हरी हरी,
रस बेलि केलि केरी समय कौन फल फरी॥
झड़ने लगी कलेश के झोंकों से मंजरी,
बन वज्र हा कलेश ने छाती घरी धरी।

मुकलित वसंत ही में यह पतझड़ ने आ लिया,
विकसित कुसुम कली का यह विनसित चमन किया।
मिलने रसिक भ्रमर से न खिलने कमल दिया,
तलफै न प्राणनाथ यह क्यों कर मेरा जिया ?
पायन की लाल मेंहदी न तन की हरद छुटी,
सुख राशि आश हाय यह अधबीच ही लुटी !

फीका पड़ा अभी नहीं चूनर का रंग री,
पग पोर लहलहा है महावर सुरंग री।
चौगुन चटक हुई है अभी अंग अंग री,
निकली नहीं है कुछ भी हिये की उमंग री॥
अरमान दिल के दिल ही में मुनिवर ! रहे भरे,
तन तरुनई निहार तुम्हारी हुए हरे।

पावस शिशिर बसंत शरद ग्रीष्म हिम घनी,
फूलैंगी केतकी व चमेली सुरस सनी।
उमड़ैंगी घनघटाएँ औ छिटकैंगी चाँदनी,
तुम बिन लगेंगी मुझको न प्रीतम सुहावनी॥
मुरझा गिरैंगी कलियाँ सुमन चन्द्रहार के,
बीतेंगे दिन बिसूरते जोबन बहार के।

खेलेंगी मिल सहेलियाँ फागुन में फाग री,
भूलेंगी गा रसीलियाँ सावन की राग री।
भर भर सिंदूर माँग से लै लै सुहाग री,
सुख नींद जब वे सोवेंगी पतिकंठ लाग री॥
हम धन पड़ी बिसूरेंगी अपने अभाग री,
गिन गिन गगन के तारे तलफ़ जाग जाग री!

बिन श्यामघन के वन में नचै कैसे मोर री?
बरसै न स्वाति बिंदु तौ चातक का जोर री?
विष चन्द्र से चुवै तो करें क्या चकोर री?
क्या जानती थी कन्त हैं इतने कठोर री!
प्यारे का दुख दिया हुआ सुख के समान है,
जो प्रान भी लगें तो ये कुर्बान जान है।

मुझ को अनाथ नाथ न इस भाँति छोड़िये,
पूरब जनम जुड़ी थी वह फिर गांठ जोड़िये।
कंकन के ताग तोड़ न रस डोर तोड़िये,
सुख त्याग दुख से भाग न मुख मुझ से मोड़िये॥
मधुकर कुसुम-कली को कभी त्यागते नहीं,
कंटक कलेश जान रसिक भागते नहीं।

सुनती थी प्राणनाथ दया के स्वरूप हैं,
मुनियों के मणि-मुकट हैं औ भूपों के भूप हैं।
दीनों के दुख समझने में उत्तम अनूप हैं,
तिरपित जनों की प्यास बुझाने में कूप हैं॥
सबसे बढ़ी हुई हैं द्रवन-शक्ति आपकी,
सहते नहीं हैं आँच शरण जनके तापकी।

देते कुँवरजी क्यों हो दंड बेकसूर को ?
अपराध क्या समझ पड़ा मेरा हुज़ूर को ।
आदिल समझते साफ़ हैं साया औ नूर को,
निसबत हरेक संग से, क्या संगतूर को ॥
मुझसे तो दिल बिगड़ने की कुछ बात ही नहीं,
सूरत से आशना औ मुलाक़ात ही नहीं ॥

❧

रवि के उदय को देखती जीवन-प्रभात थी,
देखा जो आंख खोल अंधेरी ही रात थी ।
मैं मानिनी बनूँ तो उचित ही ये बात थी,
जानिब से आपके ये बईद अज़ सिफ़ात थी ॥
उलटा मैं प्राणनाथ, मनाने को आई हूँ,
घायल न कीजिये मुझे मैं चोट-खाई हूँ ॥

❧

चलिए मनोर्थ मेरा न प्रभु भंग कीजिए,
जो रंग चढ़ रहा है न बदरंग कीजिए ।
भूषित विभूषणों से यह फिर अंग कीजिए,
दासी समझ के अपना जू सत्संग कीजिए ॥
वनवास अति कलेश-जनक अति कठोर है,
वैस आपकी किशोर अभी अति लिलोर है ॥

❧

वन में एकान्त कैसे अहो नृपकुंवर रहें ?
कैसे ये शीत घाम झकोरे विपिन सहें ?
बसकस वदन कठोर से तापस ये व्रत गहें,
कंचन सा तन ये आप दवानल में क्यों दहें ?
कोमल तन आपका यह नहीं जोग योग के,
होना विरक्त चाहिये कुल भोग भोग के ॥

❧

दिल पर विरक्ति नाथ ! अगर आपके ठनी,
वैराग से है आपको उल्फ़त अगर घनी ।
पूरन प्रतिज्ञा सेवन कर बात के धनी,
कीजे मुआफ़ मेरी महामुनि यह अनबनी ॥
ख़िदमत में आप अपने मुझे राख लीजिये,
वापिस न जाऊँगी मैं, यह बरदान दीजिये ॥

❧

कुटिया बनाय आपकी सेवा किया करूँ,
पत्रन बिजन बनाय पवन कर दिया करूँ ।
मुखचन्द्र की चकोर बनी रस पिया करूँ,
सूरत निहार रावरी दर्शन लिया करूँ ॥
तन की तपन बुझाय निरख मुख जिया करूँ,
जो आज्ञा हो मुझको सो प्रीतम ! किया करूँ ॥

❧

राजुल-विलाप सुन के मृगा मोर बन छुके,
सुनसी समीर रूख सरित सूख जल थके ।
मृग-मीन दीन नीर बहा कच्छ मच्छ जके,
वेलन द्रुमन दुरे न मनुज धीर रह सके ॥
गिरनार के दृगन से झिरन फूट बह चले,
पत्थर से दिल चटान के भी टूट बह चले ॥

(शेष आगे)

कविवर नन्ददासजी के काव्य

(लेखक—श्रीयुत पंडित ज्योतिप्रसादजी मिश्र 'निर्मल')
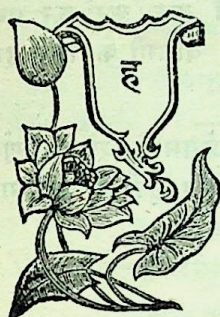
हम सम्मेलन-पत्रिका के गतांक में कविवर नन्ददासजी की कविता पर अपना विचार प्रगट कर चुके हैं। आज हम उनके प्रत्येक काव्यों की रचनाओं पर अलग अलग विचार करेंगे।

यों तो नन्ददासजी रचित बहुतसी पुस्तकें सुनी जाती हैं। मिश्रबन्धुओं ने नन्ददासजी रचित बहुतसी पुस्तकों के नाम अपने 'विनोद' में उद्धृत किये हैं। जिस प्रकार मिश्रबन्धुओं ने मनगढ़न्त से नन्ददासजी को 'कान्य-कुब्ज' * बना डाला, सम्भव हो उसी प्रकार उन्होंने नन्ददासजी की रचित कितनी ही पुस्तकों का नाम कल्पना करके रक्खा हो। बहर हाल उनके पास इस विषय में कुछ प्रमाण नहीं हैं।

इस लेखक को कविवर के तीन ग्रन्थों के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। १—रास-पंचाध्यायी २—भ्रमर गीत ३—अनेकार्थ और नाममाला। जहां तक अनुसन्धान किया गया है शायद प्रकाशित भी यही तीन पुस्तकें हुई हैं। अब हम इन तीनों पुस्तकों का परिचय एक एक करके नीचे देते हैं।

रास पंचाध्यायी

पहले इस पुस्तक को भारतमित्र के सम्पादक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने ७५ छन्दों से युक्त भ्रमरगीत के साथ प्रकाशित किया था। भारत भूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को इस पुस्तक से बड़ा प्रेम था। वे इसकी कविताओं को बड़े प्रेम से पढ़ते थे।

---

* श्री वियोगीहरि द्वारा सम्पादित 'ब्रजमाधुरीसार' में इसका अच्छा खण्डन किया गया है। पाठकों को देखना चाहिये।

यही नहीं, बल्कि उन्होंने निज सम्पादित "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" नामक पत्रिका में रास पंचाध्यायी की कविताओं को प्रकाशित भी किया। सचमुच रास पंचाध्यायी के समान हिन्दी साहित्य में इने गिने ग्रन्थरत्न हैं। इसके प्रत्येक छंद में माधुर्य्य कूट कूट कर भरा है। इसके पाँचों अध्याय रत्नों से गुथित हैं। बानगी के लिये हम इसके कुछ अवतरण उद्धृत करते हैं।

प्रथम अध्याय में श्रीशुकदेवजी का कृष्ण-प्रेममयी शोभा वर्णन के पीछे वृन्दावन की शोभा मनोहर और ललित छंदों में कही गई है। शुकदेवजी को कृष्ण प्रेम की मूर्ति ही बताया है।

यथाः—

हरिलीला रस-मत्त मुदित नित विचरत जग में।
कृष्ण भक्ति प्रतिबिम्ब तिमिर को कोटि दिवाकर॥

कोई कैसा ही कृष्ण-भक्त क्यों न हो किन्तु इससे अधिक सत्य प्रशंसा नहीं की जा सकती। देखिये आप वृन्दाबन के लिये क्या कहते हैंः—

श्रीवृन्दावनचन्द वन कछु छवि वरणि न जाय।
कृष्ण ललित लीला निमित धार रह्यो जड़ताय॥

देखिये, यह कैसा वृन्दावन का सुन्दर रूप है। शरद ऋतु आगमन होने पर उसकी शोभा ९३ से १०८ पंक्ति तक वर्णित है।

मुरली की प्रसंशा में कविवर क्या लिखते हैंः—

तब लीनी कर-कमल जोगमाया की मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरन सुर जुरली॥
जाकी धुनते निगम अगम प्रगटित बड़ नागर।
नादब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख-सागर॥

भगवान कृष्णचन्द्रजी से प्रेम करने का क्या माहात्म्य होता है इस विषय पर नन्ददासजी का कैसा विचार है—

यथाः—

परम दुसह श्रीकृष्ण विरह दुख व्याप्यो जिनमें।
कोटि बरस लगि नरक भोग अघ भुगते छिन में॥
पुनि रंचक धरि ध्यान पिया परिरंभ दियो जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छिनहिं मंगल कीन्हों सब॥

जब श्रीकृष्णचन्द्रजी की मुरली को गोपियां सुनती हैं तो वे कैसे चलती हैं :—

चलत अधिक छवि फबित स्रवण मनि कुंडल झलकैं।

× × × ×

कहुँ दिखियत कहुँ नाहिँ सखी बन बीच बनी यों।
बिजुरिन की सी घटा सघन घन माँझ चलीं ज्यों॥

देखिये, उपर्युक्त पद्यों में कवि ने कैसा सजीव वर्णन किया है। इसकी एक एक पंक्ति कैसी मनोहर और प्रसाद गुण माधुर्य्य से पूर्ण है।

फिर देखिये :—

हिय भरि विरह हुतास उसासनि सँग आवत झर।
चले कछुक मुरझाइ मधुभरे अधर बिम्बवर॥

इस पद्य में बिहारी का सा विरह वर्णन है।

गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपना प्रेम किस प्रकार प्रगट करती हैं :-

कुटिल अलख मुख कमल मनो मधुकर मतवारे।
तिन में मिलि गये चपल नयन पिय मीत हमारे॥
चितवनि मोहन मंत्र भौंह जनु मन्मथ फांसी।
निपट ठगोरी आहि मन्द मुसुकनि मृदु हाँसी॥

उपर्युक्त छंदों का वर्णन प्रथम अध्याय में हुआ है।

द्वितीय अध्याय में गोपियों का श्रीकृष्ण को कुंज कुंज में ढूंढ़ना और प्रत्येक लता-वृक्ष से पूंछना बड़ा हृदयबेधक और करुणोत्पादक है।

गोपी-विश्लेश नामक द्वितीय अध्याय बड़ा ही करुणाजनक है। सचमुच रासपञ्चाध्यायी में नन्ददासजी ने शृंगार, करुणा और शान्त रस की कविता बहुत ही उत्कृष्ट की है।

तृतीय अध्याय में केवल ५२ पंक्तियां हैं। इसमें गोपियां कृष्णचन्द्रजी से पुनः दर्शन देने के लिए प्रार्थना करती हैं। यह उपालम्भ मिली विनती रासपंचाध्यायी का विशेष अंग है, विरह से व्याकुल गोपियों का सच्चा प्रलाप है।

यथाः—

नैन मूँदिवो महा अस्त्र लै हाँसी हाँसी।
मारत हो कित सुरत नाथ बिन मोल की दासी॥
अहो मित्र अहो प्राणनाथ यह अचरज भारी।
अपने जन को मारि करि हो का की रखवारी॥
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन में।
सिल तृण कण्टक अटकत कसकत हमरे मन में॥
कब घटि जैहै नाथ हरत दुख हमरे हिय के।
कहँ यह हमरी प्रीति कहाँ तुम्हरी निठुराई॥
छिन बैठत छिन उठत लौटते तिहि रज माहीं।
थोरे जल ज्यों मीन दीन आतुर अकुलाहीं॥

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने व्याकुलता का कैसा उत्तम चित्र खींचा है!

चतुर्थ अध्याय में केवल ६० पंक्तियां हैं। इस अध्याय में श्रीकृष्ण का फिर प्रगट होना और गोपियों का मिलाप वर्णित है। यह अध्याय बड़ा मनोरञ्जक है। हिन्दी में ऐसा मिलाप-वर्णन और किसी ने नहीं किया। विरह के पश्चात् मिलने का इसमें सच्चा चित्र खींचा है।

गोपियां प्रश्न करती हैः—

इक भजते को भजैं एक बिन भजतेहिं भजहीं।
कहो कान्ह ते कवन आहि जे दोउन तजहीं॥

कृष्ण भी उत्तर देते हैं:—

> जो भजते को भजैं आपने स्वारथ के हित ।
> जैसे पसू परस्पर चाटत सुख मानत चित ॥
> जे अनभजतें भजैं वहै धर्मी सुखकारी ।
> जैसे मात पिता जु करै सुत की रखवारी ॥

यह प्रश्नोत्तर भागवत का अनुवाद मालूम होता है। आगे कृष्ण भगवान् गोपियों से अपने अपराध की क्षमा मांगते हैं। यथा:—

> तब बोले ब्रजराज कुंवर हम ऋणी तुम्हारे।
> अपने मनतें दूरि करो किनि दोष हमारे ॥

फिर गोपियों की प्रशंसा करते हैं:—

> तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवल किसोरी।
> लोक वेद की सुदृढ़ सङ्खला तृन सम तोरी।

हिन्दी-हितैषी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने भी एक स्थान में यही भाव लेकर कहा है:—

> गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
>
> निज तृण सम कुल लाज निगड़ सब तोर्यो हरि रस माँही ॥
>
> (चंद्रावली)

यहीं पर चौथा अध्याय समाप्त होता है। आगे पाँचवें अध्याय में श्रीकृष्ण की रासलीला वर्णित है। नन्ददासजी ने इसका भी ऐसा यथार्थ वर्णन किया है कि पढ़ते समय रासलीला का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है।

प्रकृति ने रास में भाग किस प्रकार लिया—

> पवन थक्यो ससि थक्यो थक्यो उड़-मण्डल सगरो।
> पाछे रवि रथ थक्यो चल्यो नहिं आगे डगरो ॥

अंत में:—

> यहि विधि विविध विलास हास सुख कुंज सदन के।
> चले जमुन जल क्रीडन ब्रीडन कोटि मदन के ॥

नन्ददासजी ने जल-क्रीड़ा का वर्णन भी बहुत बढ़िया किया है। इसकी तीन चार उत्प्रेक्षाएँ दर्शनीय हैं।

मुख अरविन्दन आगे जल अरविन्द लगे अस।
भोर भये भवनन के दीपक मन्द लगत जस॥
जमुना जल में दुरि मुरि कामिनि करत कलोलें।
मानो नवघन मध्य दामिनी दमकत डोलैं॥

अंत में नन्ददासजी ने ग्रन्थ बनाने में जो परिश्रम किया है उसका भी उल्लेख किया है।

यह उज्वल रसमाल कोटि जतनन करि पोई।
सावधान हीइ पहिरो अरु तोरो मति कोई॥

× × × ×

अघहरनी मनहरनी सुन्दर प्रेम वितरनी।
नन्ददास के कण्ठ बसो नित मङ्गल करनी॥

यहीं पर नन्ददासजी की यह 'रसमाल' अर्थात् 'रास-पंचाध्यायी' समाप्त होती है। पाठकों को उपर्युक्त अवतरणों से प्रकट हो गया होगा कि रास पंचाध्यायी हमारे हिन्दी साहित्य का एक चकमता हुआ रत्न है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि और लेखक बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि रास पंचाध्यायी पढ़ते समय संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जयदेव के गीतगोविन्द का सा आनन्द आता है।

भ्रमर गीत

इनकी दूसरी ७५ पद्यों की एक छोटी पुस्तक "भ्रमर गीत" है। इसका छंद बड़ा मधुर है और यह इनके ही मस्तिष्क की उपज है। इसके दो चरण रोले के पीछे एक दोहा है और अंत में १० मात्राओं का एक मधुर टेक है। बाबू राधाकृष्ण दास ने इसी ढंग पर 'प्रताप विसर्जन' लिखा है।

भ्रमर गीत में कृष्ण-साहित्य का प्रसिद्ध उद्धव-गोपी-संवाद है। कृष्णजी का नाम सुन कर गोपियों की जिस दशा का वर्णन

किया गया है वह कवित्व शक्ति का नमूना है। पढ़ने से ही छुन्द का भाव हृदय में अनुभव होने लगता है। यथाः—

सुनत श्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अंग भये भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन॥
व्यवस्था प्रेम की॥

इसके अनन्तर उद्धवजी गोपियों को योग की शिक्षा देते हैं। यह प्रश्नोत्तर बड़ा ही मनोरञ्जक है। हिन्दी-साहित्य में यह संवाद बहुत ही प्रसिद्ध है।

गोपियां कृष्णजी को किस प्रकार उलाहना देकर बिनती करती हैं:—

दुख-निधि-जल में बूड़ ही करि अवलम्ब न लेहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे।

ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहिं,
अबला बल सुनि डरि गयो बली डरे जग मांहि।
पराक्रम जान के॥

इनके निर्दय रूपमें ताहि न कछू विचित्र।
पय पीवत प्रानन हरे पूतना बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के॥

इनके हर एक अवतार में निष्ठुरता दिखलाई गई है। यद्यपि भ्रमर गीत बहुत से कवियों ने लिखे हैं, किन्तु दशावतार की निष्ठुरता नन्ददासजी ही ने निकाली है। यथाः—

कोउ कहैं री कहा हिरनकस्यप तें बिगरयो।
प्रम ढीठ प्रहलाद पिता सन्मुख ह्वै झगरयो॥
सुत अपने को देत है शिक्षा दंड बताय।
इन वपु धरि नरसिंह को नखन विदारयो जाय॥
बिना अपराध ही॥

मधुकर और कृष्णचन्द्रजी 'में श्यामता की समानता पा कर दोनों को कितना कठोर बताया है। यथा—

'ताही छिन इक भँवर कहूं ते ही उड़ि आयो।'

× × × ×

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रति उत्तर बातैं।

× × × ×

जनि परसौ मम पांवरे तुम मानत हम चोर।
तुमही ते कपटी हुते मोहन नन्द किसोर॥
यहां ते दूरि हो॥

कृष्णजी की निष्ठुरता ऊधोजी के हृदय में ऐसी व्याप गई कि मथुरा लौटते ही कृष्णजी को सुनाया।

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूठी।
मैं जान्यो ब्रज जाय के तुम्हरो निर्दय रुप।
जौं तुमको अवलम्बही काको मेलौं कूप।
कौन यह धर्म है॥

कविकुलमुकुट सूरदासजी ने भी सूरसागर में इसी प्रकार का भ्रमर गीत दिया है। इसके अंत में टेक हैं, उसमें केवल अंत में टेक नहीं है। लेकिन मुझको इसकी मधुरता के सामने उसकी मधुरता के लिये 'नकार' का उच्चारण करना पड़ता है। मुझे तो जो रस नन्ददासजी के भ्रमर गीत में मालूम होता है, वैसा सूरदासजी के भ्रमर गीत से नहीं प्रकट होता है।

अनेकार्थ और नाममाला*

हिन्दी में सर्व प्रथम कोष लिखने का श्रेय नन्ददासजी को ही है। हिन्दी की उस आरम्भिक अवस्था में आपने अमर कोष के ढंग का एक अति उत्तम कोष तय्यार किया। इसके प्रथम तो कोई कोष बना ही न था और न कई वर्षों तक बना ही। हाँ, इस बीसवीं सदी में

* इस ग्रन्थ को बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने काशी से प्रकाशित किया है।

कई कोष बने हैं। सम्भव है, नन्ददासजी ने अमर कोष का अनुवाद ही किया हो किन्तु उसका कुछ पता नहीं।

अनेकार्थ में प्रति शब्द से जितने विभिन्न अर्थ हो सकते हैं, दोहों में दिये हैं। इस ग्रन्थ में १५४ दोहे और १४६ शब्द हैं। हिन्दी शब्द सागर में भी इसकी सहायता ली गई है। उदाहरण के लिये सारंग शब्द उद्धृत किया जाता है।

सारंग

पिक चामर कच संख कुच, कर वाइस पृष्ठ होय।
खंजन कञ्चन हिरनमद काम पिसन है सोय॥
छिती तलाव भुजंग मुनि को बड़ भान समान।
सारंग श्री भगवान को भजिये आठौ जाम॥
सारंग सुन्दर को कहत, रात दिवस बड़ भाग।
खग पानी अरु धन कहिय, अम्बर अबला राग॥
रवि ससि दीपक गगन हरि, केहरि कुंज कुरंग।
चातक दादुर दीप हल, ये कहिये सारंग॥

नाममाला में प्रति शब्द के पर्य्यायवाचक शब्द दिये हैं। इसमें २७८ दोहे और २५० के लगभग शब्द हैं। नाममाला की कविता अनेकार्थ से अधिक मधुर और मनोरञ्जक है। प्रत्येक दोहे के तृतीय और चतुर्थ चरण में शृंगार रस का अनूठा भाव लाया गया है। नाम-माला में अच्छी अच्छी उपमाएँ आ गई हैं। कोष ग्रन्थ ऐसा मनो-रञ्जन बनाना बड़ा मुश्किल है। उदाहरण देखिये।

परबत

अग नथ भूभृत दरी भृत, शृङ्गी शिखरी होय।
शैल शिलोच्चय गोत्र हरि, अद्रि ग्राव पुनि सोय॥
गिरि गोवर्धन लाय कर, धरो श्याम अभिराम।
तो डरते वा धकधकी, गई न अबलौं बाम॥

पवन

श्वसन सदा गति अनिल पुनि, मारुत अरु जग यान ।
बढ़न प्रभंजन अग्नि सुख, नभ खान परमान ॥
मरुत वात अरु गंध वह, निश्वासन पवमान ।
बायू बहुरि समीर कहि, पवन नाम ये जान ॥
बुध तन परिमल परसि जब, गवनत धीर समीर ।
ता कहँ बहु सनमान करि, परिरम्भत बलवीर ॥

उपर्युक्त दोहों में कैसी भावोत्कृष्टता मौजूद है । 'पवन शब्द' के अन्तिम दोहे को पढ़ कर कविवर बिहारी के दोहे का ध्यान आ जाता है ।

मिश्र बन्धुओं ने 'नन्ददासजी' की गणना पद्माकर की श्रेणी में की है । मेरे विचार में पद्माकर से नन्ददासजी की रचना साहित्यिक दृष्टि से कहीं अच्छी है । कविता में भाव देखा जाता है कि झमके की झनकार सुनी जाती है । मिश्रबन्धु महोदय कवियों को मनमाना स्थान देने से नहीं चूकते । जहाँ मन भाया किसी कवि को किसी कवि की श्रेणी में रख दिया और समझ बैठे कि यह ब्रह्मवाक्य हो गया । पद्माकर की कविता नन्ददास की कविता से श्रेष्ठ नहीं हो सकती । नन्ददासजी की रासपंचाध्यायी और भ्रमर गीत के समान ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य में गिने चुने हैं । पाठकों के सामने नन्ददास के काव्य वर्तमान हैं, वे उसका रसास्वादन कर सकते हैं, और कसौटी पर कस कर काव्य की परख कर सकते हैं ।

पंडित और मौलवी

(प्रहसन)

[श्रीयुत सैयद "शंकर हुसैन" शर्मा]

स्थान—दिल्ली का एक चौरस्ता

(एक पंडितजी खड़े हैं, दूसरी ओर से एक मौलवी साहब आते हैं।)

मौलवी—आदाब अर्ज़ जनाब !

पंडितजी—आशीर्वाद। स्वस्तिरस्तु।

मौ—मिज़ाज शरीफ !

पं०—हाँ, मुन्नाराम के चिरंजीव पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराने को प्रस्तुत हूँ।

मौ—इसका मतलब ? मेरा सवाल तो दीगर ही था !

पं०—सत्य है, आजकल दुर्भिक्ष के कारण—

मौ—आपको हुआ क्या है ? मैं क्या कहता हूं ?

पं०—हाँ, उत्तरीय भारत में—

मौ—अजी, भारत की लड़ाई से मेरी मुराद नहीं है।

पं०—समझ गया, समझ गया, सम्राट् ने मुराद को दक्षिण विजय करने को भेजा है। यही न ?

मौ—मैं यह पूछता हूं कि आप ख़ैरियत से तो हैं ?

पं०—हाँ, खैर महँगाई के कारण अत्यंत दुर्लभ है, खैर-रहित ताम्बूल चर्वण किया करता हूँ।

मौ—हैं ! संसकिरित के आलिम बिल्कुल बेवकूफ़ हुआ करते हैं। खैरियत से खैर कत्थे का मतलब निकालते हो ! ख़ैर !

पं०—मौलवी साहब, एक प्रमाण मिला है कि 'नवदेद्यमिनी भाषाम् प्राणैः कण्ठ गतैरपि,' अर्थात्—

मौ—लाहौल बिला कुव्वत, क्या इसी मुर्दा ज़बान में लियाक़त हासिल की है ? एक शेर है—

पं०—अरे बाप रे ! कहां है वह शेर ! शेर तो सिंह को कहते हैं न ? त्राहि माम् मौलवी, त्राहि माम् (डर के मारे कांपता है)

मौ—अजी, आप कांपते क्यों हैं ? किस बात का ख़ौफ़ है ?

पं०—बस, भक्षण ही कर जायगा। पंडितानी को विधवा होना पड़ेगा।

मौ—एँ ! पंडितानी का यहां क्या तअल्लुक़ है ? पंडित क्या है, एक अजीब माजरा है ।

पं०—माजरा अशुद्ध है, 'मार्जार' कहिये । मार्जार अर्थात् बिल्ली आप के शेर के ऐसी होती है—

मौ—कहां पंडितानी, कहाँ बिल्ली ! ह ह ह ह !

पं०—समझ गया !

मौ—क्या समझा !

पं०—यह कि मेरी स्त्री और मार्जार अर्थात् बिल्ली—

मौ--याने उल्लू—

पं०—ना, मेरी स्त्री बिल्ली के समान सावधान रहती है, तिस पर भी मैं उस पर शेर के समान गुर्राया करता हूं ! स्त्री सत्ययुग की है ।

मौ—अबे, नालायक ! कुछ अक़्ल भी रखता है ? ऐसी बात कर रहा है गोया पागल हो गया हो ।

पं०—गोया क्या ? हाँ, यवन राज्य में गो-वध तो अनिवार्य्य सा हो गया है ।

मौ—कौन इस के आगे झख मारे ?

पं०—'झखो मत्स्यः' इत्यमरः । झख अर्थात् मछली का मारना तुम्हारा धर्म ही है । यवन हो न ?

मौ—बेहूदे, तुझे हुआ क्या है ?

पं०—दो पुत्र, एक पुत्री । पर मेरे नहीं, मेरी स्त्री के हुए हैं ।

मौ—हर दफ़े इस्तरी इस्तरी कह रहा है । क्या तू धोबी है जो कपड़े पर इस्तरी फेरता है ?

पं०—हरे कृष्ण ! मैं धोबी ! मैं हूं कान्यकुब्ज परम कुलीन ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण ! जानते हो !

मौ—क्या कानकबज़ है ! कब्ज़ तो पेट में हुआ करता है, कहीं कान में भी कब्ज़ होता है ? या इलाही !

पं०—क्या आज कल इलाहीबख़्श प्रधानमंत्री हैं। वे तो बड़े सज्जन पुरुष हैं।

मौ—अबे कमबख़्त, इलाही से मेरा मतलब ख़ुदा से है। यह कहता हूं कि इन्सानों में भी, जो कि 'अशर्फ़ुल मख़लूकात' कहे जाते हैं, तुझ ऐसे अक़्ल के दुश्मन मौजूद हैं।

पं०—हिन्दू मुसल्मान मित्र ही कब थे। दुश्मन का अर्थ शत्रु है न !

मौ—मित्तर सत्तुर क्या ?

पं०—अर्थात्—

मौ—ख़ामोश हो जाओ। बोलने की लियाकत नहीं, पंडित बना फिरता है।

पं०—मैं ने उत्तमा परीक्षा—

मौ—बस, बस, ज़ियादा मत बोलो।

पं०—मैं काव्यतीर्थ, न्यायरत्न—

मौ—फिर वही टें टें !

पं०—और व्याकरणाचार्य्य—

मौ—क्यों, नहीं मानेगा !

पं०—ऊँ हूं।

मौ—धत्तेरे पाजी की।

पं०—क्या मैं पाजी भी नहीं समझता ? अपशब्द क्यों कहता है ?

मौ—मुआफ़ कीजिए, पंडितजी महाराज ! क़िबला साहब ! खफ़ा क्यों होते हैं ?

पं०—फिर तो कहना ? मुझ से क़िबला कहते हो ?

मौ—क़िबला कहने में बेजा ही क्या किया !

पं०—तू क़िबला, तेरा बाप क़िबला। और तेरी माता भी क़िबलिया!

मौ—हट हट! बड़ा बेवक़ूफ़ है!

पं०—बस, अब कभी क़िबला न कहना!

मौ—क्यों क़िबला साहब!

पं०—फिर वही अपशब्द। ले अब—

(मारने को दौड़ता है, मौलवी भी मारता है, दोनों में खूब मार पीट होती है, बचाने के लिए एक मुंशीजी आ जाते हैं)

मुंशी—मौलवी साहब, खामोश हो जाइये। पंडितजी आप भी चुप रहिये। बात है क्या? बड़े दुख की बात है कि आप लोग पढ़े लिखे हो कर गँवारों की तरह लड़ रहे हैं!

मौ—इसी कमबख़्त से दरयाफ़्त कीजिए।

पं०—हम से क़िबला साहब कहता है, भला हम व्यर्थ किसी के अपशब्द सहन कर सकते हैं?

मुंशी—पंडितजी, यह कोई अपशब्द नहीं हैं, यह तो बड़प्पन का शब्द है!

मौ—क्या कहता है?

मुंशी—पंडित जी क़िबला लफ़्ज़ के मानी किसी गाली में लेते हैं।

पं०—मैं ने इस का बिगाड़ा ही क्या था? आपस में वार्त्तालाप हो रहा था कि—

मुंशी—'क़िबला' गाली नहीं है।

पं०—कैसे नहीं है! हम से एक बार संपतराय चौबे ने इस का अर्थ बतलाया था। इससे बुरी कोई गाली ही नहीं है।

मुंशी—क्या अर्थ बतलाया था?

पं०—यह कि मैं तेरा जामातृ हूं! क्या यह छोटी मोटी गाली है? मेरी एकमात्र पुत्री को कोई गाली दे सकता है?

मौ—क्या कहता है ?

मुँशी—(हँसते हुए) क्या कहूँ ? एक मसख़रे ने पंडितजी को क़िबले का कुछ का कुछ मतलब बतला दिया है। पंडितजी की राय में क़िबले का यह मतलब है कि 'मैं तेरा दामाद हूं'।

मौ—हट हट ! क्या ख़ूब ! पंडित फ़ारसी उर्दू तो समझता नहीं, जैसा सुना वैसा मान लिया। आप इसे समझा दीजिए।

मुंशी—पंडितजी, चौबेजी ने आपसे अंटसंट अर्थ बतला दिया है। इसका यह अर्थ नहीं है।

पं०—फिर क्या है !

मुंशी—"पूज्यवर"।

पं०—ऐसा !

मुंशी—हाँ।

पं०—तब तो मैं क़िबला साहब हूं, मेरा घर भर क़िबला है। (मौलवी से) क्षम्यताम्, मौलवी साहब, क्षम्यताम्।

मौ—क्या कहता है ?

मुंशी—आपसे मुआफ़ी मांगते हैं। ज़रा से हेर फेर में आप लोगों में इतना गुत्थमगुत्था हो गया ! न आप पंडितजी की ज़बान समझते हैं, न पंडितजी आपकी। आप लोग 'हिन्दुस्तानी' क्यों नहीं बोलते ? यह वक्त न तो फ़ारसी ही का है और न संस्कृत का। जबतक एक ज़बान एक भाषा न होगी, तबतक हम लोग अपनी बातें एक दूसरे को कैसे सुझा सकते हैं ? एक ज़बान का होना सबसे ज़रूरी है। मौलवी साहब ! आप कुछ कुछ हिन्दी सीख लीजिए। पंडितजी ! आप भी बोल चाल की हिन्दी बोला कीजिए, संस्कृत के शब्द ठूंसने से कोई लाभ नहीं।

पं०—तो क्या संस्कृत भुला दूं? संस्कृत देववाणी है और फ़ारसी राक्षसी भाषा।

मुंशी—संस्कृत देववाणी हो, चाहे जो हो, पर फ़ारसी राक्षसी भाषा कैसे होगी! यह आपकी भूल है। पंडितजी, बिना हिन्दी हिन्दुस्तानी के आपका काम ही नहीं चल सकता। क्या आप राज-दरबार में "भवति भवतः भवन्ति" कहते फिरेंगे?

मौ०—क्या उर्दू से हिन्दी में कोई ख़ास सहूलियत है?

मुंशी—जी हां। हिन्दी हुरूफ़ों में आप चाहे जिस ज़ुबान का मज़मून हूबहू लिख सकते हैं। यह बात आपकी फ़ारसी या दीगर ज़ुबानों में नहीं है। आपके यहाँ लिखा कुछ जाता है, पढ़ा कुछ जाता है।

मौ०—कैसे?

मुँशी—जैसे, 'आलू बोखारा' को 'उल्लू बेचारा' 'किश्ती' को 'कसबी' 'सुनार' को 'सितार' 'किताब' को 'कबाब' 'दुआ' को 'दगा' पढ़ते हैं। यह बात हिन्दी में नहीं है। मेरी तो यह राय है कि कुल लिखा पढ़ी हिन्दी में होनी चाहिए, और ज़ुबान वह बोलनी चाहिए, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आसानी से समझ सकें।

मौ०—ठीक है, मैं हत्तुल मक़दूर कोशिश करूंगा।

मुंशी—कहिए, पंडितजी, अब तो कभी आप ऐसी व्यर्थ की लड़ाई न लड़ेंगे?

पं०—कदापि नहीं। मैं भी यथाशक्ति 'उर्दू' अध्ययन करने की चेष्टा करूंगा।

मुंशी—हां, तभी आप देश और जाति की भलाई कर सकेंगे। अच्छा, अब मैं जाऊँगा।

(जाता है)

मौ—पंडितजी, आप किधर तशरीफ़ ले जायंगे ?
पं०—हूँ। ले जायँगे।
मौलवी—अच्छा, आदाबअर्ज़।
पं०—आशीर्वाद

(दोनों जाते हैं)

ईसाई धर्म और गौतम बुद्ध

[लेखक—श्रीयुत दीनदयालुजी श्रीवास्तव]

साधारणतः बौद्ध और ईसाई धर्म के अनुयायियों से और विशेष कर संसार के विभिन्न धर्मों के समालोचकों से यह बात छिपी नहीं है कि बौद्ध और ईसाई धर्मके बहुत से रीति रिवाजों और धार्मिक पृथाओं में विस्मयजनक सादृश्य दिखाई देता है। किन्तु बहुत कम ऐसे बौद्धानुयायी होंगे और ईसाई तो और भी कम होंगे जिनको इसका वास्तविक कारण ज्ञात हो। अतएव यह अनुसन्धान करना बहुत ही रोचक विषय है कि किस प्रकार ईसाई धर्म ने बुद्ध भगवान् और उनकी जीवनसंबंधी घटनाओं को अपना लिया है, किस प्रकार उनको ईसाई महात्मा बना लिया है जिससे रोमन केथोलिक आज भी उनकी उत्पत्ति से पूर्णतया अपरिचित होते हुए प्रेमपूर्वक पूजा किया करते हैं।

इटली के बोलोन शहर में, जो रोमन केथोलिक गुरुद्वारे के बहुत ही समीप है, आजकल जो अनुसन्धान हो रहे हैं, उनसे इस संबंध में कई महात्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं। हाल ही में बोलोन के राष्ट्रवादियों ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और नागरिकों के लिए कुछ व्याख्यानों की व्यवस्था की थी।

सुप्रसिद्ध डाक्टर डॉ. फिलपी ने भी एक भाषण दिया है। ये वही महाशय हैं जिन्होंने कराकोरम के आक्रमण का इतिहास लिखा है और जो सन् १९१४ में इटली के मध्य-एशिया के वैज्ञानिक अनुसन्धान में अगुआ थे। लडक (पश्चिमीय तिब्बत) के निवासियों के विषय में भाषण करते हुए इन्होंने बौद्ध धर्म की रीति रस्मों की सुन्दर चर्चा की है और यह बतलाया है कि इन लोगों पर बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रभाव है, यहाँ तक कि आज भी इस प्रदेश में ग्रामों की संख्या की अपेक्षा मठ और मन्दिरों की संख्या कहीं अधिक है। बौद्ध और ईसाई धर्म की समानताओं का वर्णन करते हुए जब उन्होंने यह बतलाया कि रोमन केथोलिक महात्माओं की सूची में गौतम बुद्ध को एक उच्च स्थान दिया गया है, तब तो श्रोताओं के अचंभे का ठिकाना न रहा। उनकी राय में गौतम बुद्ध को जोसोफत (Josophat) का नाम दिया गया है जिनके नाम से २७ नवम्बर को उत्सव मनाया जाता है। जोसोफत और बरलाम की जो कहानी प्रचलित हो गई है उसका आधार भी सिद्धार्थ की वह कथा है जिसमें उनको पहले पहल सांसारिक दुःखों, बुढ़ापा और मृत्यु आदि का अनुभव हुआ था।

सैकड़ों वर्षों तक उक्त धार्मिक कथा का, जो बरलाम और जोसोफत के इतिहास के नाम से प्रसिद्ध है, ईसाई साम्राज्य में खूब ही प्रचार हुआ। यूरोप की कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जिसमें इस कथा का अनुवाद न हुआ हो। सुदूरवर्ती आइसलैंड (बर्फस्तान) तक की भाषा में इसका रूपान्तर पाया जाता है। केथोलिक पादरियों ने इसका प्रचार करके बड़ी सफलता प्राप्त की थी। तत्कालीन साहित्य में भी इसके प्रभाव के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

सबसे पहले यह कहानी यूनानी भाषा में डेमस्कसनिवासी सेंट जौन के ग्रन्थों में पायी जाती है, यह आठवीं शताब्दी में एक प्रसिद्ध धर्माचार्य हो गये हैं। यह स्वयं यूनानी और लेटिन गिरजाघरों में महात्मा के आसन पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। यदि हम इनके प्रारम्भिक जीवन को ध्यानपूर्वक देखें, तो हमको बुद्ध भगवान् के

ईसाई महात्मा बनने के रहस्य का थोड़ा बहुत पता लग जायगा। यह सेंट जौन अपने पिता के बाद अबू जफरुल मन्सूर खलीफा के दरबार में एक उच्च पद पर नियुक्त हुए थे। ऐसा मालूम होता है कि इन्होंने यहाँ पर गौतम बुद्ध की कहानी सुनी और जब इन्होंने पादरी जीवन धारण किया तो इस कहानी को ईसाई रंग रूप देकर जोसोफत की कहानी बना डाली। संक्षेप में यह कहानी इस प्रकार है—

जब सेंट टोम्स के प्रयत्न से भारतवासियों ने ईसाई मत ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया, तब अबेनेर नामी एक शक्तिशाली काफिर बादशाह ईसाइयों को सताने लगा। कुछ दिनों बाद इस बादशाह के एक लड़का हुआ जो सुन्दरता, विचारशीलता, और भक्ति-भाव में अद्वितीय था। इसका नाम जोसोफत रखा गया। उस समय एक ज्योतिषी ने यह भविष्य वाणी की कि यह राजकुमार अपने पैत्रिक साम्राज्य का उत्तराधिकारी तो नहीं होगा, किन्तु सारे संसार पर इसका दिव्य अनुशासन होगा। इसलिए बादशाह ने एक ऐसा महल बनवाया जिसमें हर प्रकार की सुख-भोग की सामग्री प्रस्तुत थी। वहां पर यह राजकुमार सुन्दर और नवयुवक शिक्षकों तथा नौकरों के साथ रखा गया। बादशाह की यह कड़ी आज्ञा थी कि भूले से भी राजकुमार की आँखों के सामने दारिद्र्य, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि संसार के किसी प्रकार के वीभत्स दृश्य न आने पावें। संक्षेप में, यह महल इस प्रकार सजाया गया था कि राजकुमार को कभी महल से बाहर निकल कर बाहरी संसार में विचरण करने की इच्छा ही न हो। अतएव ईसामसीह के धर्म का कोई संदेश कभी उसके एकान्त में प्रविष्ट नहीं कर सका।

इस प्रकार राजकुमार कुछ दिनों तक अपने यौवन के दिन चैन से काटता रहा। एक दिन निरीक्षकों की असावधानी से वह महल के बाहर चला गया और रास्ते में एक अंधे और एक कोढ़ी से उसकी भेंट हो गयी। बड़े आश्चर्य से उसने अपने अनुचरों से पूछा कि यह क्या बात है। लाचार होकर उन्होंने बतलाया कि शरीर धारण

करके मनुष्य के लिए इस प्रकार कष्ट उठाना स्वाभाविक है, 'शरीरम् व्याधिमन्दिरम्'। इसी प्रकार एक दूसरे अवसर पर उसने एक बुड्ढे आदमी को और एक मृतक शरीर को देखा, तब उसने फिर पूछा कि क्या मनुष्य-जीवन की यही चरम सीमा है। क्या इनसे छुटकारा पाना मनुष्य के लिए असम्भव है। मन ही मन इन बातों को सोचता विचारता वह महल में चला गया। किन्तु कोई बात उसकी समझ में नहीं आयी। सौभाग्य से एक ज्ञानी और पहुँचे हुए महात्मा, जो बरलाम के नाम से प्रसिद्ध थे, राजकुमार के पास आने जाने लगे और उसको ईसाई धर्म के सिद्धान्त बतलाने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने राजकुमार को गार्हस्थ्य जीवन छोड़ने का उपदेश दिया। धीरे धीरे राजकुमार के निरीक्षकों को इन महात्मा पर संदेह होने लगा और इनका आना रोक दिया गया। किन्तु महात्मा के उपदेशों से राजकुमार का चित्त संसार से उपराम हो चुका था और अभिभावकों के हज़ार प्रयत्न करने पर भी राजकुमार की उदासीनता किसी प्रकार दूर नहीं हुई। आख़िरकार जोसोफत ने राजपाट का मोह छोड़ कर जंगल का रास्ता लिया। जंगलों में बराबर कई वर्ष तक घूमने के बाद एक दिन जोसोफत की फिर अपने पुराने मित्र बरलाम से भेंट हो गयी। कुछ दिनों के बाद बरलाम का शरीरान्त हो गया और जोसोफत फिर अकेले साधुजीवन व्यतीत करने लगे। जब जोसोफत का स्वर्गवास हुआ तब भारतवर्ष में इन दोनों महात्माओं के स्मारक बनाये गये और नाना प्रकार की विचित्र कहानियाँ इनके जीवनसम्बन्धी घटनाओं के साथ जोड़ दी गईं।

सरसरी तौर पर देखने से ही यह ज्ञात हो सकता है कि इस कहानी की एक एक घटना गौतम बुद्ध के इतिहास से मिलती जुलती है। गौतम बुद्ध की एकान्त में शिक्षा होना, एक बुड्ढे, एक रोगी और एक दरिद्री आदमी का मिलना, एक शव से भेंट होना और अन्त में एक प्रसन्न-वदन और शान्तचित्त उदासी के दर्शन होना, फिर राजपाट छोड़ देना और संन्यासी जीवन में

प्रवेश करना आदि घटनाएं जोसोफत की कहानी की घटनाओं से अक्षरशः मिलती जुलती हैं, अतएव इन कथाओं के दो भिन्न भिन्न नायक मानना किसी प्रकार संभव नहीं है। छोटी छोटी घटनाओं में भी अत्यधिक सादृश्य है, यहाँ तक कि कहीं कहीं पर तो जोसोफत के जीवनचरित की शब्द-योजना भी संस्कृत के 'ललित विस्तर' से बहुत मिलती है।

यदि इनकी एकता का और भी अधिक प्रमाण चाहिए तो जोसोफत शब्द की ओर ध्यान दीजिए, अरबी में इसका रूप है युदासत, अतएव यह बोदीसत का अपभ्रंशमात्र मालूम होता है। क्योंकि अरबी वर्णमाला में य और व का बहुधा मिश्रण हो जाया करता है। और यह तो प्रसिद्ध है कि बोदीसत (बोधिसत्व) बुद्ध भगवान् की एक साधारण उपाधि है।

इन दोनों कथाओं के सादृश्य ने समय समय पर बहुत से ईसाई धर्मवेत्ताओं को परेशान किया है। एक अवसर पर 'वेलेनटिन' कहते हैं—कुछ लोग यह मानते हैं कि सीरिया से कोई यहूदी भागकर भारतवर्ष में गया और वहाँ उसने बौद्ध धर्म का प्रचार किया और कुछ लोग बुद्ध को 'एपोस्टिल टॉमस' का शिष्य मानते हैं, किन्तु ये लोग यह बतलाने का कष्ट नहीं उठाते कि ऐसी अवस्था में गौतमबुद्ध का जन्म ईसा मसीह से ६२२ वर्ष पहले कैसे हो सकता था? एक प्रसिद्ध पोर्तुगीज इतिहासज्ञ भारतवर्ष का इतिहास लिखते हुए सालसीत टापू के भ्रमण का उल्लेख करता है। उसने वहाँ पर एक पहाड़ की चट्टानों में विशाल कमरों से युक्त एक सुन्दर मन्दिर कटा हुआ देखा था, जो कनहारी गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। उसने वहाँ के एक बुड्ढे आदमी से पूंछा कि यह किसने बनवाया है, तो उसने निश्चयात्मक रूप से बतलाया कि यह मन्दिर सेंट जोसोफत के पिता की आज्ञा से बनवाया गया था जिससे राजकुमार संसार की प्रपंच से सर्वथा पृथक् रह सके, इतिहासकार आगे चलकर लिखता है कि कहानी से यह भी पता चलता है कि जोसोफत भारतवर्ष के किसी प्रसिद्ध

महाराजा का पुत्र था, अतएव संभव है कि गौतम बुद्ध से ही इसका अभिप्राय हो।

डेमस्कस के जौन को आज इतने दिन हो गये हैं कि उनकी कहानी के नायक का महात्मा पद प्राप्त कर लेना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। 'पेटरस' नेटालीयस ने उनको अपनी ईसाई संत-सूची में स्थान दिया है, कारडीनल वेरोनियस ने ईसाई शहीदों का उल्लेख करते हुए इनका वर्णन किया है और इनकी स्मृति के लिए २७ वीं नवम्बर नियत करदी है। प्राचीन पूर्वीय ईसाइयों ने भारतीय महाराजा के पुत्र जोसोफत की पूजा के लिए २६ अगस्त निश्चित की थी, पैलरमो नगर में इन्हीं महात्मा के नाम से एक गिरजाघर भी बना हुआ है।

इन बातों के साथ हम को यह अनुमान भी लगा लेना चाहिए कि बौद्धधर्म के जन्मदाता बुद्ध भगवान् को ईसाई धर्म की रोमन केथोलिक शाखाओं में सम्मिलित हो जाना उस समय कितना स्वाभाविक रहा होगा, चाहे ईसाई जानबूझ कर ऐसा न भी करना चाहते होंगे। अन्त में इस संबंध में प्रोफेसर मेक्समूलर की सम्मति उद्धृत कर देना असंगत न होगा—

"महात्माओं की आध्यात्मिकता के विषय में हमारी चाहे जितनी उच्च धारणा हो, जो लोग गौतमबुद्ध को महात्मा की श्रेणी में रखने में कुछ भी संकोच करते हैं उनको गौतम बुद्ध का जीवन चरित, जैसा बौद्ध ग्रन्थों में दिया हुआ है, ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। यदि उन ग्रंथों में अंकित किया हुआ जीवनचरित यथार्थ है तो मेरी सम्मति में बहुत कम महापुरुष बुद्ध के आगे महात्मा कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। इसलिए यदि यूनानी या रोमन चर्च के ईसाइयों ने संट जोसोफत को जो पहले राजकुमार, फिर त्यागी और अन्त में महात्मा हुए हैं, ईसाई महात्माओं की श्रेणी में रख कर सम्मानित किया है, तो मेरी समझ में उनको किसी प्रकार लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है।" *

---

* श्री वी. पी. वाडिया के लेख के आधार पर।

सम्मेलन का सभापति

आश्विन कृष्ण संवत् १६८० के 'कलकत्ता समाचार' में एक साहित्य-भक्त 'धीर' उपाधिधारी महोदय ने 'सम्मेलन का सभापति' नामक एक लेख लिखा है। आपने इस लेख में बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से काम लिया है। आपके लेख का निचोड़ यह है कि अभी तक सम्मेलन साहित्य-संसार से एक प्रकार से अलग सा है। आपके शब्दों में—"मालूम नहीं लोगों ने सम्मेलन के साथ साहित्य शब्द का सम्मेलन क्यों कर रक्खा है। यदि साहित्य से इतनी दूर भागना ही है कि अपने वार्षिक अधिवेशनों में भी बेचारे साहित्य-सेवियों की पूछ न हो तो इससे अच्छा तो यही होता कि बजाय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इसका नामकरण केवल हिन्दी सम्मेलन ही किया जाता।" और भी आपकी एक शिकायत है। एक स्थल पर आप लिखते हैं—"सम्मेलन ऐसे लोगों को सभापति चुनता है जिन्हें कम से कम हिन्दी का साहित्यिक क्षेत्र नितान्त ही नहीं जानता। वे लोग राष्ट्रीय क्षेत्र में, त्याग में, देश-सेवा में कितने ही महान् क्यों न हों परन्तु साहित्य में तो वे एक प्रकार से कोरे ही थे......क्या पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी आदि इन नौजवान राष्ट्रीय लोगों से अधिक दिन संसार में हमारे मेहमान रह सकते हैं।"

श्रीमान् धीर महोदय ने लिखा तो खूब है। हमारी समझ में नहीं आता कि सम्मेलन से ऐसा कौनसा घोर पातक हो गया कि जिससे उसका मध्यवर्त्ती शब्द 'साहित्य' तिरस्कृत और कलुषित सीमा के समीप पहुँचने को तैयार हो गया। संसार के किसी भी उन्नत राष्ट्र की जीवित भाषा के दो मुख्य अंग उसी प्रकार होते हैं जैसे कि रथ के दो चक्र। वह दो अंग प्रचार और ग्रन्थनिर्माण हैं। बिना एक के दूसरा पंगु है। दोनों अन्योन्याश्रय हैं। हमारे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का आदि से ही थोड़े बहुत अंशों में यही उद्योग रहा है कि वह यथाशक्ति दोनों ही अंगों को परिष्कृत, अलंकृत और सुरक्षित रक्खे। इसी दृष्टि से उसने २—३ ऐसे सभापति चुने हैं (यद्यपि सभापति का चुनना सम्मेलन की 'स्थायी-समिति' पर निर्भर नहीं है वरन् उसे सारा हिन्दी संसार चुनता है) जो प्रचार के अंग के पूर्ण विधायक, प्रतिपोषक और प्रचारक कहे जा सकते हैं। साथ ही यह बात नहीं है कि वह साहित्य क्षेत्र में बिलकुल कोरे ही थे। बिना प्रचार के किसी भी भाषा का ऊँचे से ऊँचा भी साहित्य जीर्ण होकर सड़ जाता है। राष्ट्र के उत्थान और पतन के साथ भाषा अथवा साहित्य का भी उत्थान और पतन अवश्यम्भावी है। यदि प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रीति से हिन्दी भाषा का आज इतना प्रचार और विकाश न हुआ होता तो हमें अनेक विषयों के ग्रन्थ इतनी बहुलता से देखने को न मिलते। यद्यपि हम यह कह सकते हैं कि अभी हमें उन अंगों की पूर्त्ति करने में यथेष्ट सफलता नहीं मिली है। इस समय हमें साहित्य शब्द की परिभाषा संकीर्ण हृदय से नहीं करनी चाहिये। आज रसों, भावों, नायिका भेद और अलंकारों के समुच्चय को ही साहित्य के पद से विभूषित न करना होगा। हमारे सामने अभ्युदय का सूर्य निकल रहा है, हम अपने विशाल बाहु फैलाकर विराट् भगवान का आलिंगन करने जा रहे हैं, हमारा हृदय उदारता की ओर, नेत्र विकाश की ओर और मस्तिष्क विस्तीर्णता की ओर दौड़ा जा रहा है। आज हम साहित्य शब्द के अन्तर्गत राष्ट्र-प्रगति, विज्ञान, ज्योतिष, आत्म-विद्या, दर्शन

और काव्य को एक साथ सम्मिलित देख रहे हैं। आज हमें इस बात की जरूरत है कि भाषा की मीमांसा, व्याकरण के जटिल प्रश्न और काव्य के चमत्कारों के साथ ही साथ राष्ट्रीय साहित्य के प्रबल भुजदंडों का सेचन करें, उन्नायक भावों का विधान करें, विस्तीर्ण विचारों को अपने हृदय में सादर स्थान दें। इन प्रश्नों पर सूक्ष्म रीति से विचार करने पर स्पष्ट हो जायगा कि सम्मेलन ने अपने सभापतियों के चुनाव में साहित्य सेवियों की क्या अवहेलना की। सम्मेलन अपने वयोवृद्ध साहित्यिक महारथियों को उसी आदर की दृष्टि और भावभक्ति से देखता है जैसा कि देखना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों प्रधान अंगों की रक्षा करते हुए विवेक दृष्टि से निष्पक्षपात होकर हिन्दी जगत् को सम्मेलन के सभापति के चुनाव के सम्बन्ध में प्रतिवर्ष जोरों से आन्दोलन करना चाहिये। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, सम्मेलन को यह अधिकार नहीं है कि वह मनमाना सभापति चुन ले। यह अधिकार तो सम्मेलन के प्रतिनिधियों को, सम्बद्ध संस्थाओं को तथा समस्त हिन्दी-संसार को है। पीछे से टीका टिप्पणी करना उचित नहीं होता और हमारी क्षुद्र सम्मति में तो सम्मेलन से सभापतियों की चुनाव सम्बन्धी कोई ऐसी भारी भूल नहीं हुई है कि जिससे वह कलंक का भाजन बन सके।

अन्त में, हम श्रीमान् धीर महोदय को इस बात पर धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने दो एक पते की बातें बतलाकर कुछ न कुछ हिन्दी-संसार में आन्दोलन तो किया।

पुस्तक प्रकाशकों से निवेदन

पुस्तक प्रकाशको! आप लोगों पर समाज और राष्ट्र का बड़ा उत्तरदायित्व है। आप चाहें तो जन समाज को स्वर्गीय और नारकीय दोनों ही बना सकते हैं। हमारे अभागे देश में तो अभी पुस्तक-प्रकाशन का श्रीगणेश ही हुआ है। किन्तु यदि यह श्रीगणेश ही नष्ट-

भ्रष्ट हो गया तो आगे की उन्नति की आशा करनी व्यर्थ है। आजकल दिन पर दिन पुस्तक प्रकाशकों का बाज़ार गरम होता चला जा रहा है। पचासों पुस्तकें निकला करती हैं किन्तु उन पुस्तकों में हमें रत्न एकाध ही ढूँढ़ने पर मिलता है। हमारा निवेदन विशेष कर कलकत्ता के हिन्दी प्रकाशकों से है। इसमें सन्देह नहीं कि इन सज्जनों ने एक अन्य भाषाभाषी नगर में राष्ट्रभाषा हिन्दी की एक पताका आरोपित कर दी है किन्तु हमें वह पताका डगमगाती हुई दिखाई देती है। उसका स्थापित्व क्षणभंगुर मालूम देता है। कलकत्तावालों का अनुकरण बनारस में तथा अन्य स्थानों के कतिपय प्रकाशकों ने भी किया है। पुस्तक का महत्व केवल ऊपरी चमक दमक, रेशमी और सुनहली जिल्द, बढ़िया कागज़, रंग बिरंगे चित्र और ब्लाकों की भरमार पर ही निर्भर नहीं है (यद्यपि कुछ अंशों तक यह ऊपरी आडंबर भी सहायक होता है) किन्तु उसका महत्व तो इसी में है कि उसमें शुद्ध साहित्य की झलक हो, भाषा का विकाश हो, शैली का आदर्श हो और देश, काल तथा पात्र का यथेष्ट चित्रांकण हो। हमें शोक होता है कि प्रति सैकड़ा ९५ पुस्तकें कूड़े करकट से भरी हुई, गन्दे भावों से रंगी हुई और केवल बाहरी तड़क भड़क से सजी हुई दिखाई देती हैं। क्या नाटक, क्या उपन्यास, क्या काव्य, क्या जीवनचरित सभी की मिट्टी पलीद की जा रही है। नाटक तो इतने गन्दे और रद्दी निकल रहे हैं कि जी चाहता है कि वह भस्मसात् या समुद्रसात् कर दिए जायँ। क्या ऐसी पुस्तकों के पढ़ने से नवयुवक सच्चरित्र और सदाचारी रह सकते हैं। खुल्लमखुल्ला इन पुस्तकों द्वारा ऐयारी, तिलस्म और अश्लीलता का प्रचार किया जा रहा है। भद्दे और बेढंगे चित्र चिपका कर, रेशमी और सुनहली भड़कीली जिल्द लगाकर हम गरीबों का पैसा लूटा जा रहा है। बेचारे सस्ते लेखकों से ४) रु० फ़र्मे पर पुस्तकें लिखाई जाती हैं। प्रकाशक महोदय यह भी नहीं देखते कि पुस्तक के अन्दर क्या भरा हुआ है। उसे प्रकाशित करने से क्या लाभ होगा, जनसमाज पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। उन्हें तो

पैसा वसूल करने से काम है, समाज भले ही रसातल को चला जाय। हम यह नहीं कहते कि पुस्तक-प्रकाशक प्रकाशन से रुपया न कमावें किन्तु साथ ही उन्हें विवेक बुद्धि से काम लेकर यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे प्रकाशन का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। लेखकों से भी हमारा सानुनय अनुरोध है कि वे भूखों भले ही मर जायँ, उनकी कीर्त्ति भले ही नष्ट हो जाय पर वे कभी भूलकर भी इन प्रकाशकों के जाल में न फँसें। अपनी लेखनी को कलुषित न करें, छिपे छिपे समाज के शत्रु न बनें।

हम प्रायः पुस्तक विक्रेताओं की दूकान पर देखते हैं कि विचारे भोले भाले नवयुवक ऐसी ही भड़कीली गन्दी पुस्तकें खरीदा करते हैं। धीरे धीरे उनकी यह प्रवृत्ति होती जा रही है कि वे हिन्दी की उत्तमोत्तम मौलिक पुस्तकें छोड़ कर इधर उधर के सड़े-गले और रद्दी अनुवाद ग्रन्थों की ओर झुकते हैं। हमारा उन लोगों से भी हिन्दी के नाते से यह कहने का अधिकार है कि वह ऐसी पुस्तकों के न छूने के लिये कसम खा लें। एकदम उन्हें गन्दे साहित्य का वहिष्कार कर सत्साहित्य की ओर अग्रसर होना चाहिए।

पहिले शिवजी हुए या रहीम ?

रहीम से हमारा तात्पर्य राम रहीमवाले रहीम से नहीं है किन्तु ख़ानख़ाना अब्दुर्रहमान कविवर रहीम से है। इसी प्रकार शिवजी से हमारा अभिप्राय कैलाशवासी भगवान शंकर से ही है। आज हिन्दी-संसार के सौभाग्य से उपर्युक्त प्रश्न उपस्थित हुआ है। अतः उसका निर्णय हो जाना भी आवश्यक है।

कलकत्ता के सुप्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक श्रीमान् बाबू रामलाल वर्म्मा की कृपा से हमें 'सती पार्वती' नाम की एक सुन्दर और सचित्र पुस्तक देखने को मिली है। इसके लेखक हैं हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् पंडित ईश्वरीप्रसादजी शर्म्मा। पुस्तक के पृ० ४६ पर लिखा है—"यह सुन शिव ने कहा........

रहिमन मोहि न सुहाय अमिय जो पीवै [?] मान बिन ।
बरु विष देय बुलाय मान सहित मरिबो भलो ॥"

यह प्रसंग उस समय का है जब कि सती देवी शंकरजी के आगे मायके जाने को मचल रही थीं। भोले बाबा उन्हें जाने नहीं देते थे। जब उनके समझाने बुझाने से वह किसी तरह न मानी तब उन्हें लाचार होकर कविवर रहीम का उपर्युक्त सोरठा पेश करना पड़ा। पर दुर्भाग्यवश रहीम का यह सोरठा भी सफल न हुआ।

यदि यह सती पार्वती नाम की पुस्तक आज से ५०० वर्ष बाद खोज में पायी जाय तो यह प्रश्न अवश्य उपस्थित होगा कि

पहले शिवजी हुए या रहीम ?

और इतिहासवेत्ता विद्वान् तर्कवितर्क के बाद कदाचित् यही सिद्ध कर देंगे कि रहीम ही पहले हुए। क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है कि शिवजी ने रहीम का सोरठा सती के सामने उपस्थित किया था।

अच्छा होता, यदि शर्माजी इस सोरठे को न लिखकर इसका सारांश शिवजी के मुख से कहलवाते। ऐसी ऐसी बातें हिन्दी जगत् के इतिहास में क्या क्या भ्रान्तियाँ फैला सकती हैं यह कहनेकी जरूरत नहीं। आशा है दूसरे संस्करण में यह भारी भूल हटा दी जायगी।

कचहरियों में देवनागरी प्रचार के लिये प्रार्थना

[श्रीयुत पं० प्रयागनारायण जी त्रिवेदी]

अवध की कचहरियों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार न होने से साधारण जनता को जो प्रायः हिन्दी जाननेवाली है अत्यन्त कष्ट और दुःख होता है। गवर्नमेंट ने नागरी में कार्य करने का जो अधिकार दिया है उससे लाभ हमलोग नहीं उठा सके, यद्यपि आज्ञा

निकले कई वर्ष हो गये। इसका मूल कारण यह है कि स्वयं हमारे हिन्दू वकीलों और राजा ताल्लुकदारों के मुखतारों ने नागरी में काम करना आरम्भ नहीं किया। अगर साधारण लोगों में से कभी कोई नागरी में अर्जी दावा या दरख्वास्त ले गया तो उसको अमलों ने झिड़क दिया और कहा जाकर उर्दू में लिखा लाओ। एक दो बार ऐसी बाधा देख कर हौसलेपस्त हो गये। लोगों ने भयभीत होकर कष्ट और दुःख के साथ उन्हीं के चलन को कायम रक्खा। परन्तु इसका दुःखमय परिणाम यह हो रहा है कि देवनागरी की ओर से लोगों को अरुचि होती जाती है और इसका पठन-पाठन घटता दिखाई देता है। इधर के शहरों में जो दो चार हिन्दी समाचार पत्र और पत्रिकाएं रंग बिरंगी निकलती हैं उन्हें देखकर प्रायः भोले भाले महाशय यह समझते हैं कि देवनागरी की उन्नति हो रही है, परन्तु वास्तव में उसकी दशा शोचनीय है। यद्यपि दावों की हर किस्म की दरख़्वास्त देवनागरी में देने की सरकारी आज्ञा है तथापि अकसर जिलों में देखा जाता है कि मुंसिफ और सबजज तथा डिपटीकलक्टर लोग नागरी में दाख़िल की हुई दस्तावेज की उर्दू में नकल मांगते हैं। आप लोग अब विचार करें कि यह नागरी का गला घोंटना नहीं तो और क्या है? हम इस लेख द्वारा, हिन्दू वकीलों और राजा तथा ताल्लुकदारों के मुखतारों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि आप लोग कृपापूर्वक देवनागरी अक्षरों में दीवानी, माल, फौजदारी के काम जारी कीजिये और मातृभाषा के जीवित रखने में सहायता कीजिये। इसको छोटा काम न समझिये।

बहुत से हिन्दू राजे व ताल्लुकदार ऐसे हैं जिनका ज़िमींदारी का दफ़्तर अभी तक देवनागरी में नहीं बदला गया। सन् फस्ली के नये वर्ष के कागजात की तैयारी का समय अब आ गया है, आशा है कि वे इस ओर ध्यान देंगे।

इस विचार से कि कदापि मेरे लेख से सदय होकर कोई महाशय देवनागरी का प्रचार आरम्भ करें, मैं नीचे दोनों प्रमाण लिखे

देता हूं। जहाँ कहीं आवश्यकता हो इनका हवाला दे दीजिये, हाकिम खुद गजट मंगा कर देखेगा और फिर नागरी में अर्जी दावा और दरख़्वास्त वगैरह लेने से इनकार न करेगा। केवल हिम्मत करके नम्रता और सावधानी के साथ कहना चाहिये कि इस विषय में सरकारी आज्ञा बहुत साफ़ है, आपको नागरी में लिखा कागज ले लेना चाहिये।

गवर्नमेंट गज़ट इलाहाबाद ३० मार्च सन् १९०६ ई०, इसमें तयकर दिया गया है कि अर्जी दावा और जबाब दावा और हर क़िस्म की दरख्वास्त हर अदालत में देवनागरी अक्षरों में दी जा सकती है।

गवर्नमेंट गज़ट इलाहाबाद २० जून सन् १९०८ ई०, इसमें यह तय किया गया है कि जो कागज अदालत ही में देवनागरी अक्षरों में दाखिल किया जाय, उर्दू में उसकी नकल देने की जरूरत नहीं है।

(आज)

सम्मेलन की पुस्तकें

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिंगल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल जी विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुंदर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छंदों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अंत में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

पद्य-संग्रह

संपादक— { श्री ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुंदर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सागर में से ५२० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उन की जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा २ उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक कागज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४२५, मूल्य २)

साहित्य-रत्न-माला

सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को साहित्यरत्न की उपाधि दी जाती है। परीक्षा में बैठने के पहले २०० पृष्ठ का निबन्ध लिखना अनिवार्य है। साहित्य-रत्न-माला में वे ही निबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायँगे, जिन्हें परीक्षा-समिति स्वीकृत कर लेगी। इस माला का प्रथम पुष्प है :—

अकबर की राज्य-व्यवस्था

लेखक—साहित्य-रत्न श्री० शेषमणिजी त्रिपाठी, बी. ए.

इसमें सम्राट् अकबर की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया गया है। अकबर के राज्य काल में भारतीय समाज, धर्म, नीति तथा जीवन की क्या अवस्था थी, वर्तमान राज्य प्रणाली, तत्कालीन व्यवस्था के मुक़ाबले में कैसी है आदि बातों का पता इस पुस्तक से भली भांति लगता है। इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत ही लाभदायक है। पृष्ठ संख्या २८०, मूल्य १)

सम्मेलन की अन्य पुस्तकें

१—सूर्य सिद्धान्त

सम्पादक—श्री० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य सिद्धान्त अपने ढँग का एक ही है। इसे देखने से यह पता भली भांति चल जाता है कि आर्यों ने उन सिद्धान्तों का बहुत पहले साक्षात्कार कर लिया था, जिन्हें जानकर पश्चिमी पंडित आज डींग हांक रहे हैं। इसमें खगोलविषयिक सभी बातें आ गयी हैं। सौर जगत का पूरा पूरा विवरण इस अपूर्व ग्रन्थ में दरशा दिया गया है। इस पर संसार की प्रायः सभी भाषाओं में टीका टिप्पणी हो चुकी है। हिन्दी में दो तीन और

टीकाएँ मिलती हैं, पर उनसे ठीक ठीक भाव समझ में नहीं आता। श्री द्विवेदीजी ने इसके गूढ़ से गूढ़ विषय भी सरल और स्पष्ट भाषा में समझाने की पूर्ण चेष्टा की है। मध्यमा के ज्योतिष विषय में यह स्वीकृत है। सजिल्द पृष्ठ २३२, मूल्य १।)

२—इतिहास

ले०—स्वर्गीय श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर

यह श्री चिपलूणकर जी के निबन्ध का अविकल अनुवाद है। इतिहास सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य बातें इसमें आ गयी हैं। मूल्य =)

३—हिन्दी-भाषा-सार

संपादक { श्री० लाला भागवानदीन
श्री० रामदास गौड़ }

हिन्दी में क्रमशः गद्य का विकास किस किस प्रकार हुआ, इसका पता इस पुस्तक से चल सकता है। इसमें सुयोग्य संपादकों ने हिन्दी के प्राचीन उत्तमोत्तम गद्य लेखकों के चुने हुए लेख दिये हैं। नीचे टिप्पणी भी लगा दी हैं। गद्यात्मक निबन्धों का यह एक आदर्श संग्रह है। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। एण्टिक कागज़, सुंदर छपाई, पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥।)

प्रथमालङ्कार-निरूपण

ले०—साहित्याचार्य्य श्री चन्द्रशेखरजी शास्त्री

प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों को अलंकारविषयिक ज्ञान करा देने के लिए यह 'निरूपण' बड़े काम का है। अलंकारों के लक्षण और उनके उदाहरण बड़ी ही सरलता से समझाये गये हैं। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। मूल्य =)

पुस्तकें मिलने का पता—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

निम्नलिखित दो पुस्तकें पौन मूल्य पर मिल सकेंगी।

१—देशभक्त लाजपत

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय जी की जीवनी इस पुस्तक में बड़ी ही खोज के साथ लिखी गयी है। इसकी वर्णन शैली भी मनोरम है। लाला जी के जीवन में देश-सेवा करते हुए कैसी कैसी घटनाएँ हुई हैं, उन्हें क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कष्ट सहन करते हुए भी वे अपने पथ पर कैसे डटे रहे हैं, आदि सभी बातें लेखक ने इस पुस्तक में यथा स्थान संपादित कर दी हैं। पृष्ठ संख्या ३२५ मूल्य १), रियायती मूल्य केवल ॥।)

२—नीति-दर्शन

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

यह नीतिशास्त्र की अद्वितीय पुस्तक है। अनेक ग्रन्थों से इस का सम्पादन किया गया है। हिन्दू धर्म-व्यवस्था, राजनीति, समाज संगठन आदि सभी ज़रूरी बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डाली गयी है। यह प्रत्येक नवयुवक को अपनानी चाहिये। पृष्ठ संख्या २१० मूल्य ॥।), रियायती मूल्य केवल ॥-)

पुस्तक-विक्रेताओं को सूचना

१—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित समस्त पुस्तकों पर १००) से अधिक की पुस्तकें लेने से २५ फी सदी कमीशन मिलता है।

२—१००) से कम की पुस्तकें लेने से २० फी सदी कमीशन मिलता है।

३—१०) से कम के आज्ञापत्र पर कोई कमीशन नहीं दिया जाता है।

शीघ्र ही सूचीपत्र मँगाइये। मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

'साहित्य-भवन लिमिटेड' द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

साहित्य-विहार—लेखक, श्रीवियोगीहरि

यह वियोगीजी के चुने हुए भक्ति विषयक और साहित्य विषयक ११ सुन्दर लेखों का संग्रह है। अधिकतर लेख पत्र पत्रिकाओं में निकल चुके हैं और लोगों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसको पढ़ने से न सिर्फ आपको हिन्दी प्राचीन साहित्य की चासनी चखने को मिलेगी, किन्तु आपको वह अपूर्व आनन्द मिलेगा जो आपको अच्छे से अच्छे नाटक और उपन्यास पढ़ने से नहीं मिल सकता। मू० ॥।≡)

योगी अरविंद की दिव्यवाणी—सम्पादक, श्रीवियोगीहरि

श्रीअरविन्द भारतमाता के उन सपूतों में से हैं जिन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए ही जन्म लिया है और उसी के लिए प्राण निछावर करना अपने जीवन का उद्देश मान रक्खा है। आपके लेख आध्यात्मिक विचार, योग, राष्ट्र और जाति सम्बन्धी दिव्य उद्गारों का संग्रह करवाया है। मूल्य ।-)

गल्प लहरी—लेखक, स्वर्गीय श्रीगिरजाकुमार घोष

घोष बाबू से हिन्दी साहित्य अच्छी तरह परिचित हैं। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इनके लेख बहुत पसंद करते थे। आप गल्प और आख्यायिका लिखने में सिद्धहस्त थे। यह पुस्तक आप की चुनी हुई सुन्दर गल्पों का संग्रह है। मूल्य १)

होमर गाथा—सम्पादक, स्वर्गीय श्रीगिरजाकुमार घोष

महाकवि होमर के 'ओडिसी' 'और 'इलियड' नामक काव्यों का भावानुवाद। मूल्य १)

इनके अतिरिक्त हमारे यहां हिन्दी संसार की समस्त पुस्तक उचित मूल्य पर मिलती हैं)॥ का टिकट भेज कर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

पुस्तकें मिलने के पता—
साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में छपा।

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क ३—कार्तिक, १९८०

संपादक

वियोगीहरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) प्रत्यङ्क ≡)

विषय-सूची

प्रकाशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !

ब्रजमाधुरीसार

संपादक—श्रीवियोगीहरि

ब्रजभाषा साहित्य हिन्दी-साहित्य का प्राण है। ब्रजभाषा साहित्य आदि से लेकर अन्त तक भक्तिरस से सना हुआ है। प्रायः जितने कवियों ने ब्रजभाषा में कविता की है, वे सभी उच्च कोटि के भक्त थे। ब्रजसाहित्य के माधुर्य्य के सम्बन्ध में अधिक कहना व्यर्थ है। वास्तव में, यह साहित्य इतना बड़ा है कि सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करना हरेक मनुष्य का काम नहीं, अतएव इस सुधारस को जनसाधारण के पास पहुँचाने की इच्छा से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने ब्रजमाधुरी-सार नामक संग्रह प्रकाशित किया है।

इस संग्रह की **चार विशेषताएं** हैं, सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय श्रीसत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है, ऐसा एक भी प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि न होगा जिसकी माधुरी का रसास्वादन पाठकों को इस संग्रह में न कराया गया हो। दूसरी विशेषता यह है कि बहुत से ऐसे कवियों की रचनाओं का इसमें समावेश हुआ है जो आजतक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुई है, तीसरी विशेषता यह है कि इस संग्रह में सम्पादक महोदय ने यथेष्ट टिप्पणी लगा दी है, जिससे थोड़ी हिन्दी जाननेवाले पाठक भी आसानी से इसको समझ सकते हैं और चौथी विशेषता यह है कि प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित्र और उसकी रचनाओं का सूक्ष्म परिचय भी पाठकों को करा दिया गया है, जिससे पाठकों को यह मालूम हो सकता है कि किस प्रकार की परिस्थिति में ऐसे उच्च कोटि के कवियों और कविताओं का विकास हुआ था।

संक्षेप में, जो मनुष्य एक बार भी आद्यन्त इस ब्रजमाधुरीसार को पढ़ जायगा, वह आजीवन इस माधुरी को न भूलेगा। पुस्तक ६३२ पृष्ठों में समाप्त हुई है। सुंदर सचिक्कण कागज़; कपड़े की जिल्द। मूल्य केवल २)

मन्त्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन की पुस्तकें

सुलभ-साहित्य-सम्मेलन-माला

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति ने सुलभ-साहित्य-माला निकालने का निश्चय किया है। इसका उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी प्रेमी इन ग्रन्थ-रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है और यह बहुत ही आवश्यक है कि प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों का उचित आदर किया जाय, क्योंकि इसकी निरपेक्षता से हमारी वर्त्तमान तथा भावी साहित्यिक उन्नति में भारी बाधा पड़ने की संभावना है। अभी हम लोगों ने वर्तमान साहित्य का संगठन ही क्या किया है? यदि हमें अपने साहित्य में प्राण संचार करने की आवश्यकता है, तो प्राचीन ग्रन्थों की खोज करनी तथा बिना लाभ के लोभ के उन्हें प्रकाशित करना भी अनिवार्य्य है। इसी सिद्धान्त पर सम्मेलन ने इस माला का गूँथना निश्चित किया है। इसमें न केवल प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ ही प्रकाशित होंगे, वरन् वर्तमान विषयों के भी उच्च कोटि के ग्रन्थ निकला करेंगे। दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं:—

१—भूषण ग्रन्थावली (द्वितीय संस्करण)

(सटिप्पण)

भला भूषण कवि की ओजस्विनी कविता को कौन पसंद न करता होगा। अत्युक्ति न होगी यदि यह कहें कि यह हिन्दी में वीर-रस के एक मात्र कवि हैं। साथ ही साहित्य के आचार्य भी। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट

को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान श्री० पं० राम-नरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥=)

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का सामना करना पड़ा, वर्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इस पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली ही पुस्तक ही है। 'मिश्रबन्धु विनोद' रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

भारतगीत

लेखक—श्री० पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठक जी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा? आपकी गणना वर्तमान हिन्दी साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नव-युवकों में जातीय जीवन का संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठक जी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना

साहित्य मर्मज्ञ श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास
(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६००० संवत् पूर्व से ५०० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा, जहां से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का संदेश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास-विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ संख्या ४०६, मूल्य केवल १॥)

भारतवर्ष का इतिहास
(द्वितीय खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु,

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुंदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य २)

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११] कार्तिक, संवत् १९८० [अङ्क २

मनोर्थ

ऐसी करौ नव लाल रँगीले जू
चित्त न और कहूं ललचाई ।

जे सुख दुःख रहैं लगि नेह
सो ते मिटि जाहिँ रु लोक बड़ाई ॥

संगति साधु वृन्दावन कानन
तो गुन गाननि माँझ बिहाई ।

छबि कंज पगौ की तिहारे बसौं
उर देहु यहै ध्रुव कों ध्रुवताई ॥

श्री ध्रुवदास

राजुल-विवाह

(गतांक के आगे)

नेमिनाथजी का उपदेश

मुनिवर निरख मलीन वह मुखचन्द्र-छबि-छटा,
दृग कोर से बरसती थी घन घोर घन घटा।
बन में खड़ी अकेली सी तज राज-गृह अटा,
मन में दया सी आई कलेजा उमँग फटा॥
राजुल के बैन सुन के सजल नैन हो गये,
उड़गन हृदय-अकाश में चमके नये नये॥

माया का रूप देख के दिल दंग हो गया ?
सोचे अनंग क्या यह सहित अंग हो गया ?
किस रंग में थे डूबे यह क्या ढंग हो गया ?
क्या ब्रह्म और माया का फिर संग हो गया ?
रवि रूप ज्ञान का जो सहारा ज़रा लिया,
किरनों ने उसके दम में तिमिर लोप कर दिया॥

जग जोति हो उदोत से विकसित कमल-कली,
सरसिज चमन से दिल के कुछ ऐसी पवन चली।
बोले मधुर बचन कि सुनो हे ललित लली !
दुनियाँ असाँच के ही है सांचे में यह ढली॥
मिथ्या है सब यह जितना कि संपत सुहाग है,
हैं यह महल धुएँ के औ भूतों की आग है॥

खिल नील नभ में चन्द्र दिखाता हुआ कला,
बिखरे से मोतियों की वह तारों में झलमला।
लुर लुर अकाश-गंग में लोगों के बरमला;
नट खेलकर पलक में फलक से गया चला॥

मिट चाँदनी वह रैन अँधेरी फिर आ गई,
व्याकुल हुए चकोर उदासी सी छा गई ॥

पूरब से चल प्रभात प्रकाशक वह मार्तण्ड,
प्रज्वलित जु पल में करता है दुनियाँ के खंड खंड।
जल को सजल बनाती मरीचैं प्रवल प्रचंड,
पल में विनाश करती हैं हिमवंत ऋतु की ठंड ॥
फिर काल-चक्र की वह झपेटों से पस्त हो,
जाता है डूब संध्या को सागर में अस्त हो ॥

मौसम बदलते रहते हैं रंगत नई नई,
आरंभ में सुखद से व अन्तिम में दुखमई।
लाली अनित्य रहती है संसार में छुई,
सुख संपदा इधर आई उधर गई ॥
ग्रीषम शिशिर शरद कभी पावस वसंत है,
दो दिन की चाँदनी है यह फिर सब का अंत है ॥

भूले भ्रमर निहार वह रंगत भली भली,
फूले से वन विचरते हैं बागों कली कली।
आख़िर वह कुल बहार जो पतझड़ छुली छुली,
हैं मक्खियाँ से मारते फिरते गली गली ॥
जिसको पराग समझे थे वह आग बन चली,
रस जानते थे जिसको वह विष की बनी डली ॥

दुलहिन दिखाई देती है दुनियां बनी ठनी,
है दीखती बनावटी मुखड़े पै रोशनी।
दिखलाती मूरखों को अदाएँ ये हैं घनी,
करती कलेजा काट है इसकी दशन कनी ॥
इस शोख़ फ़ितना साज़ से धोखा जो खा गये,
वह जीते जी ही अपने नरक में समा गये ॥

भव-सिंधु में अनंत हिलोरे हैं आ रहीं,
तिनके से ले इधर से उधर को बहा रहीं।
भौंरें असंख्य बीच में चक्कर हैं खा रहीं,
नर-नारियों को खींच तली में डुबा रहीं॥
जो ज्ञानवान सोच समझ तट तरफ़ भगे,
कछ मछ की वह झपट से निकल पार जा लगे॥

❧

नौशा बने जो जोश जवानी में आज हैं,
शिर सहरे मोतियों के चमकते वह ताज़ हैं।
गाने बजाने नाच के सब साज़ बाज हैं,
सँग में बरातियों की लिये सुख-समाज हैं॥
फिरते गली गली हैं चढ़े लाल पालकी,
कुछ भी ख़बर नहीं है उन्हें आज काल की॥

❧

मन मौज में जो आके प्रिया बांह हम गहैं,
डर है कि तुम समेत न हम धार में बहैं।
आवागमन के चक्र कई जन्म तक रहैं,
दारुण जरामरण के वही दुःख फिर सहैं॥
नरदेह फिर मिलै न मिलै क्या यक़ीन है,
यह दीन जीव कर्म के बिलकुल अधीन है॥

❧

दारुण विपत का गेह है दुखदायनी दुनी,
चिंता की ज्वाल जलती है इसमें सहस गुनी।
मोती का चूर समझे हैं जिसको वह है चुनी,
कहते हैं यह पुराण व लाखों ऋषी मुनी॥
रहना अचेत जग में महाशोक भूल है,
भूलो न कोई इसमें वह पुश्ते का फूल है।

❧

वह आदिनाथ शंभु सुमति पुष्पदंतजी,
शीतल विमल व मल्ल अजित वर अनंतजी।
वह कुन्त नाथ पद्म प्रभू धर्म संत जी,
वह पार्श्वनाथ वास पूज्य दिग महंत जी॥
चंचल दुनी को देख दिल उनके पलट गये,
ठगनी कुरूप जान के दुनियां से हट गए॥

❧

हम-तुम के चक्र ही में हैं हम तुम अभी फँसे.
हों एक, हैं अनेक मकानों में जा बसे।
ममता में इस शरीर के इस तरह से गसे,
जैसे हों हाथ पैर किसी ने जकड़ कसे॥
मैं नेमि बन गया हूं औ राजुल हो तुम बनी,
यह सुधि नहीं कि बसता है दोनों में इक धनी॥

❧

संसार सुख जो हमसे सुमुखि! तुमने कुल कहे,
इस घोर धार में जो पड़े वह विमुख बहे।
आनन्दकन्द मुक्ति से बंचित जो पशु रहे,
फिर फिर जरा-मरन के दुसह दुःख उन सहे॥
फिर कर्म जाल फंद वह बुनते चले गये,
शिर दोनों हाथ पीटते धुनते चले गये॥

❧

जितने थे कंत अंत में सब छोड़ चल दिए,
कंगन के लाग गाँठ धजी तोड़ चल दिए।
तनहा ही इस जहान से तज जोड़ चल दिए,
चिमनी सी चक्की कांच की वह फोड़ चल दिए॥
यह प्रेम, चाहता हूं, जो अविरल प्रकाश हो,
ऐसा सहज स्वरूप न जिसका विनास हो॥

❧

मेरे असीम प्रेम की कुछ थाह ही नहीं,
जितनी मुझे है चाह तुम्हें चाह ही नहीं।
मेरे समान आपको उत्साह ही नहीं,
मेरे सरिस तो नेही कोई नाह ही नहीं॥
दिल में है मेरे अब तो यह इच्छा ठनी हुई,
दोनों बनें हम एक, मिटा दें यह कुल दुई॥

समझो न यह नेह में मेरे है कुछ कमी,
जिस सत्य से परन्तु यह दुनिया है कुल थमी।
रंगत उसी सनेह की दिल पर मेरे जमी,
मंजूर मुझको शादी है, लेकिन न यह गमी॥
पहनी सुहाग चूरी बनाया जो ठाठ था,
दो दिन निभा न देखा तो फिर और घाट था॥

चिथड़े की गांठ जोड़ जो करते यह प्रीति हैं,
कुल अपने कुल की लोग मनाते जो रीति हैं।
जो प्रेम में निवाहते दुनिया की रीति है,
वह भी तो भय से काल के रहते सभीति है॥
आनन्द भय के साथ रहै यह मजाल क्या,
इक साथ वन विचरते हैं शेरो गिज़ाल क्या?

संसार में किसी का नहीं कोई भी सगा,
फंदा है मोह-जाल का दुनिया में यह लगा।
पछतायगा जो प्रेम में इस नीच के पगा,
जितने हैं कंत करते हैं सब अंत में दगा॥
जितना कि इसका नेह है सब नेह नीच है,
निर्मल है जल पटल पै मगर अंत कीच है॥

गुलशन बहार कलियां सुवेलीं सुमन घनी,
चंपा चमेली केतकी कचनार रससनी।
गेंदा गुलाब सेवती नरगिस सुहावनी,
आकाश के कुसुम हैं ये दो दिन की चांदनी॥
रँग आसमाँ बदलता है क्या कम नये नये,
दुनिया ये गुल खिलाती है हर दम नये नये॥

नित नित नई पवन है चमन बीच बह रही,
भौंरी अपतसी बेली चमेली की गह रही।
झोंके नसीम के कभी आंधी है सह रही,
कोमल सुमन समीर ये कानों में कह रही॥
भोली ये रस बहार का मिलना ना मिलना क्या?
दो दिन कली का बाग़ में खिलना ना खिलना क्या?

चकई! री चल तू प्रेम-सरोवर की सैर कर,
बिछुरन की रैन का नहीं होता जहां गुज़र।
फूले कमल कुमोदनी कलियां हैं ताज़ो तर,
करते कलोल हंस हैं झीलों फुला के पर॥
ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म का हर दम प्रकाश है,
दुख का बिनाश नित्य सहज सुख की राश है॥

बिछुड़े हुए जुगों के जहां मिलते लोग हैं,
जीव और ब्रह्म के जहां होते सँजोग हैं।
आवागमन के हटते कठिन से कुरोग हैं,
प्राणी पहुँच के भोगते आनन्द भोग हैं॥
सारूप मुक्ति की जहां अद्भुत बहार है,
तरवन तरन का मानों गले चंद्रहार है॥

खुलते हैं भाग भोग के कुंजी से त्याग की,
अनुराग कीमिया को बुटी है विराग की।
तुमको लगन लगी है जो सचमुच सुहाग की,
आनंदकंद नित्य अचल सत्सुहाग की॥
जग में सुकर्म करते हुए वह जियन जियो,
अमरावती में बस के अमर रस प्रिया! पियो॥

रमते हैं राम अपने यह आराम कुछ नहीं,
तन त्रास भूख प्यास शरद भानु कुछ नहीं।
निज धाम छोड़ हमको यह धन धाम कुछ नहीं,
मेरे समीप रहने का यां काम कुछ नहीं॥
जाकर इकन्त बन में कहीं वास तुम करो।
चिन्तन सहज स्वरूप का तज आस तुम करो॥

लीला समझ में जब कि यह राजुल की आ गई,
झुरमट में आंसुओं के ज़रा मुस्करा गई।
मनमुग्धता सी शोक के बदले समा गई,
रजनी विछोह हट के प्रभा और छा गई॥
विज्ञान के प्रकाश से सानंद हो गई,
मोहाग्नि जो प्रचण्ड थी वह मंद हो गई॥

ऐसी पिलाई घोंट अमर मंत्र की घुटी,
जीवित सी हो गई वह मनो सूंघ कर बुटी।
जीवन-मरन की आस जगत आस सब छुटी,
गिरि से उतर समीप ही मुनि के बना कुटी॥
निज रूप के प्रकाश में सरमस्त हो गई,
अज्ञान की अँधेरी निशा अस्त हो गई॥

धारन अचल विराग किया फिर नहीं हिली,
हासिल हुईं तमाम जो थीं ख़्वाहिशें दिली।
चम्पाकली सी लगते बसंती पवन खिली,
प्रीतम से अपने उड़ के अमरलोक में मिली॥
पाया अचल सुहाग अमल कीर्ति छा रही,
गिरनार पर चरन हैं अभी तक पुजा रही॥

धन धन्य हैं वह वीर अचल दृढ़ जो लोग हैं!
तिनके समान तजते जो दुनिया के भोग हैं।
आवागमन का तप से हटाते कुरोग हैं,
हरते वियोग दुःख को करते वह जोग हैं॥
तन मन तमाम उनकी चरन-रज पै वारिये,
जब तक कि दम में दम रहै मूरत निहारिये॥

सूरदासजी में मानवानुराग

[लेखक—श्रीयुत पंडित गुरुप्रसादजी पांडेय बी० ए० 'विशारद']

मा

नवानुराग को अंग्रेजी में Human emotion कहते हैं। जिस कवि में मानवानुराग नहीं, वह कवि संसार के लोगों के प्रीति-व्यवहार, स्वभाव, प्रकृति और ममता का वर्णन सफलता से कदापि नहीं कर सकता। तुलसीदासजी और सूरदासजी में यह बड़ा अन्तर है कि सूरदासजी में जितनी ही मानवानुराग की मात्रा अधिक है उतनी ही तुलसीदासजी में 'दैविक भक्ति' की। सूरदासजी ने मनुष्य-प्रकृति का अच्छा अध्ययन और मनुष्यों के प्रेमप्रीति और ममता का बड़ा सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया था। मानव-प्रकृति से वे भली भाँति परिचित

थे। इनकी कविता पढ़ने से यह मालूम होता है कि इन्होंने चरित्र-अध्ययन बड़े परिश्रम से किया था। मनुष्य की बाल्य, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओं का इन्होंने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। जैसा उत्तम और सच्चा बालचरित्र इस कवि ने कहा है वैसा संसार के किसी ग्रंथ में देखने में नहीं आता। बाललीला के वर्णन में सूरदासजी स्वयं बालक हो गये हैं। ज्योंही माता ने कहा "कजरी को पय पियहु लाल तब चोटी बाढ़े" तैसे ही कृष्णजी ने दूध पीकर पूँछा "मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी, किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी"। देखिए सूरदासजी ने कितनी कुशलता से बालक की साधारण सरलता और उसका भोलापन दिखलाया है। दूध पीते देर न हुई कि बालक ने पूँछा "माँ चोटी कब बढ़ेगी"। कवि बालक वृद्ध वयस्क सभी के भावों को इतनी खूबी से जभी बयान कर सकता है जब उसमें मानवानुराग की मात्रा अत्यन्त अधिक हो। बिना अनुराग के यह बात असम्भव है। जिसने प्रेम का अनुभव किया ही नहीं वह प्रेम का वर्णन कहाँ से कर सकता है। जो वैराग्य जानता ही नहीं वह वैरागी की दशा का क्या वर्णन कर सकता है? जिसने कभी झरना या पर्वत देखा ही नहीं उसको इसकी सुन्दरता का क्या पता चल सकता है? जिसने बालकों के साथ सहानुभूति प्रकट हो नहीं की, जिसने उनके खेल, तमाशे में उनको उत्साहित ही नहीं किया वह उनकी प्रकृति को कैसे जान सकता है? जिसके हृदय में अनुराग है, जिसके मन में प्रेम है, जिसका हृदय चट्टान की भाँति कठोर नहीं है, वह मनुष्य की प्रकृति का सारल्य और बालकों के भोलेपन को पसन्द किये बिना रह ही नहीं सकता। अनुरागवाले मनुष्य बालकों से उच्छ्वास प्राप्त करते हैं और उनकी लीलाओं से अलौकिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। कालिदास के हृदय में अनुराग था, मानव प्रीति से उनको प्रीति थी, तभी तो उन्होंने बालकों की लीलाओं पर मुग्ध होकर लिखा है—

आलक्ष्यदन्तमुकुलानि निमित्तहासैः।
अव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्॥

अंकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो।
धन्यास्तदंगरजसा मलिनी भवन्ति ॥*

तुलसीदासजी को मानवप्रीति से बहुत प्रीति नहीं थी, परन्तु उनको भी बालकों की सुन्दरता, उनका भोलापन, उनकी मुखश्री देखकर कह ही देना पड़ा—

"नेवछावर प्राण करों तुलसी बलि जाहुँ लला इन बोलन की"

सूरदासजी के "बाललीला"-वर्णन में बालकों का भोलापन, उनका उपहास, उनके उपालम्भ, उनके रोष और सान्त्वना इत्यादि सभी का प्रशंसनीय उल्लेख मिलता है। बाललीला के पश्चात् सूरदासजी ने माखनचोरी का बड़ा हृदयाकर्षक और मनोमुग्धकारी वर्णन दिया है। गोपिकाओं का यशोदा के पास उलाहने के लिए जाना, कृष्ण का चोरी से इनकार करना, माता का हर्ष-मग्न हो जाना, किन्तु दुःखाभियोगों के बार बार आने पर कृष्ण के ऊपर क्रोध करना और उनको ऊखल से बाँध देना इन सब का अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन है। रासलीला, मानवर्णन इत्यादि में पद पद पर सूरदासजी के मानवानुराग और मानवप्रकृति ज्ञान का परिचय मिलता है। गोपियों के विरहवर्णन में मानवानुराग की अत्यन्त उत्कृष्ट मात्रा दिखलाते हुए इन्होंने कमाल कर दिया है। उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए लेखनी चक्कर खाने लगती है और प्रेम का उत्कृष्ट वर्णन देकर आंखों में पानी भर आता है। भारतवर्ष के कवियों में स्वाभाविक विरहवर्णन में सूरदास, भवभूति, कालिदास और श्री-हर्ष का स्थान सब से ऊंचा है और इतना सुन्दर वर्णन संसार के कदाचित् ही और किसी भाषा के कवि ने किया हो।

---

* धन्य हैं वे लोग जिनके वस्त्र ऐसे बालकों के शरीर की मिट्टी से मैले हो जाते हैं, जिनके दन्तमुकुल बिना कारण ही मुसकराने के कारण दिखलाई पड़ते हैं, जिनकी तोतली बोली अव्यक्त होने के कारण ही मधुर है और जो सदैव गोद ही में लिपटे रहना चाहते हैं। देखिए तुलसीदासजी क्या कहते हैं।

"धूसरि धूरि भरे तन आये, भूपति विहँसि गोद बैठाए"

प्रकृति-प्रेम

प्रकृति प्रेम और कवित्व-प्रतिभा का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसके हृदय में कवित्व-प्रतिभा है, उसके हृदय में थोड़ा या बहुत प्रकृतिप्रेम अवश्य होगा। और जहाँ प्रकृति प्रेम है वहाँ प्रतिभा कुछ न कुछ अंश में अवश्य विद्यमान होगी। आजतक संसार में ऐसा कोई भी उत्कृष्ट कवि नहीं हुआ है जिसको प्रकृति से घृणा रही हो। कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, डैराटी, गेटी, शेक्सपियर—इन सब को प्रकृति से अगाध प्रेम था। संस्कृत-कवियों ने प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा ही सुन्दर, चित्ताकर्षक और आनन्दवर्धक वर्णन किया है। भवभूति के "उत्तर रामचरित" में, कालिदास के "रघुवंश" एवं अन्य ग्रन्थों में, भारवि के "किरातार्जुनीय" और माघ के "शिशुपालवध" में प्राकृतिक दृश्यों के जो वर्णन मिलते हैं वैसे अनुपमेय वर्णन संसार की और भाषाओं के पद्य में कदाचित् ही मिलें। प्रकृतिप्रेम से कवि की प्रतिभा तीव्र हो जाती है और उसमें अनुराग की मात्रा बढ़ जाती है। जब ऋतु अच्छी होती है, आकाश मेघमालाओं से आच्छादित होता है और वृक्षलताएँ इत्यादि अपने सुन्दर हरे वस्त्रों में दृष्टिगोचर होती हैं अथवा जिस समय आकाश विमल हो जाता है और उसकी अक्षय उपमाहीन अनिर्वचनीय नीलिमा कवि की आंखों को सहसा अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और वह निदान इकटक चातक की भाँति उसी की ओर देखता रह जाता है, जिस समय बहुमूल्य मणियों के समान गगनमण्डल पर: बिखरे हुए सितारे अपने मित्र, रंग और ज्योति से कवि के हृदय में एक अद्भुत आनन्द-प्रतिभा उत्पन्न कर देते हैं, उस समय उसका कवित्व कर्म अत्यन्त सरल और रोचक हो जाता है। अंगरेज़ी का प्रसिद्ध उपन्यास लेखक और कवि "वाल्टर स्काट" कहा करता था कि यदि वह एक वर्ष तक प्रकृति को न देखे, उसकी हुमखता और वृक्षों की शोभा से अपनी आँखों को तृप्त न करे तो वह शीघ्र मर जायगा। वास्तव में उन लोगों को जिनमें वास्तविक कवित्व शक्ति विद्यमान है प्रकृति-निरीक्षण से एक अद्भुत आनन्द मिलता है

और इस आनन्द को वे लोग जिनको प्रकृति से प्रेम नहीं है जान ही नहीं सकते। श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्थान पर लिखा है कि यों तो कविता वे सब ऋतुओं में कर सकते हैं किन्तु वर्षा ऋतु में उनका काम अत्यन्त सरल हो जाता है। श्रीयुत ठाकुरजी को भी प्रकृति से घनिष्ठ प्रेम है और इसका उदाहरण स्वरूप उनका "शान्तिनिकेतन" है। सूरदासजी के सूरसागर में इधर उधर प्रकृति के बहुत सुन्दर सुन्दर वर्णन मिलते हैं। दशमस्कन्ध के पूर्वार्ध में इन्होंने वर्षा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है, भागवत के वर्षा वर्णन से इनका कहीं अच्छा है। वर्षासम्बन्धी एक पद देखिए—

बरषत मेघवती व्रज ऊपर।
मूसलधार सलिल बरषतु हैं, बूंद न आवत भूपर॥
चपला चमकि चमकि चक चौंधति, करति शब्द आघात।
अन्धा धुन्ध पवनवर्त्तक घन करत फिरत उत्पात॥
निशि सम गगन भयो आच्छादित बरषि बरषि झर इन्दु।
व्रजवासी सुख चैन करत हैं कर गिरवर गोविन्द!

एक गोपिका के विलम्ब करके घर आने पर और उसके पति के भर्त्सना करने पर सूरदासजी ने वर्षा का वर्णन करते हुए उस गोपिका द्वारा क्या ही अच्छा उत्तर दिलवाया है—

"केकी की पुकार धुरवन की धुकार महा,
झिल्ली झनकार डग परत न मेरी है।
टूट टूट नभ से पनारे से परत मनौ,
निझरा झरैं उनई बरखा अँधेरी है॥
बड़े बड़े गोपन की बेटी इहकारे बार,
कामर उढ़ाइ कीन्हीं बरबस चेरी है।
ग्वारे गाँव गोरस हौं बेचन गई तो उत,
श्यामघन घेरी इत श्यामघन घेरी है!"

प्रकृति सम्बन्धी छोटी बड़ी सभी बातों से इनको जानकरी थी। कृषक जीवन पर लक्ष्य करके आप लिखते हैं—

"जनके उपजे दुख किन काटत—
जैसे प्रथम अषाढ़ के वृच्छनि खेतहि निरखि उलारत"

पत्नी जीवन पर—

"यह संसार सुवा सेमर ज्यों सुन्दर देखि लुभायो।
चाखन लाग्यो रुई उड़ि गई हाथ कछू नहिं आयो॥"

देवनागरी लिपि की त्रुटियां और उनका सुधार

[लेखक—श्रीयुत अध्यापक शिवप्रसाद सिंहजी, विशारद]

सार की वस्तुएं और मनुष्यों के विचार परिवर्तनशील हैं। परिवर्तन-तरङ्गिणी जिस द्रुतगति से आजकल अपना प्रवाह परिवर्तित कर रही है, उतनी द्रुतगति इसमें पहले नहीं थी। भारत भी इसके प्रवाह से अछूता नहीं रह सका; यद्यपि प्राकृतिक सीमाओं—हिमालय और हिन्दू महासागर—से घिरे रहने के कारण यह अभी तक दृढ़ कोट बना हुआ था। प्रकृति की प्रेरणा से प्रेरित भारतीय जनसमुदाय में भी राष्ट्रीयता के भाव प्रबल हो गये हैं और प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव देश की उन्नति का अभिलाषी बन प्रयत्नशील है।

माननीय पं० मदनमोहन मालवीयजी के कथनानुसार कोई जाति "विदेशी भाषा और सभ्यता" के ग्रहण से ही पतित हो, अपना अस्तित्व नष्ट करती है, अतः यहां की अनेक संस्थायें इन्हीं दोनों सिद्धान्तों को लक्ष्यकर "विदेशी भाषा और सभ्यता" से अपने देश का पिण्ड छुड़ाना चाहती हैं। राजनीतिक कारणों से लार्ड विलियम वेन्टिक के समय (सन् १८२८ से १८३५ तक) से ही हमारे यहां की राष्ट्र-भाषा का पद धीरे धीरे अंगरेजी को दिये जाने का प्रयत्न हो रहा था, जिसका प्रभाव हमारी जातीयता और राष्ट्रीयता पर बहुत बुरा पड़ रहा था, अतः कुछ भारत हितैषियों से देश को अवनति के गहरे गर्त में गिरानेवाली यह अनुचित कार्रवाई देखी न गई और उन्होंने प्राणपण से यह प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया कि राष्ट्रभाषा का

पद अंग्रेजी को न मिलकर, हर तरह से इस पद की अधिकारिणी 'हिन्दी भाषा' को मिलना चाहिये। इस निमित्त उन्होंने "हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन" नामी संस्था संस्थापित की, जिसने अल्प काल में ही हिंदी राष्ट्रभाषा की आशातीत उन्नति कर दिखायी है। आज मैं इसी हिन्दी-मंदिर—राष्ट्रमंदिर—के द्वार पर एक तुच्छ सेवा लेकर उपस्थित होता हूं, दो चार पत्र पुष्प चढ़ाने की चेष्टा करता हूं।

मेरा पत्र पुष्प क्या है, संसार के भक्तों से विचित्र, मां की सेवा के लिये उसकी त्रुटियां हमें आपके समक्ष समुपस्थित करती हैं, पर क्या करूं, लाचार हूं। माँ के शुभचिन्तक यदि उसको त्रुटियाँ से बचाने का प्रयत्न न करें तो अन्य लोगों की दृष्टि में उनकी माँ अप्रतिष्ठित हो जाय, उसके पूत कुपूत कहलाने के अधिकारी हों। एजूकेशनल गजट अक्तूबर सन् १६१६ भाग ११ संख्या ७ में श्री हरीराम वैश्य बी० ए० एस० सी० शाहजहाँपुर ने उर्दू में "৮" का नया रूप नामक लेख में यह दिखाया है कि बहिर्देशीय मुसलमानों ने नागराक्षरों को उर्दू लिपि में प्रकट करने के हेतु नवीन अक्षरों पर "৮" बढ़ा कर कल्पित कर लिये।

अतः इन कारणों से विवश हो मैं भी "देवनागरी लिपि की त्रुटियाँ और उनका सुधार" पर दो चार टूटे फूटे शब्द कहने का साहस करता हूँ। संसार में अनेक भाषायें और लिपियाँ हैं, केवल भारत में ही सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सन् १६०१ में १४७ भाषाएं और २० हज़ार लिपियाँ थीं; और सन् १६११ में भाषा संख्या २२० तक पहुँच गई। कोई व्यक्ति, वस्तु या भाषा गुण रहित भी नहीं होती। लार्ड विलियम बेन्टिक द्वारा अपने माथे मढ़ी गई अंग्रेजी के प्रचार से लोग अपने देश का उद्धार नहीं देखते और पादरी नोल्स साहब की प्यारी डफली का शब्द रोमन लिपि के प्रचार से भारतोद्धार होगा। हम क्यों सुनें; जब आज से लगभग ८५ वर्ष पूर्व सर जानशोर ने ने ही कह दिया है कि "भारत में रोमन लिपि का प्रचार नहीं हो

सकता" और उर्दू लिपि की अशुद्धियों की उछल कूदने हमारे नाकों दम कर दिया है।

संसार भर की लिपियों में राष्ट्र लिपि होने के अधिक से अधिक गुण देवनागरी लिपि में ही हैं और इसी कारण हिन्दी-राष्ट्रभाषा के साथ साथ, यह राष्ट्र-लिपि होने जा रही है, हमसे पूर्व कई विद्वानों ने इस विषय पर विचार किया है। महात्मा तुलसीदास के कथनानुसार "प्रथम मुनिन जेहि कीरति गाई, तेहि मग्र चलत सुगम मोहि भाई" की नीति का अनुसरण कर मैं भी अपनी कथा आरम्भ करता हूं।

पं० बदरीनाथ भट्ट ने फरवरी सन् १६२० भाग २१ खण्ड १ "सरस्वती" और "सम्मेलनपत्रिका" आषाढ़ संवत् १६७८ भाग ८ अङ्क ११ में "नागरी लिपि में सुधार की आवश्यकता" नामी लेख में देवनागरी लिपि में ७ त्रुटियाँ दिखाई हैं, जिन पर पं० लक्ष्मी नारायण शर्मा द्विवेदी ने "सम्मेलनपत्रिका" कार्तिक संवत् १६७८ भाग ६ अङ्क ३ में विचार किया है। "भट्टजी" की दिखायी त्रुटियाँ और "शर्मा द्विवेदी" जी के उत्तर निम्न लिखित हैं—

(१) इ, ई, उ, ऊ, ए और ऐ की शक्ल अि, अी, अु, अू, अे और अै होनी चाहिये, पर मेरे विचार में इनका रूप इि, इी, उ, ऊ, ऐ और ऐ होना ही ठीक है। ऐसा कर देने से "शर्मा द्विवेदी" जी के सभी आक्षेपों का उत्तर हो जाता है; इससे प्राचीन ग्रन्थों के पढ़ने में अड़चन भी न पड़ेगी; इनकी प्रसिद्धता और परिचय में भी अन्तर उपस्थित न होगा और निरपराध होते हुए यह वर्ण हिन्दी वर्णमाला से अर्द्ध-चन्द्र भी न पायेंगे; इनका मूल वर्ण भी ज्यों का त्यों बना रह जावेगा, बल्कि एक विशेषता पूर्वापेक्षा यह आ जाती है कि आ, ओ, औ, अं और अः की मात्रा पढ़ाते समय छोटे छोटे बच्चों को बताया हुआ अध्यापकों का यह नियम भी सब पर लागू रह जाता है कि "इस अक्षर का अमुक भाग मिटा दो तो शेष इस अक्षर की मात्रा हो जायगी; यह विशेषता गौरव युक्त होगी।" "शर्मा द्विवेदी" का बतलाया 'अ' का रूप 'अ' एक प्रकार से हिन्दी लेखकों में प्रच-

लित हो गया है, और 'शीघ्र लिपि' के लिए इसका प्रचार उचित ही है।

(२) भट्टजी के कथनानुसार 'ख' में कभी कभी 'र' 'व' का भ्रम हो जाता है। 'शर्मा द्विवेदी' जी की तरह मैं भी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं क्योंकि 'ख' की ऊपरी पड़ी पाई की तरह छापने में 'र' 'व' की ऊपरी पड़ी पाइयाँ चाहे कितनी ही एकत्र मिलाई जावें, मिलकर एक रेखा कदापि नहीं हो सकतीं; केवल वर्णमाला जानने वालों को ऐसा भ्रम हो सकता है, अन्यों को नहीं; हस्तलेख में भी तनिक सी सावधानी कर देने से काम चलता हो जायगा अतः भट्टजी का सिद्धान्त मान "ख" को बहिष्कृत कर उसका काम 'प' से ले, विज्ञानक्रमानुसार निश्चित अक्षर हटा विज्ञान-क्रम और व्याकरण नियम में उलट फेर मैं पसन्द नहीं करता।

(३) 'श' 'ष' के उच्चारण स्थान, तालु और मूर्धा में ही जब अन्तर (दूरी) है, जब इनका आरम्भिक रूप ही परस्पर नहीं मिलता; आरम्भिक रूप मिलने की बात तो दूर; उनमें ३ और ६ का सम्बन्ध है रूप एक दूसरे के बिलकुल विपरीत; ऐसी दशा में एक का काम दूसरे से लेना बुद्धिविरुद्ध है। यों तो मानने और लिखने का आपको अधिकार है। श्रद्धेय मिश्र-बन्धुओं तो विनोद में 'ब' और 'व' को एक ही मान लिया है तो कोई उनका क्या करता है। हाँ, 'श' श का रूप यदि 'श' कर दिया जाय तो लिखने में शीघ्रता तो होगी, पर, रायबहादुर पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा जी का अक्षरों के रूपान्तर वाला द्वितीय अनुमान 'अक्षरों' को सुन्दर बनाने का यत्न करना, गलत हो जायगा और शेष दो (१) अक्षरों के सिर बनाना (२) त्वरा से लिखना तथा कलम को उठाये बिना पूरा लिखना", अधिकांश ठीक होंगे। 'र', और 'स'. का रूप 'र', 'स', कर देने में भी यही बात होगी।

(४) 'ण' का रूप 'ण' ही रखा जाय जैसा कि 'भट्ट' जी और "शर्मा द्विवेदी" जी कहते हैं। ६ भाषाओं के पण्डित गुरुवर पं०

बलदेवप्रसादजी शुक्ल अपने लेखों में सदा इसी रूप का प्रयोग कई वर्षों से करते हैं।

(५) ॠ, ऌ, ॡ का भट्ट जी के विचारानुसार कालापानी वास न हो, क्योंकि यद्यपि आजकल हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जिसमें ऌ, ॡ का प्रयोग होता हो, पर, संस्कृत तो ऐसे शब्दों से शून्य नहीं। सम्भव है, किसी दिन उन्हीं शब्दों का हिन्दी में भी प्रचार हो जाय। 'सकल वस्तु संग्रह करहु, आवे कोउ दिन काम' की उक्ति हमें न भूल जानी चाहिये। हमें तो ऌ, ॡ और ॠ का संग्रह भी नहीं करना है। ये हमारी वर्णमाला के अङ्ग हैं। घर में अधिक सम्पत्ति होने पर भट्ट जी ही व्यर्थ फेंकते होंगे, सब लोग ऐसा नहीं कर सकते। हां, यह नियम कर देना चाहिये कि ॠ, ऌ, ॡ का प्रयोग केवल संस्कृत शब्दों के लिये ही हो, शेष में रि, लि, का प्रयोग किया जाय, इससे संस्कृत शब्दों का संस्कृतत्व बना रहेगा या हर प्रकार के शब्द कृष्टान, माष्टर की तरह संस्कृत रूपों में ढाल कर ही लिखे जावें जैसे अरबों ने अपनी भाषा में चरक को ज़िरक या सरक बना लिया है।

(६) पृ, कृ, श्री, के बदले प्रि, क्रि, स्री रूप कर देने से सुन्दरता का गुण धीरे धीरे हमारी लिपि से नव दो ग्यारह होने लगेगा और इन अक्षरों के लिखने में जो शीघ्रता हो रही है वह तीन तेरह हो जायगी, जिसके लिये पं० निष्कामेश्वर मिश्रजी ने अत्यन्त श्रम करके 'हिन्दी शार्ट हैंड' नामी पुस्तक लिख एक अङ्ग की पूर्ति भी कर दी है।

(७) यदि त्र और त्र दोनों ही रूप प्रचार पावें तो इसमें हानि ही क्या है; बल्कि हस्तलेख में त्र, का रखना ही आवश्यक प्रतीत होता है और प्रेस के सुभीते के लिये त्र की तूती का बोलना ही उत्तम है।

माननीय चीफ जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर के कथनानुसार फ़ारसी ژ ज़े तैलङ्गी ज़ा और तामिल झा का सूचक कोई अक्षर नहीं है; मेरी राय है कि फारसी ژ के लिये हिन्दी में भी ज के नीचे तीन

शून्य, तैलङ्गी ज़ा के लिये ज के नीचे दो शून्य लगा कर ज़ ज़ के रूप गढ़ लिये जावें और तामिल झ़ा के बदले झ़ा एक अक्षर नियत हो जाय।

कुछ लोगों—विशेष कर वकीलों के—मुहर्रिरों और 'लकीर के फकीर' उर्दू अभ्यासी विद्वानों का देवनागरी लिपि पर यह आक्षेप होता है कि "हिन्दी शीघ्रता से नहीं लिखी जाती।" मैं कहता हूं कि लघुलिपि प्रणाली न हो तो अंग्रेज़ी और उर्दू में ही शीघ्रता से लिखे जाने का गुण आ जाने से क्या लाभ है जब कि 'लिखें ईसा पढ़ें मूसा' की ही कहावत चरितार्थ होती है, "जल्दी का काम शैतान का होता है" की पदवी उनको प्राप्त होती है। ऐसे व्यभिचार से हिन्दी को बचाना ही हिन्दी-हितैषियों का कर्त्तव्य है। सालभर में केवल एक चिट्ठी के लेखक तो किसी भी लिपि में शीघ्र नहीं लिख सकते।

यदि लघुलिपि का गुण आवश्यक ही है तो देवनागरी में उसे लाने में कठिनाई का अनुभव न करना होगा। केवल भ, म, र, व, ख, की तरह के अक्षरों के लिये कुछ सङ्केत निश्चित कर, शेष वर्णों के ऊपर की पड़ी पाई दूर कर देने से ही शीघ्र-लेख गुण आ जायगा और अब तो इसकी भी आवश्यकता न रही, पं० निष्कामेश्वरजी ने यह मार्ग भी निष्कण्टक कर दिया।

हमारी वर्णमाला के नाक कान बड़े हैं, अतः वह अंग्रेजी मेम साहिबा की तरह सुन्दर नहीं; इसी कारण छपाई का मूल्य अधिक हो जाता है। मां हिन्दी के सुपूत अब उसे सुपनखा बना, गौन पहिना नवीन ढङ्ग की मेम साहिबा बनाना चाहते हैं, पर; मां तू डरना नहीं। क्योंकि, सुपनखा के नाक कान काटे जाने पर राम-रावण की लड़ाई छिड़ी थी; यह काम शीघ्र होने का नहीं।

छोटे छोटे अक्षरों में पुस्तकें छाप हम अबोध बालकों को लड़कपन में ही आँख के अन्धे नवीन जेन्टिलमैन बनाना नहीं चाहते और भारत-सन्तानों की आखों पर नवम्बर सन् १९२२ के "शिशु" में प्रकाशित "देखा एक शैतान का बच्चा, पड़ा गुफा में अकड़े। बड़े

बड़ों की आंखों चढ़ कर नाक कान दोऊ पकड़े" की पहेली वाली वस्तु "चश्मा" लगवा विदेशी व्यापारियों द्वारा देश का द्रव्य-चश्मा-क्रय करने में ही सात समुद्र तेरह नदी पार ले जाना पसन्द नहीं करते। हमें यह कभी पसन्द नहीं कि हमारे कवियों का प्यारा अङ्ग आँख नष्ट हो और हमारे बच्चे छोटे छोटे अक्षर पढ़, आँख गवाँ चश्मा लगा, तेली के बैल बनें।

कहा भी है "एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" गुणों के समूह में एक दोष उपेक्षणीय है।

हमारी लिपि के वर्त्तमान गुणों पर ही सैय्यद अमीर अली मीर, माननीय मजरूहल हक़, मैक्समूलर, सर ईसकिन पेरी, जस्टिस शारदाचरण मित्र, सर गुरूदास बनर्जी, कवीन्द्र रवीन्द्र, जस्टिस दिगम्बर चट्टोपाध्याय, माननीय जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर, राव बहादुर चिन्तामणि वैद्य प्रभृति अन्यभाषाभाषी विद्वान् मुग्ध हैं; फिर हानिकर सुधार की क्या आवश्यकता ?

यदि इतने पर भी अधिकांश माता के सुपूत परिवर्तन के पक्के पक्षपाती हों और माता का अङ्ग भङ्ग करना ही उचित समझें तो छापे की सुगमता के लिये मात्राओं के रूप में कुछ उलट फेर करके वे अक्षरों पर इस प्रकार लगाई जाँय; का, (क, क), कु, कू, कृ, के, कै, को, कौ, कः; पर, मात्राओं का यह या ऐसा ही कोई नवीन रूप आक्षेप रहित 'परवारी गङ्गा' नहीं हो सकता।

मेरी तो यह राय है कि जब परिवर्तन २० वीं सदी के विचार से आवश्यक ही है तो शीघ्र बङ्गाली, महाराष्ट्री, मद्रासी ऐसे विद्वानों की जो रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी की तरह भाषा और लिपितत्त्व के जानकार हों एक समिति का सङ्गठन सम्मेलन शीघ्र करें। वे लोग अन्य समितियों की तरह देश के दिग्गज विद्वानों की सम्मति-संग्रह करके इस विषय पर अपनी सम्मति दें और अन्य लोग उसे स्वीकृत करें, अलग अलग की 'चीं चपड़' से कुछ लाभ नहीं।

सम्पादक

पड़े गर्भ में जब हम आकर कण्ठ हो गये ग्रन्थ सभी।
आये जब असार जगती में ली कर में लेखनी तभी॥
सात वर्ष तक खेला-कूदा, लेकिन अपने लिए नहीं।
ज्ञानी होकर मूर्ख भला हम हो सकते इस भांति कहीं॥
जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र ने की थीं शैशव-लीलाएँ।
जननी-जनक मोद हित केवल हमने भी कीं क्रीड़ाएँ॥
चाहा माता और पिता ने करूँ नौकरी सरकारी।
लेकिन हम को भारत-सेवा की थी लगन लगी भारी॥
थी लेखनी प्रचण्ड हाथ में, ज्ञान प्राप्त था बिना प्रयास।
आत्मा उन्नत थी ही, बस फिर, नाम रख लिया भारत-दास॥
सम्पादक देशोद्धारक बन अब हम देते हैं व्याख्यान।
सब को कविता सिखलाते हैं, कैसा है आदर्श महान॥
कवियो और लेखको! आओ तुम्हें सिखावें लिखना लेख।
अगर न आये पछताओगे आलोचना हमारी देख॥

गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश"।

स्थायीसमिति का कार्य-विवरण

तेरहवीं स्थायी समिति का चतुर्थ साधारण अधिवेशन रविवार कार्तिक कृ० ४ संवत् १९८० तदनुसार २८-१०-२३ को सम्मेलन-कार्यालय में ४ बजे दिन से निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में प्रारम्भ हुआ—

१—श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टण्डन
२— " सूर्यप्रसाद महाजन (गया)
३— " चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा
४— " वियोगीहरि
५— " रामजीलाल शर्मा

६—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण नागर

७—सहायक मंत्री

१—नियमानुसार श्रीमान् पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—स्वर्गीय पूज्य पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र के परलोक-वास पर निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति, हिन्दी-भाषा के अद्वितीय विद्वान् और स्तम्भ पूज्य पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र के परलोकवास पर यह समिति महान् शोक और उनके कुटुम्बियों के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।

यह भी निश्चित हुआ कि इस प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि मिश्रजी के कुटुम्बियों के पास भेज दी जाय।

४—निश्चित हुआ कि सं० ७६-८० का हिसाब और सं० ८०-८१ का आय-व्यय का अनुमान-पत्र आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

५—वृहत् संग्रहालय-भवन-निर्माण के संबंध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

निश्चित हुआ कि श्रीमान् सभापति और प्रधान मंत्री इंजीनियरों की सम्मति से एक ऐसा नकशा तैयार करावें जिसके अनुसार संग्रहालय-भवन-निर्माण में लगभग ५०,०००) रु० का व्यय हो और प्रधान मंत्रीजी यह उद्योग करें कि आगामी वसन्त पंचमी के दिन संग्रहालय की नींव उस भूमि पर पड़ जाय जो सम्मेलन की सम्पत्ति है और जो वर्तमान सम्मेलन-कार्यालय के दक्षिण में है। नकशा जहाँ तक हो शीघ्र तैयार कराया जाय और स्थायी-समिति के सामने स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जाय।

६—श्री प्रचारमंत्रीजी के अदालतों में हिन्दी-प्रचार-संबंधी प्रस्ताव पर निश्चित हुआ कि प्रचारमंत्री अपने अधिकार से अदालतों में हिन्दी-प्रचार का उद्योग करते रहें।

७—श्री महेशदत्तजी शर्मा का वह पत्र जिसमें उन्होंने बनारस राज्य में हिन्दी-प्रचारार्थ एक डेपूटेशन भेजने की आवश्यकता बतलाई है, उपस्थित किया गया।

निश्चित हुआ कि प्रधान मंत्रीजी इस बात का ठीक ठीक पता लगावें कि बनारस राज्य में हिन्दी और उर्दू प्रचार का वास्तविक स्वरूप क्या है।

८—निश्चित हुआ कि श्री प्रो० वेणीप्रसादजी के स्थान में श्री० पं० देवीप्रसादजी शुक्ल स्थायी-समिति के सभासद चुने जायं।

९—हिन्दी रात्रि पाठशाला (जिला स्यालकोट) के मैनेजर का आर्थिक सहायता संबंधी पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चित हुआ कि इनको अपनी पाठशाला के संचालन के लिए स्थानीय प्रबन्ध करना चाहिए।

१०—साहित्य परिषद् (करौली राज्य) के मंत्री, का वह पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने परीक्षार्थी तैयार करने के लिए आर्थिक सहायता मांगी है।

निश्चित हुआ कि प्रधान मंत्री करौली राज्य के अधिकारियों से पत्र-व्यवहार करके इस परिषद् को सहायता दिलाने का उद्योग करें।

११—स्थायी-समिति के पौष कृ० ६ सं० ७९ वाले अधिवेशन के मन्तव्यानुसार काशी के हिन्दी-साहित्य-विद्यालय के मंत्री का आर्थिक सहायता सम्बन्धी प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया—

निश्चित हुआ कि काशी के हिन्दी-साहित्य-विद्यालय को एक वर्ष तक १०) मासिक सहायता दी जाय।

१२—श्री प्रधान मंत्रीजी ने सूचना दी कि वाणिज्य-भूषण श्रीमान् सेठ लालचन्द सेठीजी सम्मेलन के स्थायी सदस्य बनना चाहते हैं, इन्होंने नियमानुसार २५०) शुल्क भेज दिया है।

निश्चित हुआ कि वाणिज्य-भूषण श्री सेठ लालचन्द्र सेठीजी स्थायी सदस्य बना लिये जायं।

श्रीमान् सभापति महोदय को धन्यवाद देने के पश्चात् अधिवेशन समाप्त हुआ।

स्थायीसमिति का कार्य-विवरण

तेरहवीं स्थायी समिति का पाँचवाँ अधिवेशन रविवार कार्तिक शुक्ल ३ संवत् १९८० तदनुसार ११ नवम्बर सन् २३ को ४ बजे से सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सभासदों की उपस्थिति में प्रारंभ हुआ—

१—श्री बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन
२—श्री पं० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसादजी शर्मा
३—श्री पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल
४—श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी
५—श्री पं० रामजीलाल शर्म्मा
६—श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर
७—सहायक मन्त्री

१—नियमानुसार श्रीमान् पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—चतुर्दश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन दिल्ली के सभापति के आसन के योग्य, बाहरी सभासदों की पत्र द्वारा आई हुई और उपस्थित सभासदों की दी हुई सम्मतियों के बहुमत के अनुसार पांच सज्जनों की सूची बनाई गई।

शेष कार्यक्रम पर दूसरे दिन विचार करना निश्चित हुआ।

स्थगित अधिवेशन सोमवार कार्त्तिक शुक्ल ४ संवत् ८० तदनुसार १२ नवम्बर सन् २३ को ४ बजे दिन से सम्मेलन कार्यालय में निम्नलिखित सभासदों की उपस्थिति में प्रारंभ हुआ।

१—श्रीमान् पुरुषोत्तदासजी टंडन
२—श्री० रामनरेश त्रिपाठी
३—श्री० सङ्गमलालजी अग्रवाल
४—श्री० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
५—श्री० रामजीलाल शर्म्मा
६—श्री० लक्ष्मीनारायणजी नागर
७—श्री० लक्ष्मीधर वाजपेयी
८—सहायक मंत्री (श्री दीनदयालुजी)

१—कोकानाडा के विशेष अधिवेशन के सभापति के आसन के योग्य बाहरी सभासदों की पत्र द्वारा आई हुई और उपस्थित सभासदों की दी हुई सम्मतियों के बहुमत के अनुसार पाँच सज्जनों की सूची बनाई गई।

२—नियमावली के नियम १८ के अनुसार आगामी चतुर्दश स्थायी-समिति के सभासद होने के लिए सदस्यों के प्रतिनिधि उनकी सम्मतियों के बहुमत के अनुसार निम्नलिखित चार सज्जन चुनेगये—

१—श्री० शिवप्रसादजी गुप्त
२—श्री० गोविन्ददासजी
३—श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन
४—श्री० रामजीलाल शर्म्मा

३—श्रीमान अर्थमंत्रीजी ने आयव्यय परीक्षक द्वारा जाँचा हुआ संवत् १९७९-८० के आयव्यय का हिसाब उपस्थित किया और आयव्यय परीक्षक ने हिसाब स्वीकृत करते समय जो सूचनाएँ दी हैं वह पढ़ कर सुनायीं। निश्चित हुआ कि हिसाब स्वीकृत किया जाय और हिसाब रखने के सम्बन्ध में आयव्यय परीक्षक ने जिन बातों की ओर ध्यान दिलाया है, भविष्य में उनके अनुसार कार्य किया जाय।

४—नये नियमानुसार २) वार्षिक शुल्क देने के सम्बन्ध में सब संबद्ध संस्थाओं को कार्यालय से जो पत्र भेजा गया था, उसके

४

उत्तर में आया हुआ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री का वह पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा की ओर से लिखा है कि सभा सम्मेलन से सम्बन्ध विच्छेद कर सम्मेलन की संबद्ध संस्थाओं की सूची में से अपना नाम निकलवाना चाहती है।

निश्चित हुआ कि सम्बन्ध सभाओं की सूची में से काशी नागरी प्रचारिणी सभा का नाम सभा की इच्छानुसार हटा दिया जाय।

५—निश्चित हुआ कि कोकानाडा में होने वाले विशेष अधिवेशन की स्वागतकारिणी समिति के मन्तव्यानुसार सम्मेलन का विशेष अधिवेशन मार्गशीर्ष शुक्ल १५ पौष कृष्ण १ और २ संवत् ८० रविवार सोमवार और मंगलवार तदनुसार २३, २४ और २५ दिसम्बर की तिथियों में किया जाय।

६—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रचार कार्यालय मद्रास के व्यवस्थापक श्रीहरिहर शर्मा और आन्ध्र प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रचार कार्यालय के संचालक का वह पत्र उपस्थित किया गया जिसमें वे चाहते हैं कि सम्मेलन यह घोषित करे कि सम्मेलन दिसम्बर के बाद से आन्ध्र देश में हिन्दी प्रचार कार्य बन्द कर देगा; क्योंकि उनकी राय में आन्ध्र देश में हिन्दी की जड़ जम गई है। अतएव सम्मेलन को यहाँ से हट कर अन्य प्रान्तों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। उनकी राय में इस घोषणा से प्रांतीय नेतागण एक ऐसी हिन्दी संस्था स्थापित कर लेंगे जिससे वहाँ हिन्दी का प्रचार होता रहेगा।

निश्चित हुआ कि जब तक आन्ध्र देश में एक सुदृढ़ प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना न हो जाय तब तक सम्मेलन का काम बन्द करना उचित नहीं है। प्रान्तीय सम्मेलन की स्थापना के लिए विशेष अधिवेशन के अवसर पर उद्योग किया जाय और मद्रास तथा आन्ध्र के प्रचार कार्यालयों के व्यवस्थापकों को लिख दिया जाय कि वे आन्ध्र देश में प्रचार बन्द करने की घोषणा न करें।

सभापति

प्रधानमंत्री

प्रेमिका की अभिलाषा

(पं० मोहनलाल महतो गयावाल)

हे प्यारे ! तुम बनो कन्हैया, मैं राधा बन जाऊं,
कलित कलिंदी कूल पर, नित मयूर के संग
नाचूं मेघ मृदंग सा गरजे भरित उमंग
प्रेम योगिनी होकर व्रज की गली गली फिर गाऊं
हे प्यारे तुम बनो०

अलिदल परिवेष्ठित मधुर, वर्षा का उपहार
नव-घन-जल सिंचित सुमन, चुनूं बनाऊँ हार
बैठ किसी अज्ञात कुंज में वह तुमको पहिराऊं
हे प्यारे तुम बनो०

मोर-मुकुट, मुरली, लकुट लेकर होऊं 'श्याम'
तुम्हें बनाऊँ लाड़ले ! सुघर अनोखी वाम
नित नव लीला कर, हे प्रियवर ! रीझूँ और रिझाऊँ,
हे प्यारे ! तुम बनो कन्हैया, मैं राधा बन जाऊँ
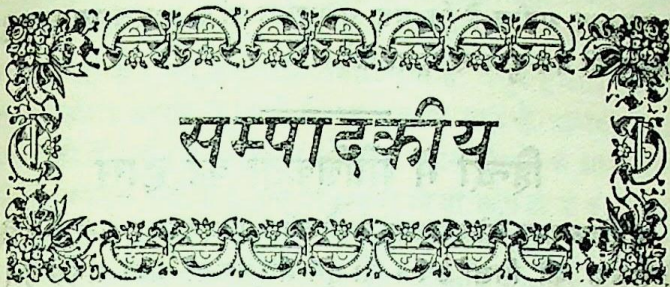
लाहौर में हिन्दी का तिरस्कार

मन लाग्यो सुख भोगमें, तरन चहे संसार ।

ठीक यही दशा वर्त्तमान हिन्दुस्तान की हो रही है, क्योंकि जो भारतभूमि की मूल और हमारे पूज्य पूर्वपुरुष, जीवनमुक्त, महर्षियों की मातृभाषा थी, जिस भाषा के आधार पर वेद, पुराण, स्मृतियां और शास्त्र लिखने पढ़ने से वे पुण्यात्मा भी अपने आप को पवित्र मानते थे, जो भाषा भारत से निकल कर देश देशान्तरों को समुन्नत कर रही है वही माननीया हिन्दी भाषा आज हिन्दुस्तान से विमुख होकर और देशों में आदर पाकर उन देशों को विभूषित कर

रही है, और जिस पतित भाषा को तत्त्वेत्ताओं ने मुख से उच्चारण करने का भी निषेध किया था, उस को अब भारत शिरोधार्य्य करने और उसका पढ़ना अपना मुख्य कर्त्तव्य मानने लगा है, (जैसे—"न वेद्यावनीं भाषां प्राणैः कंठगतैरपि")। आश्चर्य्य है कि सारे पञ्जाब के केन्द्र लाहौर जैसे शहर में, जहां बड़े बड़े विद्वान और अपनी मातृभाषा और देश के अभिमानियों का निवास है ! यहां भी हिन्दी का इतना अनादर है तो छोटे छोटे देहातों का तो कहना ही क्या ? विचारने की बात है कि लाहौर के म्युनिसिपल कमेटी के स्कूलों में ५०-६० स्कूल उर्दू के हैं, और दो हिन्दी के। वे भी बन्द होनेवाले हैं, क्योंकि लाहौर निवासी हिन्दू सज्जन अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाना नहीं चाहते। जो हिन्दू होकर अपने बच्चों से हिन्दी छुड़ाकर उर्दू की शिक्षा पर जोर देते हैं वे अपने पैर में आप ही कुल्हाड़ी मारते हैं। यही कारण है कि हमारे द्विजाति लोग अपने कर्मकांड कर्त्तव्याकर्त्तव्य, पूजनीय लोगों की सेवा से वञ्चित रह जाते हैं। जब अपनी मातृ भाषा नहीं जानते होंगे तो अपने देश की तो क्या, आत्मा की भी उन्नति नहीं कर सकते। समझ में नहीं आता कि हिन्दू भाई देश की भलाई और आत्मोद्धार को खोजते हैं परन्तु देशोन्नति का मूल-मन्त्र 'हिन्दी' को देश-निकाला देते हैं, यह सब दुर्भाग्य का फल है कि अभी तक हिन्दूजाति हिन्दी के लाभ से वञ्चित है। जिस का परिमाण स्वरूप दासत्व और महाकष्टों का सामना करना पड़ता है। इस आपत्ति से बचने के लिए हिन्दुओं को चाहिये कि अपने प्यारे बच्चों को कम से कम पांचवीं श्रेणी तक हिन्दी शिक्षा देवें। मातृभाषा के सिर पर लात मार कर कल्याण होना असम्भव है। जितना हिन्दी से मुख मोड़ते जायेंगे, उतना ही देश अधोगति को पहुँचता जायगा। इसलिये "हिन्दी प्रचारिणी सभा" को भी उचित है कि इस विषय पर विशेष ध्यान देते हुए हिन्दी का प्रचार करने का प्रयत्न करें।

—काशीराम शर्म्मा

हिन्दी वृहत् संग्रहालय

सम्मेलन के गत अधिवेशन में इस सम्बन्ध का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि सम्मेलन एक ऐसा वृहत्संग्रहालय निर्माण करे जिसमें यथासंभव हिन्दी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का, समस्त मुद्रित पुस्तकों का, समाचार पत्रों का, ताम्रपत्रादि और हिन्दी भाषा और लिपिसम्बन्धी वस्तुओं का पूर्ण संग्रह हो। यह भी अनुमान किया गया था कि इस कार्य के संचालन में कम से कम दो लाख रुपये की आवश्यकता होगी। स्थायी समिति ने संग्रहालय के भवन निर्माण की स्वीकृति दे दी है। आगामी वसन्त-पंचमी के सुअवसर पर भवन के शिलाधार रखने का निश्चय हुआ है। यह तो सब हुआ किन्तु धन का अभाव भवन के अत्यधिक विलम्ब और असुविधा का कारण हो सकता है। हिन्दी संसार इस अत्यन्त आवश्यक और प्रशस्य कार्य के लिए जितना ही शीघ्र तन मन और धन से सहायता करेगा उतनी ही जल्दी सम्मेलन इस कार्य में सफल हो सकेगा। सब से उत्तम तो यह होगा कि कोई मातृभाषा भक्त इस मन्दिर के निर्माण करने का समस्त सेवा भार अपने ऊपर ले ले। यह कोई कठिन बात और दुष्कर बात तो नहीं है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि जैसे मंगलाप्रसाद पारितोषिक स्थापित कर श्रीमान् बाबू गोकुलचन्द्रजी अजर अमर कीर्ति के भागी बने हैं उसी प्रकार कोई उदाराशय छिपे हुए लाल, इस कार्य के उठाने में अग्रसर होंगे। हमारी समस्त हिन्दी भाषी जनता

से सानुनय अपील है कि वह यथाशीघ्र और यथासाध्य इस पुनीत मन्दिर की पत्र-पुष्प से पूजा करे।

हिन्दी में मौलिकता का ह्रास

मौलिक शब्द की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी लेखक की निजी उपज को हम मौलिकता मान सकते हैं। इस उन्नति के युग में हमारे हिन्दी साहित्य की मौलिकता का ह्रास होता चला जा रहा है। यदि हम यह कहें कि ६० प्रतिशत पुस्तकें अनुवादित और संकलित प्रकाशित हुआ करती हैं तो कदाचित अत्युक्ति न होगी। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि अनुवाद अथवा संकलन हेय और त्याज्य हैं। अनुवाद और संकलन किसी दर्जे तक उपयुक्त और आवश्यक हैं। यह हमारी साहित्य वाटिका में नवजीवन संचार करने में एक आवश्यक साधन हो सकते हैं। इनके द्वारा हम किसी उन्नत या अवनत मानव समाज का चित्र देख सकते हैं। उससे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और अपने को बना या बिगाड़ सकते हैं। किन्तु इन साधनों की किसी स्थान तक, किसी काल तक और किसी कारण तक, परिमिति हुआ करती हैं। हम साधनों को साध्य नहीं बना सकते। साध्य तो हमारा कुछ और ही होना चाहिये। हम अनुवाद द्वारा मौलिकता का चित्र देख सकते हैं किन्तु अनुवाद को ही मौलिकता नहीं मान सकते। हमारे वर्त्तमान साहित्य में यही भ्रम—अप्रत्यक्ष रीति से ही सही—फैलता जा रहा है। हम लोग नवीन ग्रन्थ निर्माण करना तो जाने दीजिए, प्राचीन मौलिक ग्रन्थों का भी आदर नहीं करते। हम सौ जान से फिदा हो रहे हैं अनूदित और संकलित ग्रन्थों की मनोमोहिनी झलक पर। जब हम इस अनुवाद सागर में डुबकियां लगाते हैं तब हमें इसमें अपना एक भी रत्न ढूढ़ने पर भी नहीं मिलता। हम अपने को पराया सा समझने लगते हैं और अपने विचारों को इस सागर के उत्तंग तरंगों में धोकर एक विचार हीन व्यक्ति से समान पाते हैं। आज

हमारे कर्णकुहरों में शेक्सपियर, मिल्टन, स्पेन्सर मिल, मैक्समूलर, केएट, बकूलें एवं वंकिम, डी. एल. राय रवीन्द्र और बोस की प्रतिध्वनि गूंज रही है। यह प्रतिध्वनि मनोमोहक है, मधुर है और हमारी आत्मा को ऊँचा उठाने वाली है किन्तु हमारी नहीं है, हमारी चिर-सहचरी नहीं है। हमारे साहित्य को इस समय दूसरों के आलीशान महलों की ज़रूरत नहीं है। उसे तो अपनी निजी झोंपड़ी में ही उठना सीखना है। उसे बढ़िया बढ़िया व्यंजनों पर राल नहीं टपकाना है किन्तु अपनी सूखी-रूखी रोटी से ही पेट भरना है। तात्पर्य यह कि उसे परतंत्रता और पराश्रय के इन्द्रोचित भोग विलासों में इस समय हँसने की आवश्यकता नहीं है बरन स्वतंत्रता और स्वाश्रय से प्राप्त सीधा सच्चा जीवन बनाना है किसी अंश तक नामी नामी लेखकों के ग्रन्थों का अनुवाद और संकलन आवश्यक माना जा सकता है किन्तु दो कौड़ी के रद्दी और भद्दे ग्रन्थों के अनुवाद करने के धुन में मस्त होकर छिपे छिपे या उजागर मौलिकता का नाश करना हमारी राय में अपने साहित्य की हत्या करना है। क्या हमें दूसरे भाषा भाषियों के मुख से यह सुनते हुए दुःख नहीं होता है कि "हिन्दी में रक्खा ही क्या है, उनका पन्द्रह आना साहित्य तो हमारी ही भाषा की छाया है"? हमें यह सब सुनना पड़ता है, मन मसोसना पड़ता है और एक लम्बी आह खींचनी पड़ती है। बात तो वे लोग बिलकुल ठीक कहते हैं। हमने अपने आप ही अपने को इस लाञ्छन का पात्र बना लिया है और अब भी बनाते जा रहे हैं। क्या हमारे साहित्य के होनहार लेखक अनुवाद और संकलन की ओर से अपनी ओजस्विनी लेखनी को मोड़कर उसे मौलिकता की ओर झुकाएँगे और अपने लाञ्छन को दूर कर हिन्दी भाषा का मुख समुज्ज्वल करेंगे?

सम्मेलन के विशेष अधिवेशन के सभापति

कोकानाडा में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का विशेष अधिवेशन होने वाला है। श्रीयुत बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने साभापत्य स्वीकार कर लिया है। हम पत्रिका में पहले यह लिख चुके हैं कि कोकानाडा के सम्मेलन का सभापति ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो राजनीतिक-क्षेत्र द्वारा हिन्दीप्रचार का पूर्ण विधायक हो। बाबू राजेन्द्रप्रसादजी सर्वप्रकारेण इस पद के उपयुक्त हैं। आप विहार प्रान्त के एक मात्र कर्णधार हैं। हिन्दी पर आपका अटल प्रेम है। दशम सम्मेलन के आप ही प्रधानमंत्री थे। आपने विहार में हिन्दी प्रचार के सम्बन्ध में जो कार्य किया है वह स्तुत्य है। स्वदेश और मातृभाषा के आप एक जगमगाते हुए लाल हैं। हमें आपके सभापतित्व से अनेक आशाएं हैं। हिन्दी सीखते हुए मद्रासप्रान्त को आप अवश्य ही कोई ऐसा सरस्वती चूर्ण बतलाएंगे जिसका सेवन कर वह अल्पकाल में ही हिन्दी भाषामें सुशिक्षित हो कर उसे राष्ट्रभाषा पद पर अभिषिक्त करेगा। हमारे उत्साही मद्रासी भाई भी राजेन्द्र बाबू से कम लाभ न उठाएँगे। उन्हें चाहिए कि वह इस पुनीत अवसर पर मिलकर कोई ऐसा उपाय सोचें कि जिससे स्वावलम्बन प्राप्त कर थोड़े ही काल में हिन्दी भाषा यथेष्ट ज्ञान सम्पादित कर ले।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सं० १९८० की उत्तमा-परीक्षा का परीक्षा फल

साहित्य

क्रम संख्या	नाम	श्रेणी
१	श्री गुरु प्रसाद पांडेय बी. ए. एल-एल बी.	द्वितीय

हि० सा० स० प्रयाग सं० १६८० की मध्यमा-परीक्षा का परीक्षा फल

प्रथमश्रेणी

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
११३	श्री सुरेन्द्रनाथ ठाकुर	श्री पं० लेखनाथ ठाकुर	कांकेर] सर्व प्रथम
८४	" आदित्य नारायण सिंह	" प्रसिद्ध नारायण सिंह	काशी
८५	" उदयनारायण त्रिपाठी	" हनुमान त्रिपाठी	प्रयाग
८७	" गयाप्रसाद शुक्ल	" पं० सूर्यप्रसाद शुक्ल	काशी
१६३	" घमंडीलाल शर्मा	" पं० किड्डालाल	खुरजा
२२६	" विश्वनाथ सहाय वर्मा	" जगतनारायण लाल	बाँकीपुर
२३६	" माधवप्रसाद शर्मा	" बोधीप्रसाद जी	राजनाँद गाँव

द्वितीयश्रेणी

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
२	" जगन्नाथप्रसाद	श्री बाल मुकुन्द जी	अजमेर
५	" वृद्धि चन्द्र शर्मा	" हमीरमल	"
८	" हरिरामनारायण तिवारी	" नारायण तिवारी	"
११	" दुर्गाप्रसाद शर्म्मा	" पं० शालिग्रामजी शंखधार	दिल्ली
१२	" धर्मदेव विद्यार्थी	" कमला पति	अलीगढ़
२८	" रामचन्द्र लोकड़	" से० नेमीचंद जी	आगरा

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
३६	श्री अनवर मोहम्मद	श्री यार मोहम्मद खाँ	इन्दौर
३९	,, कन्हैया लाल सखवाल	,, पुरुषोत्तम जी	,,
४१	,, किशनलाल ओझा	,, सुखलाल ओझा	,,
४२	,, कृष्णलाल	,, भीष्मप्रसाद जी	,,
४४	,, गणपतिप्रसाद अवस्थी	,, भैरोंप्रसाद जी	,,
४८	,, दराब खाँ	,, महराब खाँ	,,
५३	,, बद्री दत्त	,, जगन्नाथ जी	,,
५४	,, बलदेव सिंह चौहान	,, नारायण सिंह	,,
५५	,, भोलादत्त शर्मा	,, पं० तुलसीराम जी शर्मा	,,
५६	,, भोलाराम	,, भैरों जी	,,
५७	,, मथुरालाल ओझा	,, सुखलाल जी ओझा	,,
५९	,, मन्नालाल	,, नारायण जी	,,
६१	,, मूलचंद वर्मा	,, कालीप्रसाद	,,
६९	,, मोतीलाल मालवीय	,, कृष्णलाल	उज्जैन
७०	,, रामकुमार	,, काशीराम	,,
७३	,, ओरीलाल मिश्र	,, पं० सुधाकरलाल मिश्र	कन्नौज
७५	,, भगवानदास शुक्ल	,, पं० अयोध्याप्रसाद शुक्ल	,,
८२	,, शंकर सहाय सकसेना	,, जयन्ती सहाय बी० ए० विशारद	कानपुर

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
९०	श्री चंद्रशेखर शर्मा	श्री पं० हरिशंकरप्रसाद पांडेय	काशी
९३	" बंगेश्वर प्रसाद	" मु० छुट्टूलाल	"
९७	" रामप्रताप प्रसाद	" जित्तूराम	"
९८	" विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	" पं० रघुनन्दन मिश्र	"
१००	" विश्वनाथ लाल श्रीवास्तव	" राम स्वरूप लाल श्रीवास्तव	"
१०२	" सर्वदेव तिवारी	" पं० बाबूलाल तिवारी	"
१०३	" सरयूप्रसाद शर्मा	" पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा	"
१०५	" शंकर सिंह	" बिसनसिंह	"
१०६	" कुँवरलाल शर्मा	" दौलतराम शर्मा	कोटा
१०७	" कृष्णगोपाल माथुर	" जगन्नाथ जी	"
११०	" जितेन्द्रनाथ घोष	" वृन्दावनचंद्र घोष	कांकेर
१११	" नारायण वामनवार पांडे	" वामन नथोबार पांडे	"
११२	" विनायक रामकृष्ण भोपटकर	" रामकृष्ण नारायण भोपटकर	"
११४	" हलालूराम सोरी	" विसाहू राम	"
११५	" गुंचीलाल तिवारी	" पं० ठाकुरदास तिवारी	खँडवा
११६	" छोटेराम शुक्ल 'विद्या विनोद'	" पं० सीताराम शुक्ल लखनवी	"
११७	" दुर्गाशंकर द्विवेदी	" अनंतराम द्विवेदी	गाडरवारा
११९	" रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल	" मोहन लाल ख़जानची	"

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
१२३	श्री गोकुल प्रसाद त्रिपाठी	श्री पं० जागेश्वर प्रसाद त्रिपाठी	जबलपुर
१२७	" मुन्नालाल गुप्त	" वेणी प्रसाद बिलैया	"
१२८	" रघुनाथ प्रसाद वर्मा	" मुं० गुरुप्रसाद जी	"
१२९	" रतिराम यादव	" शीतलप्रसाद यादव	"
१३१	" सत्यनारायण	" पं० गौरीशंकर शुक्ल	"
१३३	" शिवनारायण शुक्ल	" पं० गौरीशंकर शुक्ल	"
१३७	" गोविन्द नारायण शर्मा	" पं० सूरज नारायणजी शर्मा एम० ए०	जयपुर
१३८	" दामोदर प्रसाद शर्मा	" अमरचंद शर्मा	"
१३९	" प्रभुनारायण शर्मा	" अमरचंद शर्मा	"
१४०	" व्रजमोहन लाल	" भूथालाल जी	"
१४१	" व्रजमोहन शर्मा	" राजवैद्य प्रभुलाल शास्त्री	"
१४३	" भुवनमोहन कासलीवाल	" मनमोहनलाल जी कासलीवाल	"
१४४	" रघुनाथ सहाय शर्मा	" पं० गंगाशंकर जी स्वामी	"
१४५	" नारायणप्रसाद गुप्त	" ओंकारलाल गुप्त	जीरापुर
१४६	" रमाकान्त शास्त्री	" गंगाधर शास्त्री	"
१४९	" सरयूप्रसाद मिश्र	" पं० नरेशप्रसाद मिश्र	देवरिया
१५२	" जीवनलाल नीखरा	" छोटेलाल नीखरा	नरसिंहपुर
१५३	" ओंकारलाल	" भगवान जी	नारायण गढ़

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
१५५	श्री किशनलाल	श्री मोतीलाल	नारायणगढ़
१५६	" किशनलाल व्यास	" गोविन्द राम व्यास	"
१५७	" गौरीलाल	" तिलोकचंदजी	"
१५८	" चैनराम	" रोड़जी व्यास	"
१५९	" नाथूलाल	" सीताराम	"
१६३	" रामचंद्र मिश्र	" भास्कर मिश्र	इन्दौर
१६४	" रामनाथ उपाध्याय	" बालमुकुन्द उपाध्याय	नारायणगढ़
१६५	" अवधबिहारीलाल	" बा० जानकी प्रसाद	प्रयाग
१६६	" उग्रसेन जैन	" ला० मवासीलाल जैन	"
१६९	" चंद्रसेखर शर्मा द्विवेदी	" पं० महादेव शर्मा द्विवेदी	"
१७०	" जगपति चतुर्वेदी	" पं० रामनारायण चतुर्वेदी	"
१७८	" रूपनारायण त्रिपाठी	" पं० टीकाराम त्रिपाटी	"
१८०	" वैद्यनाथ कपूर	" गिरधारीलाल कपूर	"
१८१	" शिवचंद्र शुक्ल	" रामगोपाल शुक्ल	"
१८३	" हरचरण दयाल दीक्षित	" पं० कालीचरण दीक्षित	काशी
१८५	" विलासराय मिश्र	" पं० बुलाकीदत्त शर्मा	कानपुर
१८६	" रामगोपाल मिश्र	" पं० सूर्यप्रसाद मिश्र	फर्रुखाबाद
१८७	" लालतासिंह	" मत्तोलेसिंह	"

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
१८८	श्री शम्भूदयाल सकसेना	श्री गुरुप्रसादजी	फर्रुखाबाद
१८९	" श्रीधर	" डा० गुरुदयालमल	"
१९०	" शांतिदेवी	" ठा० हीरासिंह	"
१९१	" महादेवप्रसाद शर्मा	" पं० जगन्नाथ प्रसाद	फ़ैज़ाबाद
१९२	" गोकुलचंद्र शर्मा	" रामस्वरूप शर्मा	बुलन्दशहर
२०३	" हजारीलाल जे० पांडेय	" भूरेलाल पांडेय	विलासपुर
२०४	" ए० पी० शर्मा	" शिवगुलाम शर्मा	बीकानेर
२०५	" गोवर्द्धनलाल पणियाँ	" पं० धनराज पणियाँ	"
२०६	" मीनाराम रङ्गा	" पं० रामगोपालजी रङ्गा	"
२०७	" मेघराज गोस्वामी	" पं० नृसिंहलालजी शास्त्री	"
२१३	" प्रभुदयाल गुप्त	" ला० बिहारीलाल	नारायणगढ़
२१४	" फूलचंद गुप्त	" ला० किशनलालजी	"
२२३	" गंगाशरणसिंह	" बा० रामप्रसादसिंह शर्मा	बाँकीपुर
२२७	" बृजनंदनप्रसाद मिश्र	" पं० हनूमानदीन मिश्र	बाँदा
२३१	" निरसूसिंह	" गिरधारीलालसिंह	मुज़फ़्फ़रपुर
२४०	" रामेश्वर प्रसाद शर्मा	" जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	राजनाँदगाँव
२४३	" रामस्वरूप मिश्र	" काशीदीन मिश्र	रायबरेली
२४५	" त्रिभुवन प्रसाद	" रामसुचित्र	"

क्रमसंख्या	नाम परीक्षार्थी	पिता का नाम	केन्द्र
२४५	श्री ओंकारनाथ पांडेय	श्री पं० प्रेमराजजी पांडेय	लखनऊ
२५३	,, रामकिशोर शर्मा	,, पं० द्वारिका प्रसाद	लश्कर
२५५	,, रामचरण लाल	,, गणपति	,,
२६०	,, देवचन्द्र	,, कर्मचन्द्र	लाहौर
२६४	,, सूरतसिंह	,, हरनामसिंह	,,
२६८	,, अम्बादेवी	,, ला० डालचन्दजी गुप्त	हरद्वार
२७०	,, टीकाराम भट्ट रेहड़ी	,, घासीरामजी	,,
२७१	,, सरलादेवी	,, ला० हीरालाल गुप्त	,,
२७२	,, रामनारायण मिश्र	,, पं० शिवनारायण मिश्र	हरदोई
२७३	,, गौरीशंकर तिवारी	,, काशीराम	होशंगाबाद
२७४	,, भँवरलाल भट्ट	,, बालगोविन्द भट्ट	नारायणगढ़
२७५	,, स्वामी अमरदास	,, स्वामी सालिगराम	चूरू

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सं० १९८० की मुनीमी परीक्षा का परीक्षा-फल

क्रमसंख्या	नाम	पिता का नाम	केन्द्र	श्रेणी
६	श्री कल्यानप्रसाद गुप्त	श्री किशनलाल जी	करौली	प्रथम
३०	" रामकृष्ण अग्रवाल	" गप्पूलाल अग्रवाल	होशंगाबाद	"
४	" माँगीलाल श्रीमाल	" चिमनलाल श्रीमाल	इन्दौर	द्वितीय
१०	" मिश्रीलाल जी	" सोनारायण	करौली	"
११	" भौंरूलाल	" गिरवरलाल	"	"
१३	" किशनलाल जी	" टेक चंद	"	"
१४	" प्यारेलाल शर्मा	" मगन राम	"	"
१५	" पोथीलाल शर्मा	" मुरलीधर	"	"
१७	" साँवलियालाल गुप्त	" रतनलाल	"	"
१८	" गुलाब चन्द बगड़ा	" फूलचंद जी बगड़ा	जयपुर	"
२०	" शिवशंकर भँवर	" महादेव भँवर	"	"
२१	" महताब चंद खारैड	" सुजानमल जी खारैड	"	"
२३	" श्री निवासदास वैद्य	" सुदर्शनदास वैद्य	जीरापुर	"
२४	" कन्हैयालाल वर्मा	" ग्यारसी राम	"	"

सम्मेलन की पुस्तकें

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ≡)

सरल पिंगल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल जी विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुंदर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छंदों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अंत में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

पद्य-संग्रह

संपादक—{ श्री ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुंदर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सागर में से ५२० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है ? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उन की जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा २ उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक कागज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४६५, मूल्य २)

साहित्य-रत्न-माला

सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को साहित्यरत्न की उपाधि दी जाती है। परीक्षा में बैठने के पहले २०० पृष्ठ का निबन्ध लिखना अनिवार्य्य है। साहित्य-रत्न-माला में वे ही निबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायँगे, जिन्हें परीक्षा-समिति स्वीकृत कर लेगी। इस माला का प्रथम पुष्प है :—

अकबर की राज्य-व्यवस्था

लेखक—साहित्य-रत्न श्री० शेषमणिजी त्रिपाठी, बी. ए.

इसमें सम्राट् अकबर की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया गया है। अकबर के राज्य काल में भारतीय समाज, धर्म, नीति तथा जीवन की क्या अवस्था थी, वर्तमान राज्य प्रणाली, तत्कालीन व्यवस्था के मुक़ाबले में कैसी है आदि बातों का पता इस पुस्तक से भली भांति लगता है। इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत ही लाभदायक है। पृष्ठ संख्या २८०, मूल्य १)

सम्मेलन की अन्य पुस्तकें

१—सूर्य सिद्धान्त

सम्पादक—श्री० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य सिद्धान्त अपने ढँग का एक ही है। इसे देखने से यह पता भली भांति चल जाता है कि आर्यों ने उन सिद्धान्तों का बहुत पहले साक्षात्कार कर लिया था, जिन्हें जानकर पश्चिमी पंडित आज डींग हांक रहे हैं। इसमें खगोलविषयिक सभी बातें आ गयी हैं। सौर जगत का पूरा पूरा विवरण इस अपूर्व ग्रन्थ में दरशा दिया गया है। इस पर संसार की प्रायः सभी भाषाओं में टीका टिप्पणी हो चुकी है। हिन्दी में दो तीन और

टीकाएँ मिलती हैं, पर उनसे ठीक ठीक भाव समझ में नहीं आता। श्री द्विवेदीजी ने इसके गूढ़ से गूढ़ विषय भी सरल और स्पष्ट भाषा में समझाने की पूर्ण चेष्टा की है। मध्यमा के ज्योतिष विषय में यह स्वीकृत है। सजिल्द पृष्ठ २३२, मूल्य १।)

२—इतिहास

ले०—स्वर्गीय श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर

यह श्री चिपलूणकर जी के निबन्ध का अविकल अनुवाद है। इतिहास सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य बातें इसमें आ गयी हैं। मूल्य ≡)

३—हिन्दी-भाषा-सार

संपादक { श्री० लाला भागवानदीन
श्री० रामदास गौड़ }

हिन्दी में क्रमशः गद्य का विकास किस किस प्रकार हुआ, इसका पता इस पुस्तक से चल सकता है। इसमें सुयोग्य संपादकों ने हिन्दी के प्राचीन उत्तमोत्तम गद्य लेखकों के चुने हुए लेख दिये हैं। नीचे टिप्पणी भी लगा दी है। गद्यात्मक निबन्धों का यह एक आदर्श संग्रह है। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। एण्टिक कागज़, सुंदर छपाई, पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥।)

प्रथमालङ्कार-निरूपण

ले०—साहित्याचार्य श्री चन्द्रशेखरजी शास्त्री

प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों को अलंकारविषयिक ज्ञान करा देने के लिए यह 'निरूपण' बड़े काम का है। अलंकारों के लक्षण और उनके उदाहरण बड़ी ही सरलता से समझाये गये हैं। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। मूल्य ≡)

पुस्तकें मिलने का पता—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

निम्नलिखित दो पुस्तकें पौन मूल्य पर मिल सकेंगी।

१—देशभक्त लाजपत

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय जी की जीवनी इस पुस्तक में बड़ी ही खोज के साथ लिखी गयी है। इसकी वर्णन शैली भी मनोरम है। लाला जी के जीवन में देश-सेवा करते हुए कैसी कैसी घटनाएँ हुई हैं, उन्हें क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कष्ट सहन करते हुए भी वे अपने पथ पर कैसे डटे रहे हैं, आदि सभी बातें लेखक ने इस पुस्तक में यथा स्थान संपादित कर दी हैं। पृष्ठ संख्या ३२५ मूल्य १), रियायती मूल्य केवल ॥।)

२—नीति-दर्शन

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

यह नीतिशास्त्र की अद्वितीय पुस्तक है। अनेक ग्रन्थों से इस का सम्पादन किया गया है। हिन्दू धर्म-व्यवस्था, राजनीति, समाज संगठन आदि सभी ज़रूरी बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डाली गयी है। यह प्रत्येक नवयुवक को अपनानी चाहिये। पृष्ठ संख्या २१० मूल्य ॥।), रियायती मूल्य केवल ॥-)

पुस्तक-विक्रेताओं को सूचना

१—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित समस्त पुस्तकों पर १००) से अधिक की पुस्तकें लेने से २५ फी सदी कमीशन मिलता है।

२—१००) से कम की पुस्तकें लेने से २० फी सदी कमीशन मिलता है।

३—१०) से कम के आज्ञापत्र पर कोई कमीशन नहीं दिया जाता है।

शीघ्र ही सूचीपत्र मँगाइये। मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

'साहित्य-भवन लिमिटेड' द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

साहित्य-विहार—लेखक, श्रीवियोगीहरि

यह वियोगीजी के चुने हुए भक्ति विषयक और साहित्य विषयक ११ सुन्दर लेखों का संग्रह है। अधिकतर लेख पत्र पत्रिकाओं में निकल चुके हैं और लोगों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसको पढ़ने से न सिर्फ आपको हिन्दी प्राचीन साहित्य की चासनी चखने को मिलेगी, किन्तु आपको वह अपूर्व आनन्द मिलेगा जो आपको अच्छे से अच्छे नाटक और उपन्यास पढ़ने से नहीं मिल सकता। मू० ॥।≡)

योगी अरविंद की दिव्यवाणी—सम्पादक, श्रीवियोगीहरि

श्रीअरविन्द भारतमाता के उन सपूतों में से हैं जिन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए ही जन्म लिया है और उसी के लिए प्राण निछावर करना अपने जीवन का उद्देश मान रक्खा है। आपके लेख आध्यात्मिक विचार, योग, राष्ट्र और जाति सम्बन्धी दिव्य उद्‌गारों का संग्रह करवाया है। मूल्य ।~)

गल्प लहरी—लेखक, स्वर्गीय श्रीगिरजाकुमार घोष

घोष बाबू से हिन्दी साहित्य अच्छी तरह परिचित हैं। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इनके लेख बहुत पसंद करते थे। आप गल्प और आख्यायिका लिखने में सिद्धहस्त थे। यह पुस्तक आप की चुनी हुई सुन्दर गल्पों का संग्रह है। मूल्य १।)

होमर गाथा—सम्पादक, स्वर्गीय श्रीगिरजाकुमार घोष

महाकवि होमर के 'ओडिसी' और 'इलियड' नामक काव्यों का भावानुवाद। मूल्य १)

इनके अतिरिक्त हमारे यहां हिन्दी संसार की समस्त पुस्तक उचित मूल्य पर मिलती हैं। [illegible] टिकट भेज कर बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

पुस्तकें मिलने के पता—
साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में छपा।

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क ४—मार्गशीर्ष, १९३०

संपादक
वियोगीहरि

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)　　　　प्रत्यङ्क ।=)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्ण १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है, जो भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाक व्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआरडर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें पत्रिका के सम्पादक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से और प्रबन्ध संबन्धी पत्र 'मन्त्री' हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से आना चाहिए।

५—कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने, प्रकाश करने वा न करने का अधिकार सम्पादक को है।

पुस्तक-विक्रेताओं को सूचना

१—सम्मेलन की पुस्तकें सभी पुस्तक-विक्रेताओं को नकद मूल्य पर दी जाया करेंगी। किसी पुस्तक-विक्रेता से सम्मेलन का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

२—अभी २०) से कम की पुस्तकें देने का प्रबन्ध कार्यालय से नहीं किया गया है।

३—२०) से लेकर १००) तक की पुस्तकें एक साथ मोल लेने से २०) फी सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

४—१००) या १००) से अधिक की पुस्तकें एक साथ मोल लेने से २५) सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

५—प्रत्येक आर्डर के साथ ५) पेशगी आना चाहिये। आर्डर के अनुसार भेजी हुई पुस्तकें लौटाई न जायँगी।

मंत्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थ-रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है। अभी हम लोगों ने वर्तमान साहित्य का उद्धार ही क्या किया है? यदि हमें अपने साहित्य में प्राण संचार करने की आवश्यकता है, तो प्राचीन ग्रन्थों की खोज करना तथा बिना लाभ के लोभ के उन्हें प्रकाशित करना भी अनिवार्य्य है। इसी सिद्धान्त पर सम्मेलन ने इस माला का गूँथना निश्चित किया है। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह

इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् श्री० पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराजभूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। वह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ; उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली ही पुस्तक है। 'मिश्रबन्धु विनोद' रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

३—भारतगीत

लेखक—श्री० पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठकजी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा? आपकी गणना वर्तमान हिन्दी साहित्य के महारथियों में हैं। आपकी राष्ट्रीय कविता नव-

युवकों में जातीय जीवन संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य मर्मज्ञ श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५०० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा जहां से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का संदेश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ-संख्या ४०६, मूल्य केवल १॥)

५—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस

पुस्तक में जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुंदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य २)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिंगल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुंदर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छंदों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अंत में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

९—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री व्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस. सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुंदर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

१०—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक-श्री वियोगी हरि

सागर में से ५२० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-

रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उन की जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक कागज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४२५ मूल्य २)

११—बिहारी-संग्रह

संपादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की बिहारी सतसई से प्रथमापरीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटासा संग्रह तैयार किया गया है। जहां तक संभव हुआ है इसमें एक दम शृंगारी दोहों का समावेश नहीं किया गया है, केवल ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी संकोच के प्रथमा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४ मूल्य ।)

१२—ब्रज-माधुरी-सार

संपादक—श्री वियोगी हरि

इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार संकलन किया गया है। इस संग्रह की चार विशेषताएं हैं:—

(१) सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया है, कोई प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गई हैं जिससे साधारण पाठक भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

(४) प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवन चरित और उसकी कविता की सूक्ष्म आलोचना भी की गई है।

संक्षेप में, प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को आद्यन्त इस ब्रजमाधुरीसार का अवलोकन करना चाहिये। पृष्ठ संख्या ६३२, मूल्य सजिल्द संस्करण का केवल २)

१३—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

संपादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसीकृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। पहले खण्ड से लेकर ३४ वें खण्ड तक इस भाग में समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठ संख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और सजिल्द का १।) रु०

परीक्षार्थियों को सूचना

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओं की, संवत् १९८१ की विवरण-पत्रिका छप गई है। जो विद्यार्थी परीक्षा देना चाहें उन्हें तुरन्त -)॥ का टिकट भेज कर मँगा लेना चाहिए। इससे परीक्षा सम्बन्धी सब बातें ज्ञात हो जायँगी।

परीक्षा मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११ } मार्गशीर्ष, संवत् १९८० { अङ्क ४

दर्शनीय पथिक

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच विलोकहु री सखि ! मोहि सौं ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलि हैं ? सकुचाति मही पद पंकज छ्वै ॥
'तुलसी' सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भांति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥

—गोस्वामी तुलसीदास।

श्रीश्यामजू को मुख-वर्णन

[ले०—श्रीयुत पं० मदनलाल चतुर्वेदी]

श्याम सलोने मुख की सोभा ।
लखिकै को व्रज में अस जाको बरबस चित्त न लोभा ॥
घासित वपु कपूर पट वासन कुंकुम तिलक विराजै ।
श्यामा प्रेम हेम रेखा मनु सुभग श्यामिका भ्राजै ॥
भ्रकुटी कुटिल बरुनी विभ्रम चख में चंचलताई ।
मनों चाप में परे हिंडोरनि पुतरी पैंग बढ़ाई ॥
अनियारी आँखियन को कजरा घोष-वधुनि-मन मोहै ।
चन्द्र-हास सम बिमल हास प्रस्फुटित कमल मुख सोहै ॥
कुंचित केस-कलाप जाल सुविसाल भाल पर झूलै ।
नीलोत्पल पै झूमत मानों मत्त मधुव्रत भूलैं ॥
गोल कपोल रुचिर नासास्थित लटकन छबि अनतोली ।
नील गगन में चन्दा के ढिग मानो एक तरोली ॥
दीव्यमान मकराकृत कुण्डल करन मध्य यों झलकैं ।
मुख घन मण्डल उभय ओर तें मानों कौंधा लपकैं ॥
बिम्ब अधर है रह्यो अधर लखि उपमा कहौं बनाई ।
सास्वत राधा-राग अधर पै मङ्गल है झलकाई ॥
दसन अहैं कै रूप सलिल मथि मानिक ढेरी पाई ।
सुधा हेत कै देव-दैत्य की रचिकै पाँति बिठाई ॥
कहौं कहाँ लौं आजु ललन के मुख की सुन्दरताई ।
सोभा कोटि मदन त्रिभुवन की लखि वा मुखहि लजाई ॥

तुम्हें याद हो कि न याद हो !

[ले०—श्रीयुत देवीप्रसादजी 'प्रीतम']

(ग़ज़ल)

ब्रजराज जीवन प्राणधन, तुम्हें याद हो कि न याद हो।
नवनेह की वह शुभ लगन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
रजनी शरद की रसभरी, वह दूब खूब हरी हरी।
यमुना का तट वृन्दार वन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
मुकुलित चमेलिन बेलियाँ, परमल पवन अठखेलियाँ।
फूले कदम विकसित चिमन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
मंजुल मुरलि मस्ताना ध्वनि, विह्वल हुई ब्रजनारि सुन।
धाईं सकल तज धन भवन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
उमड़ी घटा नव नेह की, बिसरी सबै सुध देह की।
वह लाज यह दीवानापन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
उलटे पलट सिंगार सज, पति सुत सकल परिवार तज।
मदहोश निकलीं छक मदन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
हथफूल सिर गर किंकनी, पग पँचलरी कर करधनी।
पहुँची बदल यों आभरण, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
कचनार-कलिका रससनी, छिटकी कुसुम सर चाँदनी।
संकेत का वह सम्मिलन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
निश्चिन्त बैठी निज अँगन, अनुपम छटा छवि में मगन।
पीछे से आ बैनी गुहन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
धीरज से धर कोमल चरन, चीरों की वह चोरी करन।
लीला सरस अम्बर-हरन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
छल सों चुरेरिन भेष धरि, पहुँचे लली वृषभान घर।
अनुपम छटा नोखी फबन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
मग रोकते कर दान हट, उलझी जो भुलनी भूल लट।
मुख मोर घूँघट की हलन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥

चुन चूनरी रस लूटना, कुच बंद बंदन टूटना।
झुक झमक जेहर पग धरन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
लीला सरस अनुराग वह, हिल मिल रँगीली फाग वह।
पिचकारि कुमकुम की चलन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
मत्थे बिँदुल कज्जल अनी, लहँगे की घूमन अति घनी।
नवनारि बन वह नृत करन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
रख नख पै गिरि कौतुक रचा, ब्रज जन लिए मरते बचा।
उमड़े प्रलय के श्यामघन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
प्रगटी बिकट दावा अनल, बन झाड़ झाड़न रहे जल।
दृग मूदते कर दी दमन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
वह चैत चाँदिनि दुख तरन, बाँधे महरि ऊखल करन।
वह नयन नीरज कण झरन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
लैलै चमेलिन बेलियाँ, पूछे नवल अलबेलियां।
प्रिय नाम का वह उच्चरन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
अक्रूर सँग रथ चढ़ चले, लग लग हृदय मिल मिल गले।
दुर आगमन का वह बचन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
कजली जो हमने पेश की, हँस कर रँगीले! तुमने ली।
चितवन रसीली वह हँसन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
हम राज़ नाज़ नयाज़ का, वही बंदा वाद नवाज़ का।
"प्रीतम" बिछोही दीन जन, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥

अन्तर्नाद

१—आवरण

सदा हमीं से कहा करते हो कि अपना परदा हटाओ। परदा तो दो के बीच में हुआ करता है, एकही के नहीं। सारा दोष हमारे ही माथे न मढ़ो, न्यायाधीश! हमारे परदा खींचने से क्या होगा, तुम्हारी सूरत देखने को थोड़े ही मिल जायगी! लोग कहते हैं कि परदे की

ओट में एक अद्भुत दृश्य दिखाई देगा, पर हमें तो यह सब धोखा जान पड़ता है। समझ में ही नहीं आता कि अद्भुत दृश्य किसे कहते हैं। हाँ, यदि तुम्हारी झलक देखने को मिल जाय तो हम उसे कुछ अलौकिक बात कहें। पर, तुम न जाने, किस परदे की ओट में घूँघट काढ़े बैठे हो। हमने परदा अलग कर दिया, लोक-लाज को पानी की तरह बहा दिया, आपे को तुम्हारे दिली इश्क में खो दिया, पर फिर भी, मेरे चितचोर! तुम लापता ही रहे। हम तो समझते थे कि तुम हमारे सुख-दुख के साथी रहोगे, हृदय के हार बनोगे, कलेजे की आह सुनोगे, जिगर के फफोले ठंडे करोगे, पर यह सब न करके तुमने हमारे आगे धर्म की धुजा गाड़ दी, ज्ञान का पोथा खोल दिया और निराशा का काला पहाड़ खड़ा कर दिया। अब भला पूछो तो हमारे परदा खोलने से क्या होगा। क्या यही सब देखने को परदा हटवाया है, मेरे नटखटी!

२—सवार

देख देख, घोड़े की बाग मोड़ ले, नहीं तो आगे धड़ाम! अरे, तुझे क्या इस घोड़े पर चढ़ने का घमंड है? जानता नहीं, यह घोड़ा कितने कुशल सवारों को गिरा चुका? माना कि इसकी गति कल्पनातीत प्रबल है, इसकी पहुँच तीनों लोक में है, इसकी दौड़ चौदहों भुवन में है, पर, अश्वारोही! तूने इस पर चढ़कर क्या क्या देखा—यही तीन कौड़ी की दुनियाँ, दस इञ्ची का क्षेत्रफल? फिर भी ज़रा सी चूक पर रसातल जाने को तैयार हुआ है! देख, बाग़ मोड़ले, लगाम क़ाबू में रख, इस राजमार्ग पर हो आगे न बढ़। इसके दोनों ओर गहरी खाइँ है। तू तो इस तंग गली से जा। रास्ता टेढ़ा अवश्य है, कंकड़ीला भी है। काँटे भी बिछे मिलेंगे। पर डरना मत, साहस न छोड़ना, चले ही जाना, मेरे बहादुर सवार! जब तेरा घोड़ा हाँफने लगे, पसीने से तर हो जाय, अपनी सारी कूद-फाँद भूल जाय, तब उतर पड़ना। इस प्रकार तू अपनी मंज़िल पूरी कर सकेगा। तू कहाँ पहुँच जायगा, यह बात कहने की नहीं।

३—वीणा

यह झीनी झनकार किधर से आरही है ? एँ ! हवा का रुख क्या इधर ही को है ? आज कार्यालय में जितना काम किया उतना किसी दिन नहीं किया । सारे बंध ढीले पड़ गये हैं । शिर अब भी घूम रहा है, पर धन्य मेरे स्वामी ! तूने हृदय भी एक क्या ही अनूठी चीज़ बनाई है ! आहा ! यह झनकार तो और भी समीप सुनाई देने लगी ! इसके तारों पर जिसकी सुकुमार सुकोमल अँगुलियाँ नाच रही हैं वह धन्य है ! इस मधुर झनकार से तो यही अवगत होता है कि मानों मस्तिष्क और हृदय के द्वन्द्व संग्राम में धीरे धीरे किन्तु गम्भीरता से हृदय की जीत हो रही हो । इस अव्यक्त वीणा के प्रत्येक स्वर से सुधाबिन्दु टपक रहे हैं । मुझे इतने ही में सुख है कि दूर से इसका मधुर नाद सुना करूं । कैसा होगा वह वीणा का बजानेवाला, कैसी होगी उसकी गति माधुरी, कैसी होगी उसकी भोली भाली मन्द मुसकान ! जो हो, इस झनकार की तरल तरंगावली पर मुझे तैरना ही सौभाग्यमय जान पड़ता है । किन्तु सावधान ! अरे स्वार्थी सावधान !! तेरे कठोर और भारी पैरों का आघात वह हलकी हलकी तरंगें कैसे सह सकेंगी । दूर से ही सुन, उस गर्वीली इठलाती हुई झनकार को ।

४—दर्शन

कड़ी धूप में पसीने की टपकती हुई बूँदों में देख । आँसुओं से झिलमिलाती हुई आँखों में देख । धूल में मिले हुए हीरे की कनी में देख । तिरस्कृत, पददलित, पतित फूल के अक्षत पराग में देख । कमल कोष में क़ैद भँवरे की माधुरी में देख । कवि के वक्षस्थल पर उठती हुई लहरों में देख । नभोमंडल पर खिंचे हुए चित्रों की छटा में देख । पत्तों पर धीरे धीरे ढलकते हुए ओस-बिन्दुओं में देख । कोमल पदाघात से ताड़ित हृदयस्पन्दन में देख । टिमटिमाते हुए दीपक की करुणाभरी जोति में देख । अरे, विज्ञानियों के आविष्कार में, दार्शनिकों के तत्वान्वेषण में, व्यापारियों के बहीखाते में, अधिकारियों की सत्ता में तू उसे न देख सकेगा । उसकी झलक संसार

से बाहर न दिखाई देगी। पर उसे देखनेवाले का संसार कुछ निराला ही होगा। उस दिलदार का दीदार तेरी तीन कौड़ी की दुनियाँ का कायापलट कर देगा। फिर क्या, तुझे उसके दर्शन बात की बात में हो जायँगे, अरे रमते राम!

५—भठियारिन

क्या कहा, कि यहाँ किराया नहीं देना पड़ता। ठीक, पर क्या तू मुझे यह भी समझा सकेगी कि तेरी सराय में किसी तरह की चोरी तो नहीं होती। मैं किराया देने को तैयार हूं, पर चोरों के जाल में फँसने को नहीं। यहाँ काफ़ी उजेला भी तो नहीं है। कौन जाने कहाँ चोर छिपे हों। तेरी इस दुरंगी सराय में मुझे जहाँ देखो तहाँ मक्कारी ही दीख पड़ती है। वाह, यहाँ तो गाने बजाने का, नाच रंग का, हँसी दिल्लगी का और खेल कूद का भी सामान इकट्ठा कर रक्खा है। और वह भी सब बिना दाम का! अवश्य, इसमें कुछ न कुछ भेद है। क्या तू मुझे इसका भी कारण बतला सकेगी कि यहाँ से जो मुसाफ़िर जा रहे हैं वे चुपचाप नीचे को देखते हुए, बोझ के मारे दबेसे क्यों दिखाई पड़ते हैं? याद तो कुछ ऐसी आ रही है कि यहाँ मैं भी दस-बीस बार ठहर चुका हूँ। यह काली काली दीवारें, पुरानी छतें और दीमक-खाये हुये फटे बिस्तरे बतला रहे हैं कि मैं य ाँ कई बार आया हूं। जो हो, अब की बार यहाँ ठहरने का नहीं। आज मैं लँगोटिया फक्कड़ होकर भी करोड़पती से कम नहीं। नंग धुड़ंग होते भी किसी इन्द्र से कम नहीं। मेरे पास चार रोटियाँ हैं, थोड़ा सा चना चबैना है, कुछ गाँठ में भी है, तो क्या यह सब भठियारिन, तेरे चक्कर में पड़कर लुटवा लूँगा। मुझे अपनी राह जाने दे। मैं तेरे आदर सत्कार को, तेरी मेहमानदारी को, दूर से ही हाथ जोड़ता हूं। दया कर, मेरे पिण्ड छोड़ दे। मैं किसी पेड़ के नीचे पड़ रहूँगा, किसी न किसी तरह एक रात काट लूंगा, पर तेरी सराय की भूल भुलैयों में न पड़ूंगा।

हिन्दी भाषा

(लेखक—श्रीयुत महात्मा हंसराज)

जब हम हिन्दी भाषा के प्रचार पर ज़ोर देते हैं तो उस में हमारा प्रयोजन किसी के धर्म या बल पर प्रहार करने का नहीं होता, प्रत्युत हमारी आंखों के सामने वह उच्च आदर्श होता है जिसको सेवन करने के बिना भारतवर्ष का कल्याण कभी नहीं हो सकता। संस्कृत के अन्दर जो अमूल्य साहित्य भरा पड़ा है, वह संस्कृत के विद्वानों तक ही, जिनकी संख्या बहुत न्यून है, पहुँच सकता है। सर्वसाधारण तक इसको पहुँचा कर उनके आत्माओं, हृदयों और बुद्धियों को उन्नत और पवित्र करने के वास्ते हिन्दीभाषा का माध्यम आवश्यक है। प्रथम तो इसलिए कि, संस्कृत का अनुवाद हिन्दी में करना बड़ा सुगम है। द्वितीय, संस्कृत के शब्दों के अर्थ और मर्म हिन्दी में अत्युत्तम रीति से वर्णन किये जा सकते हैं, क्योंकि संस्कृत और भाषा में शब्दसमूह प्रायः वही है। हिन्दी भाषा को छोड़ उर्दू, फ़ारसी या अङ्गरेज़ी अनुवादों में संस्कृत के साहित्य के पाठ से वह आनन्द लाभ नहीं हो सकता, जो हिन्दीभाषा के अन्दर पाया जाता है। संस्कृत के साहित्य से विच्छेद करके भारतवर्ष नहीं रह सकता।

राष्ट्रीय विचार से भी हिन्दीभाषा के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। राष्ट्र शरीर के तुल्य है और भाषा रुधिर के समान। जैसे रुधिर के अभाव से शरीर के अङ्गों की न पुष्टि हो सकती है और न जीवन ही स्थिर रह सकता है, वैसे ही भाषा की दिव्य शक्ति के प्रभाव के विना किसी देश के वास्ते एक जीवित जागृत जाति नहीं बन सकती। क्योंकि इस जाति के अवयवों में कोई सम्बन्ध नहीं होता और उसके अङ्ग भिन्न भिन्न होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। युनाईटेड स्टेट्स (संयुक्त राज्य, अमरीका) इङ्गलैण्ड, फ्रांस, इटली और जर्मनी आदि देशों में जो बल इस समय पाया जाता है, वह कभी

उनको प्राप्त न होता यदि उनमें एक भाषा का प्रचार न होता। आस्ट्रिया में भिन्न भिन्न भाषाएँ थीं, शत्रुओं के प्रहार ने उसको टुकड़े टुकड़े कर दिया। एक देश की राष्ट्रीय शक्ति के बढ़ाने का एक प्रबल उपाय यह है कि उसके अन्दर एक भाषा जारी हो। इस विषय में भारतवर्ष बहुत पीछे है। उत्तर-भारत दक्षिण-भारत की बोली नहीं समझता। बङ्गाली, पञ्जाबी और गुजराती आपस में मिल कर बातचीत नहीं कर सकते और यदि करते भी हैं तो विदेशी भाषा का सहारा उनको लेना पड़ता है। भाषा की एकता के अभाव से हमारे देश के वासियों के अन्दर हृदय की एकता का अभाव है। और जब तक हमारे नेता इस न्यूनता को दूर नहीं करते उनके प्रयत्न पूरी रीति से सफल नहीं हो सकते।

संस्कृत-साहित्य और राष्ट्रनिर्माण के महत्वपूर्ण आदर्श हमको बाध्य करते हैं कि हम भारतवर्ष के लिए भारतीय भाषा के सिद्धान्त को अपने धार्मिक और राष्ट्रीय जीवन का आवश्यक अङ्ग समझें। यह भारतीय भाषा केवल हिन्दी भाषा ही हो सकती है। अङ्गरेज़ी विदेशी भाषा है। संस्कृत नये सिरे से सब भारतवासियों की भाषा नहीं बन सकती। फ़ारसी की भी यही अवस्था है। बङ्गाली, पञ्जाबी, गुजराती, मराठी, तामिल, तलेगू प्रान्तीय भाषाएँ हैं। केवल आर्य या हिन्दी भाषा ही भारतीय भाषा की पदवी ले सकती है। कारण यह है कि सब से अधिक जनसंख्या में भारतीय प्रजा हिन्दी बोलती है। और जिन प्रान्तों की यह बोली नहीं है, उनमें भी यद्यपि प्रांतीय भाषाओं का ज़ोर है पर हिंदी को लोग थोड़ा बहुत समझ लेते हैं। हिन्दी भाषा को जाननेवाला अपना काम सब प्रान्तों में चला सकता है। परन्तु केवल प्रान्तीय भाषाओं को जाननेवालों के लिए यह कठिन है। और इस प्रयोजन के लिए उनको हिन्दी की बोलचाल सीखनी ही पड़ती है। इस सच्चाई का श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने ५० वर्ष हुए अनुभव किया और स्वयं इस पर आचरण किया, यद्यपि उनकी मातृभाषा गुजराती थी और बरसों तक केवल संस्कृत ही बोला करते थे। आर्यसमाज ने अपने कालिजों, स्कूलों

पाठशालाओं और गुरुकुलों के द्वारा इस सचाई का प्रचार और प्रकाश किया। सनातनधर्म सभा ने भी इस आन्दोलन में भाग लेकर हिन्दी के पक्ष की सहायता की। नागरीप्रचारिणीसभा, बनारस ने हिन्दी साहित्य, हिन्दी कोष और हिन्दी प्रचार के कार्य को खूब बढ़ाया। श्रीमहात्मा गांधी ने हिन्दी प्रचार को राष्ट्र-निर्माण का आवश्यक अङ्ग समझते हुए गुजरात देश में जन्म पाकर भी हिन्दी भाषा की प्रथा स्वीकार की, और कांग्रेस में भी इस प्रणाली को चलाया। उनके उपदेश से दक्षिण में भी हज़ारों नर नारियों ने हिन्दी सीखना आरम्भ किया है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह पूर्वोक्त महापुरुषों का अनुसरण करता हुआ हिन्दी भाषा के प्रचार को देशसेवा का एक प्रबल अङ्ग समझे। (आकाशवाणी)

उपालम्भ*

[लेखक—श्रीयुत आनंदिप्रसाद श्रीवास्तव्य]

भ्रमर, यहां कैसे आये हो, क्यों छोड़ी भ्रमरी तुमने,
रोका नहीं हृदय अपना, की भूल बड़ी गहरी तुमने।
पत्नी से ऐसी प्रवञ्चना, तुम क्या मुंह लेकर आये,
अपनी लाज और मर्यादा आज किसे देकर आये!
स्नेह-दृष्टि की मुक्त-वृष्टि का मुझको छूकर फल पाया।
अगम सृष्टि की नियम-क्लिष्टि का भेद जानकर कलपाया!
भूलोगे क्या यों विधना भी, बने शिकारी स्वयं शिकार।
नहीं मुक्तगति वाञ्छा-परिणति का मृदु रंगस्थल संसार!
जाव, क्षमा मांगो भ्रमरी से, उचित नहीं है यह आचार।
जाति जाति से फूल फूल से मिलने दो, छोड़ो अविचार!
अगर स्नेह ही है मुझसे तो केवल कर दो कुछ उपकार।
स्वच्छ-प्रीति से शुद्ध-रीति से दो पाटल-पराग-उपहार!
आये हो तुम स्नेह-भाव से करती हूँ आदर सत्कार।
यह उपदेश, शूल-छेदन यह, तुमको छोटा सा उपहार!

---

* गुलाब की कली का भ्रमर के प्रति

एक लिपि का प्रश्न।

[लेखक—श्रीयुत बाबू शिवप्रसादजी गुप्त]

गत शनिवार को स्थानीय म्युनिसिपलबोर्ड में एक बड़े महत्व का प्रश्न उठाया गया था कि काशी म्युनिसिपलबोर्ड और उसकी अन्तर्गत कमेटियों की कारखाई, जो वास्तव में हिन्दुस्तानी भाषा में ही होती है, उसी भाषा में लिखी जाया करे और इसका निर्णय करने के लिये कि यह किन अक्षरों में लिखी जाय, एक छोटी सी कमेटी बनायी जाय जो इस पर विचार करे। इस प्रश्न पर बड़ी बहस के उपरान्त यह तय हुआ कि अभी बोर्ड के अन्तर्गत कमेटियों की कारखाई हिन्दुस्तानी भाषा व देवनागरी तथा अरबी हरफ़ों में लिखी जाया करे।

इस प्रस्ताव पर जो बहस हुई उसमें दो प्रधान बातें देख पड़ीं। एक तो यह कि प्रायः सभी मुसलमान सदस्यों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि कारखाई दोनों अक्षरों में लिखना नितान्त आवश्यक है। एक हिन्दू मेम्बर ने तो यहां तक कह डाला कि इन झगड़ों से अच्छा है कि कारखाई अंगरेज़ी ही में लिखी जाय और दूसरे सज्जन ने रोमन अक्षरों और हिन्दुस्तानी भाषा में उसे लिखे जाने की सिफारिश की।

यह अक्षरों का प्रश्न बड़ा गम्भीर प्रश्न है। इसका सम्बन्ध केवल म्युनिसिपलबोर्ड की कारखाई से ही नहीं है, यह हमारे सार्वजनिक काम में पद पद पर उठता है। इस कारण इस पर कुछ लिखना अनुचित न होगा। अब समय आ गया है कि इस प्रश्न पर दिल खोल कर व संकोच छोड़ कर सब लोग अपने विचार प्रकट करें।

भारतवर्ष में यों तो जहां कहीं मुसलमान भाई रहते हैं वे अपना कर्तव्य समझते हैं कि अर्बी अक्षरों का अध्ययन करें (जिन अक्षरों में उर्दू लिखी जाती है वह वास्तव में अर्बी अक्षर हैं) और यह उनके

धार्म्मिक भाव का एक अंग बन गया है। पर इसके कारण कहीं कोई विशेष अड़चन नहीं पड़ती, क्योंकि हिन्दी-भाषी प्रान्तों को छोड़ कर अन्य सभी प्रान्तों में वहां के निवासी इसलाम धर्म माननेवालों की भाषा भी वही है जो वहां के अन्य धर्म्मावलम्बियों की है। इस कारण वहाँ कोई अड़चन नहीं पड़ती। बङ्गाल के मुसलमान बङ्गला बोलते हैं और अपना सब कारबार बङ्गला अक्षरों के ज़रिये करते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र आदि के मुसलमान भी प्रायः ऐसा ही करते हैं। पंजाब के मुसलमान व अन्य लोग भी अर्बी अक्षरों का प्रयोग अधिकतर करते हैं, गो कुछ दिनों से गुरमुखी अक्षरों का आंदोलन पञ्जाब में सिख भाइयों ने उठाया है। लेकिन जो वास्तविक कठिनाई है वह संयुक्तप्रांत, बिहार व मध्यप्रांत में है, गो मध्यप्रांत में भी एक प्रकार से देवनागरी अक्षरों का पूरा प्रचार होगया है। बिहार व संयुक्तप्रांत में देश के अभाग्य से केवल एक ही भाषा दो अक्षरों में ही नहीं लिखी जाती, वरन्, अलग अलग लिखे जाने के कारण, यह दो भाषाएँ बनती चली जा रही हैं। यह वह स्थान है जहां पर फारस व काबुल आदि से आये हुए विदेशी राजाओं का बड़ा जोर रह चुका है। भारत में पैदा हुए स्वदेशी मुसलमान-शासन-काल में भी यह स्थान उनका क्रीड़ा-स्थल रहा है। गत तीन सौ वर्षों में यहां सैकड़ों ऐसे कवि उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी कविता में, जो वास्तव में हिन्दी ही है, फारसी रंगरूप व ख्यालात भर दिये हैं। इसी प्रकार के अनेक कारणों से यहाँ के मुसलमान निवासी अपनी भाषा को उर्दू कहते हैं और अर्बी अक्षरों में लिखते हैं। और हिन्दू लोग अपनी भाषा को हिंदी कहते हैं और देवनागरी अक्षरों में लिखते हैं। थोड़े दिनों से जब से यहां के रहनेवाले भिन्न भिन्न धर्म के माननेवाले अपने को गैरों व बेगानों के बहकाने से भिन्न भिन्न क़ौम का समझने लग गये हैं तब से इसका उद्योग हो रहा है कि उनकी भाषा जो वास्तव में एक है, जान बूझ कर दो बनायी जाय। भाषा का प्रधान लक्षण क्रिया में पाया जाता है, वह अब भी दोनों में एक ही है, पर आजकल क्रिया को छोड़ कर अन्य शब्द जुदा जुदा लिखे जाने लग

गये हैं। उर्दूवाला अर्बी, फारसी के कठिन कठिन शब्दों का प्रयोग करना अपनी योग्यता का सबूत समझता है और हिन्दीवाला संस्कृत के सक़ील लफ़्ज़ों के इस्तेमाल को अपनी लियाक़त का मर्कज मानता है। परिणाम यह हो रहा है कि हमारी सुन्दर भाषा कृत्रिम बनती चली जा रही है, और दो होती जाती है।

अब प्रश्न यह है कि हमें अपने प्रान्त में दो भाषाओं और दो अक्षरों में सुभीता होगा या एक में। यदि जैसा आजकल विचार किया जा रहा है भारत भर की एक भाषा, कम से कम सार्वदेशिक, सार्वजनिक कार्य के लिये, हिन्दी या हिन्दुस्तानी हुई तो क्या इसका दो प्रकार से दो अक्षरावली में लिखा जाना श्रेयस्कर होगा, या एक में ? क्या जिस अक्षरावली में देश भर की अन्य भाषाएँ लिखी जाती हैं उसी में इस हिन्दुस्तानी का भी लिखा जाना उचित न होगा ? (जिन अक्षरों में बङ्गला आदि भाषायें लिखी जाती हैं वह सब अक्षर देवनागरी के ही रूप विशेष हैं और उनका उच्चारण एक ही है, अन्तर केवल वही है जो तुगरा, अर्बी नस्तालीक आदि में व अर्बी अक्षरों में है। और यत्न से एक लिपि प्रचार के आन्दोलन से इस ओर बड़ी सफलता हो सकती है।) अथवा सारे देश में सब काम दो अक्षरों में किया जायगा ? इसका उत्तर कुछ लोग यह दे सकते हैं कि वह सार्वदेशिक सार्वजनिक लिपि अर्बी लिपि क्यों न हो। इसका सबसे ज़बर्दस्त व माकूल खण्डन यह है कि यह लिपि गो आज कल देश में ख़ूब प्रचलित है पर है वह वास्तव में विदेशी। ऐसी अवस्था में स्वदेशी लिपि होते हुए विदेशी लिपि क्यों बर्ती जाय ? दूसरा जवाब यह है कि देवनागरी लिपि इससे सरल है और इससे कहीं अधिक वैज्ञानिक रीति पर उसकी रचना हुई है। तीसरे, इसे देश के बसनेवालों में से बहुत बड़ी संख्या में लोग जानते, मानते और पसंद करते हैं। पर बात यह है कि देश में नहीं, इन प्रान्तों में बसनेवाले मुसलमान भाई इसको मानने के लिये तत्पर नहीं है। अब अगर हिन्दुओं को मुसलमानों को अपने संग राष्ट्रीय संग्राम में लेना है तो आपस में कुछ समझौता होना चाहिये।

एक समझौते की शकल नीचे दी जाती है और विद्वानों, पत्रसंपादकों तथा मुसलमान-हिन्दू-नेताओं से सानुरोध यह निवेदन किया जाता है कि इस पर अपनी सम्मति दें और इस प्रश्न पर बहस करें। समझौते का रूप यह है "कि हिन्दू लोग हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा को हिन्दी न कह कर उसे उर्दू पुकारा करें और मुसलमान लोग इसे अर्बी अक्षरों में न लिख देवनागरी अक्षरों में लिखा करें। इस प्रकार इन प्रान्तों में एक भाषा हो जायगी जिसका नाम उर्दू होगा और जो स्वदेशी लिपि नागरी में लिखी जायगी। शायद कुछ दिनों में यह भी सौभाग्य प्राप्त हो जाय कि यह देश भर के सार्वजनिक कामों की भाषा व लिपि बन जाय।"

वे चरण !

[लेखक—एक "संतप्त"]

वे चरण ! कहाँ हैं वे चरण ? इस अंधेरे, सूने और हीन हृदय के आभरण वे चरण कहां ? इस दुर्बल, दग्ध, दुर्दान्त और अशान्त मन के निर्मल मुकुर वे चरण कहां ? निर्जन कानन की कलकल-निनादिनी तरंगिणी के कलित कूल वे चरण कहां ? दारुण-दैव-दलन सिद्धवाण प्राणों के प्राण वे चरण कहाँ ? इन कठोर करों से लालित परम लावण्यमय वे अरुण-अरुण चरण कहां ? इस उत्कण्ठित, भावुक और प्यासे हृदय के सुधा-सरोवर वे चरण कहां ? सदा के परिसेवित, परिपूजित, परमाराध्य उपास्य और इष्ट आज वे चरण कहां ?

ऐं ! क्या वे चरण सचमुच मेरी इन धुंधली आंखों के ओट हो गये ? आंखों के तारे टूट गये ? अभागे हाथों से दो अमूल्य माणिक खो गये ? मन-मन्दिर से हीरक-प्रतिमा लुटेरे लूट कर ले गये ? हाय ! उन युगल चरणों में ऐसी कौन सी मनोमोहिनी छटा थी कि जिन्हें देखते ही यह लालची चित्त माधुर्य की परम सीमा के

समीप खड़ा होकर मन ही मन मुस्कराया करता था ? उन अशरण शरण चरणों में ऐसी कौन सी आकर्षण-शक्ति थी कि जिन्हें किसी न किसी तरह छूने को यह हाथ ऐसे व्याकुल हो उठते थे, जैसे पिंजड़े के बाहर निकलने को किसी पक्षी के प्राण ? उन चंदन-चर्चित चारु चरणों में वह कैसी कोमलता थी कि जिन्हें शान्त श्वास द्वारा स्पर्श करते हुए भी ऐसा जान पड़ता था कि कहीं इस कठोर स्पर्श से उन कंज-कलियों पर आघात न पहुँच जाय ? उन पद-पद्मों में वह कौन सी स्वर्गीय शांति झलकती थी कि जिनका समाश्रय लेते ही मेरे अशान्त हृदय को सुख-विश्रान्ति मिल जाती थी ? उन अनुराग-रञ्जित अरुण चरणों में वह कौन सी आभा चमकती थी, जिसकी ओर देखते ही अज्ञान-तिमिर दूर हो जाता था, हृदय-पटल पर एक अस्पष्ट मनोहर चित्र खचित हो जाता था और आंखों में चन्द्र-ज्योत्स्ना खिल उठती थी ?

वे पवित्र-चरण किस के थे ? वे नख-चन्द्र किस गगन-मण्डल में रश्मि-राशि फैला रहे थे ? क्या सुनोगे, वे चरण कहाँ दिखाई दिए थे ? क्या जानना चाहते हो, वे चरण किस इष्टदेवता के थे कि जिनके रज-कण आज भी मेरे मलिन मानस-मुकुर को निर्मल कर रहे हैं ? सुनो, आओ, तुम्हें उन चरणों की कथा सुनाऊँ। यह कथा विनोदकारिणी नहीं, रोचक नहीं—इस कथा में अध्याय नहीं—छन्द नहीं—पद नहीं—शब्द नहीं—अक्षर नहीं—इस पोथी में उलट-पलट करने को पन्ने भी नहीं। चटकीली स्याही नहीं। किस लेखनी से लिखी गई सो भी मालूम नहीं। फिर यह कैसी कथा ? क्या मनुष्य-कृत अथवा मनुष्य-श्रुत नहीं है ? यह भी नहीं ! मनुष्य के ही किसी अव्यक्त-भाव-मानस से यह कथा-कल्लोलिनी निकली और अन्त में मनुष्य के उसी अव्यक्त-भाव-सागर में जा गिरेगी ! वह अव्यक्त-भाव-मानस क्या है ? उन्हीं चरणों की कृपा का निवास-स्थान। फिर वही चरण ! कौन ? कहते क्यों नहीं ? हां, सुनो उन चरणों का गुण-गान सुनो। वे चरण मुझ अभागे की 'माता' के थे।

माता ! तू कहाँ गई ? तेरे वे चरण कहाँ गए ! क्या इस जीवन-स्वप्न में अब कभी उन चरणों के पुनीत दर्शन न मिलेंगे ? इस अंधेरी अमावस की रात में वे नख-चन्द्र उदित न होंगे ? अरे, क्या इन अंधी आंखों में अब कभी जोति न आयगी ? चरण पूजने को न मिलेंगे, छूने को न मिलेंगे, देखने को भी न मिलेंगे ! मा, तू कहां गई ? मैं खड़ा-खड़ा देखता ही रहा और मुझ रंक की सर्वस्व चरण-सम्पत्ति निर्दय लुटेरा लूट कर ले गया । निर्दयता का भी ठिकाना ! अन्याय और अंधेर का सार्वभौम राज्य ! जीवन-संग्राम में बेचारे दीन दुर्बल ही कुचले जाते हैं । मरे मिटे ही मारे जाते हैं, रोनेवाले ही रुलाए जाते हैं । इसी निर्दयता का नाम दिया गया है, शासन, सभ्यता, अधिकार और पाण्डित्य ! ग़रीब के घर को आग ने फूंक कर स्वाहा कर दिया, पड़ौसियों को दो चार दिन को तापना ही हुआ ! धन्य हो निर्दय-विनोदियो ! सता लो, मार लो, खा लो । तुम्हारे मन में चाव क्यों रह जाय ? लो यह है गरदन ! आधी ही काट कर क्यों रह गए ? अध-मरों पर हँस लो । हँसो, हँसो । हँसते हुए धड़ से सिर अलग कर दो । उसे पैरों से कुचल डालो । फिर हँसो, संतोष न हुआ हो, तो धड़ पर ही निसाने लगाओ । खेल ही सही । खाते हुए ग़रीब के गाल पर थप्पड़ जमाओ । रोते हुए के मुँह में कपड़े भर दो । एक यही लीला सही । जिसमें तुम्हारी प्रसन्नता हो, करो । निर्दयता, निरंकुशता करने में ही तो दानवों की दानवता, मानवों की मानवता और देवों का देवत्व सिद्ध हुआ । रे निर्दय-दैव ! निर्दयता ही तेरी सृष्टि का आदि और अंत है !

एं ! क्या से क्या कह डाला ! मा ! दिखा दे, एक बार ज़रा सी झलक दिखादे—अपने उन चरणों की । मा ! एक बार उन पद-पद्मों का पराग इन प्यासे चक्षु-चंचरीकों को और पान करा दे । मा ! मेरे सिर के नीचे अपने चरणों को तकिए के स्थान पर उसी पूर्व प्रेम के साथ रख दे । मा ! चरण चापने की आज मुझे आज्ञा नहीं देती ? कब का जल लिए खड़ा हूं ? चरण कहां—इससे पखा-

रने को ? इस वस्त्र से किसे पोंछ लूँ ? क्या मैं किसी भी प्रकार से उन चरण-कमलों को नहीं देख सकूंगा ? हाय ! मुझ बालक के खिलौने कहां गए ? मार्ग की धूल में किस के चिह्न बचा बचा कर चलूं ? अब वे कहाँ और उन्हें छूनेवाले ये अभागी हाथ कहाँ ? किस अंधकार-पूर्ण-प्रदेश में वह चरण-चन्द्र छिप गये ? लोग कहते हैं कि निराकार से साकार उत्पन्न होता है। यह झूठी कल्पना है। इसका उलटा होता है। साकार निराकार में लीन हो गया। रात दिन के स्पृश्य और पूज्य पद-पद्म न जाने किस निराकारता में विकत्र होकर छिप गए ? इस हृदय में केवल उनका ध्यान-चित्र रह गया—अंतर के काल्पनिक नेत्र ही उन्हें देख सकते हैं। काल्पनिक हाथ ही उन्हें छू सकते हैं—ये आंखें नहीं देखतीं—ये हाथ नहीं छूते। क्या ये चर्म-नेत्र और चर्म-कर उन पवित्र-प्रतिमाओं के पूजने के अधिकारी नहीं थे ? यह कैसे मानूं ? यदि ये अपवित्र और अनधिकारी ही होते, तो तू इनकी रचना ही क्यों करती। मा ! तू ने ही तो यह सब पसारा फैलाया। इन अपवित्र वस्तुओं को अपनी चरण सेवा में लेकर पवित्र बनाया। फिर मा ! तू इन्हें इनके देवता क्यों नहीं दे देती ? मा ! इन हाथों की कठोरता पर ध्यान देती है ? क्या यह तेरे हृदय से भी अधिक कठोर हैं ? न मा ! भूल गया, तेरा हृदय कठोर नहीं, निष्ठुर नहीं। वह तो नवनीत के समान अत्यन्त कोमल और आर्द्र है। कठोर और कराल यही अभागे हाथ हैं। मा ! क्षमा कर, क्षमा कर। एक बार और इन हाथों को चरण-स्पर्श कर लेने दे।

आगरा-कवि-सम्मेलन

[श्रीयुत "महेन्द्र" मंत्री नागरीप्रचारिणीसभा, आगरा]

आगरा नागरीप्रचारिणी सभा की द्वितीय साधारण बैठक ता० १ दिसम्बर १९२३ शनिवार को संध्या के ५ बजे से श्री चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक बी. ए. के सभापतित्व में हुई। जैनाचार्य श्री मुनि विद्याविजयजी का एक गवेषणापूर्ण व्याख्यान "सम्राट् अकबर के समय की राजनैतिक और साहित्यिक अवस्था" पर हुआ। इसके पश्चात् "देव जागन की बारी है" समस्या की पूर्तियां पढ़ी गई। उत्तम पूर्तियां नीचे दी जाती हैं:—

नाम देवनागरी परम गुण आगरी,
सुजगत उजागरी सुसोवत निहारी है।
रसिक रसीली चसकीली सी छबीली मृदु,
अधिक लजीली चटकीली अति प्यारी है॥
अमित प्रभाव भाव जाको ना समात उर,
गावत असुर सुर यश त्रिपुरारी है।
तगिरी अविद्या दूरि, आई भूरि विद्यामूरि,
देवनागरी औ देव जागन की बारी है॥

प० धनीरामजी 'प्रेम'।

दुस्तर दुराशा अन्धकार को प्रसार भयो,
नाथ! परराज्य निशा आई अति भारी है।
विद्या बुद्धि धर्म धन चोर हरें चहूँ ओर
चेती, मन्द भागिनी न जनता विचारी है॥
भारत सी भारत के पालन की पैज करि,
हाय हरि, याकी क्यों सुरति बिसारी है।
जाय सब हाथ नाहिं आवै पछिताओ फिरि,
जागि कै बचाओ देव, जागन की बारी है॥

पं० गणेशीलालजी सारस्वत।

आरत बचाओ बीर भारत निहारो ताहि,
आपदा की आगि की उठन चिनगारी है।
दीनता मलीनता पै हीनता हुमकि रही,
छाई चहुँ ओर अवनति-अंधियारी है ॥
कौन को पुकारे, कित जाहिं, कहो का सों कहें,
कलि की कुचाल कछु टरत न टारी है।
आओ गिरिधारी, बनवारी, दुखहारी, देखो,
सोए नरदेव, देव जागन की बारी है ॥

× × × ×

प्रेम पीयूष बहायो है, धर्म को मर्म बतायो है।
कर्म का पाठ पढ़ायो है, मुक्ति का द्वार दिखायो है ॥
प्रतापी गांधी की जय हो।
हमारो भारत निर्भय हो ॥
यह कह सब गुन गावत हैं, भक्ति को भाव दिखावत हैं।
हृदय में हम हरषाये हैं, सभी ने फूल चढ़ाये हैं ॥
न बाकी नर औ नारी है।
देव जागन की बारी है ॥

पं० हरिशंकरजी शर्मा

इनके अतिरिक्त और भी अनेक पूर्तियां पढ़ी गई थीं जो स्थानाभाव से यहाँ नहीं दी जा सकतीं।

राष्ट्रभाषा-भक्त पंडित प्रतापनारायण वाजपेयी का बलिदान

आप का जन्म विहार प्रान्त के पटना शहर में सं० १९५२ में हुआ था। पटने में ही आपने अंग्रेज़ी की तालीम पाई थी। १६ वर्ष की आयु से ही देश-भक्ति और देश-सेवा आपके जीवन का सर्वोच्च ध्येय हो गया। तब से बराबर किसी न किसी रूप में आप सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते रहे।

१९१७ ई० में जब महात्मा गांधी नील कोठीवाले साहिबों के अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये चम्पारन में पधारे थे, तभी महात्माजी से आप का परिचय हो गया और उस आन्दोलन में उनके नेतृत्व में आपने काम भी किया।

१९१८ ई० में महात्माजी के सभापतित्वमें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर में हुआ था। उसमें राष्ट्रभाषा हिन्दी का दक्षिण-भारत में प्रचार करने का निश्चय हुआ। महात्माजी ने श्रीयुत देवदास गांधी और श्री स्वामी सत्यदेवजी को हिन्दी का प्रचार करने के लिए मद्रास भेजा। १९१९ ई० में महात्माजी ने वाजपेयीजी को भी मद्रास में आकर काम करने को कहा। तब से आप बराबर हिन्दी-प्रचार का काम करते रहे। त्रिचिनापल्ली आपके कार्य का केन्द्र था। आरम्भ में अपने कार्य में वाजपेयीजी को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा।

आपने सब प्रकार के कष्टों को चुपचाप सहन किया और नैराश्य को पास फटकने तक नहीं दिया। वाजपेयीजी ने हिन्दी सीखनेवालों की सुविधा के लिये "हिन्दी का हीर" नाम की एक अत्युपयोगी पुस्तक हिन्दी-अंग्रेज़ी में लिखी। उनके पढ़ाये आज अनेक विद्यार्थी, वकील, अध्यापक आदि हैं जो उनको श्रद्धा और सम्मान से याद करते हैं।

वाजपेयीजी महात्मा गांधी के सिद्धान्तों के सच्चे उपासक थे। आप के वैयक्तिक जीवन में हमें महात्माजी के सिद्धान्त और आचार की एक झलक दीख पड़ती है। आप का जीवन बड़ा सरल था। चेहरे पर क्षमा, सहिष्णुता और गम्भीरता थी। वाणी में ओज, अर्थ और प्रभाव था। हृदय में सहृदयता, शान्ति और साहस था। आपका शरीर दुबला, पतला और दुर्बल था। पर आप की आत्मा में बल, विश्वास, दृढ़ता और त्याग था। उसमें एक आकर्षण शक्ति थी जो लोगों को सरल तथा अपनी ओर खींच लेती थी। आपसे जिनको एक बार भी भेंट होती, वे आप के प्रेमी बन जाते थे। आपके अन्दर कर्त्तव्य-भावना पूर्णतः विकसित थी। आपने कभी किसी प्रकार के कष्ट की शिकायत न की, यद्यपि आपको अनेक कष्टों को सहना पड़ा था। आप में अपने मन को वश में रखने की अपूर्व शक्ति थी। १९२१ ई० की बात है जब कि आप तंजोर में होने वाले प्रांतीय सम्मेलन में गये थे। आपकी धर्म-पत्नी की मृत्यु का तार आया। आपके मित्रों ने बहुत डरते डरते उस तार को आपके हाथ में दिया। उनका ख्याल था कि इस खबर से वाजपेयीजी को बड़ी चोट लगेगी। पर हुआ क्या—आपने तार को शांति में पढ़ा और बिना किसी घबराहट और शोक से कहा कि ईश्वर ने और भी स्वतंत्र होकर कार्य करने के लिये भार कम कर दिया। यह उसकी कृपा ही है। यह वाजपेयीजी के आत्मज्ञान का एक नमूना है।

कारागार

१९२१ ई०की अहमदाबाद कांग्रेस में आप गये और वहां से अपने घर न जाकर मदरास लौट आये। १९२२ ई० में महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद त्रिचिनापल्ली में आपने एक व्याख्यान दिया। यहां राजनैतिक व्याख्यान देने का आप के लिये यह पहला ही अवसर था। इसके पहिले आप एकाग्रचित्त हो एक मात्र हिन्दी प्रचार में ही लगे हुए थे। इस व्याख्यान से सरकार को आपके सिद्धांत, बल और साहस का परिचय मिल गया। दुर्बल शरीरधारी वाजपेयी

के रूप में सरकार को एक भयानक शत्रु नज़र आया। व्याख्यान को राजविद्रोही बताकर प्रथम गांधी-दिवस पर १८ मार्च १९२२ को जब कि आप कांग्रेस के जुलूस के साथ थे सरकार ने आप को गिरफ्तार कर लिया और आप पर अभियोग चलाया। आपने जमानत देने से इनकार कर दिया। आपने सिर्फ एक छोटा सा बयान दिया। वह इतना साहसपूर्ण और ओजस्वी था कि आज भी लोग उसे उत्साह से दुहराया करते हैं। उन्होंने कहा था कि:—

"सर्वव्यापक परमात्मा सर्वज्ञाता भी है। अतएव मेरी आत्मा सत्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं देती। जब से मुझे होश हुआ तभी से मैं इस सरकार के विरुद्ध राजविद्रोह का प्रचार कर रहा हूं और जब तक इस गवर्नमेंट का नाश या सुधार न हो जाय तब तक मैं इस असंतोष का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझता हूं तथा इसके लिए अपना जीवन होम कर देने को भी तैयार हूँ।"

जनता में राजद्रोह फैलाने के अपराध में सरकार ने आपको एक साल की कड़ी सज़ा दी। आपने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। कारागार में भी आपने अनेक राजनैतिक क़ैदियों को हिन्दी सिखलाई।

गत एप्रिल मास के प्रथम सप्ताह में आप छूटे। वह सत्याग्रह सप्ताह का अवसर था। इस अवसर पर वाजपेयीजी ने एक दूसरा व्याख्यान दिया। यह व्याख्यान क्या था आत्मसम्मान, वीरता और निर्भयता का हृदयोद्गार था। इस उद्गार से सरकार जल भुन गई। और फिर आपको एक साल की कड़ी सजा का हुक्म दिया। उस समय पंडितजी स्वास्थ्य-लाभ के लिए बंगलोर चले गये थे। सरकार के इस हुक्म की जब आपको खबर लगी, तब आपने मैजिस्ट्रेट को पत्र लिखा और स्वेच्छापूर्वक अपने को उसके हवाले कर दिया।

यों तो आपका स्वास्थ्य पहली बार के कारागार के कष्टों से बिगड़ चुका था। एक कान की श्रवणशक्ति का ह्रास हो गया था

किन्तु अबकी बार आपके स्वास्थ्य पर एक कठोर आघात हुआ। राजयक्ष्मा रोग ने आपको धर दबाया। आप को असह्य वेदना और कष्ट सहना पड़ा। समाचारपत्रों में आपकी रिहाई के लिए बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई, पर सब निष्फल हुआ। सरकार ने एक भी न सुनी। उसने वाजपेयीजी के राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की भावना और सिद्धान्त-रक्षा की निष्ठा को कुचल कर ही छोड़ने का निश्चय कर लिया था। और आप भी सरकार की इस पशुता और जड़ता की चिंता न कर अपने सिद्धान्त के लिए मर-मिटने को तैयार बैठे थे। बड़े बड़े लोगों ने क्षमाप्रार्थी बनने, जमानत या किसी शर्तपर अपने छुड़ा लेनेका बहुत अनुरोध किया यहां तक कि आप के एक मात्र ६ वर्षके छोटे मातृ हीन पुत्र के नाम पर आप से अपील की गई कि आप अपने को छुड़ाइये; पर धन्य वह आत्मा! हृदय के दृढ़ निश्चय में कोई भी बात, कोई भी शक्ति, फर्क न ला सकी, उनको बहकाने का सब प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुआ। बीमारी दिन प्रतिदिन खराब होती गई। सरकार को जब यह पूरा विश्वास हो गया कि अब रोग असाध्य हो गया, आशा न रही, तब उसने आपको बिना एक साल पूरा हुए, ६ महीने पर ही बिना किसी शर्त के, ३ सितम्बर को संध्या समय छोड़ दिया और एक मोटर पर बैठाकर मित्र के घर भिजवा दिया। अर्थात् सरकार ने मरने के लिये वाजपेयीजी को जेल से बाहर कर दिया।

मृत्यु

जेल से छुटने पर आपकी हालत क्या थी—शरीर में केवल पंजर ही पंजर नजर आता था। वाक्-शक्ति जवाब दे चुकी थी। बहुत धीरे धीरे कभी कभी मुख से दो चार शब्द निकल पड़ते थे। कफ़ के कारण आपको बड़ा कष्ट हो रहा था। न मालूम और भी कितनी तकलीफें हो रही थीं। यह सब होने पर भी आपके चेहरे पर कष्टका कोई चिह्न नज़र नहीं आता था। शौचादि क्रिया में इस हालत में भी आप किसी की मदद लेना पसन्द नहीं करते थे। ता० ५ दिसम्बर को १ बजे मध्याह्न में आपका गला कफ़ से भर

गया। कमज़ोरी बढ़ गई। स्वास प्रस्वास की क्रिया शीघ्रगामी और कष्टकारी हो गई। जब आपसे कहा गया कि "पंडितजी, बड़ा कष्ट हो रहा है। क्या तकिये के बल बैठा दिया जाय ?" आप बोल तो नहीं सके, पर अपने मुँह पर ज़रासी मुस्कुराहट लाकर अपनी सहमति ज़ाहिर की। फिर उनको बैठा दिया गया। अन्त समय तक उनकी चेतना शक्ति काम करती रही। कुछ ही काल के पश्चात् अर्थात् १ बजकर २० मिनट पर अचानक आपका स्वास बन्द हो गया। आपके शारीरिक कष्ट का अन्त हो गया। आप का जीवन-दीपक बुझ गया। आत्मबल और कष्ट सहन की एक जीती जागती मूर्ति जीवन-शून्य हो गई। वाजपेयीजी की पवित्र आत्मा इस भौतिक बन्धन से मुक्त हो गई।

अन्त्येष्ठि क्रिया

बात की बात में वाजपेयीजी की ख़बर शहर में फैल गई। उनके सभी मित्र, विद्यार्थी, और कांग्रेस-कार्यकर्त्ता आ उपस्थित हुए। मद्रास के प्रसिद्ध नेता श्रीमान् सी० राजगोपालाचार्य भी—जो उस समय त्रिचिनापल्ली में ही ठहरे थे—आ गए। राष्ट्रीय झण्डों सहित "वन्देमातरम्" की ध्वनि के साथ मृत शरीर लेकर सब कावेरी के तटपर पहुँचे और वहां अन्तिम क्रिया समाप्त हुई। पश्चात् श्रीमान् डाक्टर टि० एस० एस० राजन ने वाजपेयीजी के सम्बन्ध में एक भावपूर्ण समयोचित शान्ति-वर्द्धक भाषण दिया।

दूसरे दिन एक सार्वजनिक सभा की गई। उसमें वाजपेयीजी के परम मित्र हितैषी श्रीमान् डाकृर टि० वी० स्वामी नाथ शास्त्री आदि ने हृदयग्राही शब्दों में वाजपेयीजी के सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत अनुभवों को प्रकट किया। अन्त में पण्डितजी की परलोकगत आत्मा की सद्‌गति और उनके मित्र तथा कुटुम्बियों की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।

स्मारक प्रस्ताव।

वाजपेयीजी का स्थूल शरीर आज हमारे बीच नहीं रहा। इसके लिए हमें दुख ज़रूर है, पर उन्होंने सिद्धान्त-रक्षा के लिए

अपने जीवन को बलिदान किया है यह हमारे लिये गर्व करने का कारण है। वाजपेयीजी ने देश पर बलिदान होनेवालों की नामावली में एक संख्या बढ़ा दी है। उनका नाम अब चिरस्मरणीय हो गया है। उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये अनेक मित्रों, स्नेहियों ने उनका कोई एक उपयोगी स्मारक निर्धारित करने का निश्चय किया है। निस्सन्देह प्रतापनारायण वाजपेयी जैसे सिद्धान्तवादी और कर्तव्यनिष्ठ देशभक्त के लिये कोई एक उपयोगी स्मारक चिन्ह उपयुक्त है।

प्रतापनारायण वाजपेयी जैसी आत्माएँ इस दुनिया में बहुत कम हुआ करती हैं। मद्रास के हिन्दी-प्रचारकों ने प्रतापनारायणजी के रूप में अपना एक अनुभवी, योग्य और सच्चा विश्वासपात्र सहकारी खो दिया। कांग्रेस ने एक उच्च कोटि का सत्याग्रही और सिद्धान्तवादी खो दिया। भारतमाता ने अपने एक ऐसे होनहार नवयुवक सपूत को खो दिया जिसका जीवन और मरण एक मात्र उसी के लिये था। प्रतापनारायण वाजपेयी की आत्मा एक महान् आत्मा थी। ऐसी आत्मा की बिदाई से भला किस का हृदय दुख से दुखित न होगा?

हिन्दी-प्रचार-कार्यालय, त्रिचनापल्ली (मद्रास)

स्थायी समिति

स्थायी-समिति का एक साधारण अधिवेशन रविवार मार्गशीर्ष शु. ९ और १० सं० ८० तदनुसार १६, १७ दिसम्बर सन् २३ को सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सभासदों की उपस्थिति में हुआ —

१—श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन
२—श्री रामदास गौड़
३—श्री वियोगी हरि

४—श्री पं० रामजीलाल शर्मा

५—श्री प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव

६—श्री पं० लक्ष्मीनारायण नागर

७—श्री पं० कृष्णकान्त मालवीय

८—श्री पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी

९—सहायक मंत्री

कार्य-विवरण

१—नियमानुसार श्रीमान् पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—कोकिनाड़ा स्वागतकारिणी-समिति द्वारा भेजे हुए प्रस्तावों पर विचार होने के अनन्तर विशेष अधिवेशन के लिए प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुए:—

१—यह सम्मेलन श्री मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ, श्री पं० बदरीनारायणजी चौधरी, श्री पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र, श्री पं० प्यारेलाल मिश्र, वार एट ला, श्री कामराजु लक्ष्मण राव एम. ए. राष्ट्रभाषा प्रेमियों की मृत्यु पर महान् शोक और उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करता है।

२—यह सम्मेलन आन्ध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक प्रान्त निवासियों से अनुरोध करता है कि वे अपनी मातृ-भाषा के साथ स्कूलों में या घर पर राष्ट्रभाषा के पढ़ाने का प्रबन्ध करें।

३—यह सम्मेलन मैसूर और हैदराबाद-विश्वविद्यालय तथा आन्ध्र देश के भावी विश्वविद्यालय के अधिकारियों से प्रार्थना करता है कि वे अपने पाठ्यक्रम में हिन्दी को भी स्थान दें, और उसके पठन-पाठन का उचित प्रबन्ध करें।

४—(अ) यह सम्मेलन अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा से प्रार्थना करता है कि देश की पूर्ण स्वतंत्रता को लक्ष्य में रख और अंग्रेजी भाषा की गुलामी को तुरंत छोड़ अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दु-

स्तानी में अपनी कुल कार्रवाई करने का प्रबन्ध करे और इस प्रकार देश के और अपने कलंक को मिटा कर भाषा सम्बन्धी स्वतंत्रता के विषय में देश के लिए पथ-प्रदर्शक बनें।

(ड) यह सम्मेलन अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सभी सदस्यों से प्रार्थना करता है कि वे जिस प्रकार खद्दर पहनना अपना कर्त्तव्य समझते हैं वैसे ही राष्ट्रभाषा हिन्दी का व्यवहार भी अपना कर्त्तव्य समझें।

(उ) यह सम्मेलन समस्त प्रान्तीय कांग्रेस-समितियों से अनुरोध करता है कि वह एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त के साथ पत्र-व्यवहार करने के लिए विदेशी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग न कर अपनी राष्ट्र-भाषा का प्रयोग करें।

(५) यह सम्मेलन मदरास प्रान्त की म्यूनिसिपल कौंसिलें, जिला बोर्डों तथा और संस्थाओं से अनुरोध करता है कि वे अपने स्कूलों में राष्ट्रभाषा हिन्दी को दूसरी भाषा के तौर पर पढ़ाने का प्रबन्ध करें।

(६) यह सम्मेलन प्रान्तीय, ज़िला तथा तालुका कांग्रेस कमेटियों से अनुरोध करता है कि वे उन संस्थाओं की सहायता करें जिनका उद्देश हिन्दी (हिन्दुस्तानी) के प्रचार का है।

(७) यह सम्मेलन आन्ध्र, तामिल, नाडू, केरल और कर्नाटक के निवासियों से अनुरोध करता है कि वे अपने अपने प्रान्त में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार करने के लिए एक एक प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्थापित करने की व्यवस्था करें।

(८) पिछले छः वर्षों में सम्मेलन की ओर से दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य हुआ है और जिस प्रकार दक्षिण भारतीय जनता ने उस कार्य का आदर करते हुए सहयोग किया है, उस पर यह सम्मेलन अपना सन्तोष प्रकट करता है और अपने सब प्रचारकों तथा सहायकों को धन्यवाद देता है।

४—विशेष अधिवेशन का कार्यक्रम कोकिनाड़ा स्वागतकारिणी समिति की सम्मति के अनुसार निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ।

पहले दिन का कार्यक्रम

(१) मंगलाचरण
(२) स्वागत-गान
(३) स्वागताध्यक्ष का भाषण
(४) मनोनीत सभापति का निर्वाचन
(५) सभापति का भाषण
(६) राष्ट्रीय गान
(७) प्रमाणपत्र और पुरस्कार-वितरण
(८) निबन्ध-वाचन
(९) विषय-निर्वाचिनी समिति का चुनाव

रात्रि में

विषय निर्वाचिनी समिति की बैठक

दूसरे दिन का कार्यक्रम

(१) मंगलाचरण और राष्ट्रीय गान
(२) प्रस्ताव
(३) अधिवेशन में पधारे हुए नेताओं तथा विद्वानों के भाषण
(४) निबन्ध-वाचन
(५) राष्ट्रीय गान
(६) सभापति का अन्तिम भाषण
(७) सभापति को धन्यवाद
(८) गान
(९) प्रतिनिधि प्रीति-सम्मिलन और सत्कार

५—संवत् ८०-८१ के आय-व्यय का अनुमानपत्र विचारानन्तर निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

आय		व्यय	
४०३५)	परीक्षा खाते	४०३५)	परीक्षा खाते
	२३१०) शुल्क		६५०) व्यवस्थापक
	१००) प्रमाणपत्र		३००) तार स्टाम्प
	उपाधिपत्र		१००) कागज़ छपाई

१००) विवरण-पत्रिका	२०) सामान
२२) उत्तर-पुस्तक जचाई	१००) पुस्तक मोल
३) तार-स्टाम्प खाते	१५) स्टेशनरी
१००) साहित्यरत्न-माला	२५) पदक
१४००) परीक्षासमिति की पिछली बचत से	१७५) विवरण-पत्रिका
	६००) उत्तर-पुस्तक प्रश्न-पत्र
	४५०) लेखक आदि
	५०) मार्ग व्यय
	५०) फुटकर
	१५००) साहित्यरत्न-माला
४०३५)	४०३५)

१५७॥) पदक खाते	१५७॥) पदक खाते
२५) भट्ट पदक	२५) भट्ट पदक
२५) पूर्ण पदक	२५) पूर्ण पदक
७५) रणवीर पदक	७५) रणवीर पदक
२२॥) अन्य पदक	२२॥) अन्य पदक
१०) राजा सच्चिदानन्द "रजत पदक"	१०) राजा सच्चिदानन्द "रजत पदक"
२॥) व्याज	
७॥) पिछले का	
१५७॥)	१५७॥)

१०००) विद्यापीठ खाते	१०००) विद्यापीठ खाते
१०००) सहायता से प्राप्त	८५०) वेतन
१०००)	५०) पुस्तक

५०) सामान
५०) फुटकर

१०००)

३३७२०) मद्रास प्रचार खाते
१६४७०) सहायता
१००००) पुस्तक-विक्री
६०००) प्रेस
८००) 'हिन्दी-प्रचारक'
४००) परीक्षा
५०) फुटकर

३३७२०)

३३७२०) मद्रास प्रचार खाते
२००००) वेतन
१०००) कार्यालय
१५०) डाक-व्यय
१५००) मार्ग-व्यय
२५०) फुटकर
६०००) पुस्तक-प्रकाशन
६००) 'हिन्दी-प्रचारक'
२५०) परीक्षा
२१००) प्रेस
२०) स्टेश्नरी
१२००) विद्यालय
६५०) प्रचारक सम्मेलन

३३७२०)

४०७५) पुस्तक-प्रकाशन
२५००) सुलभ-साहित्य-माला
१०००) साधारण पुस्तक
५७५) उपर्युक्त दोनों खातों की बचत से

४०७५)

४०७५) पुस्तक-प्रकाशन
६५०) पद्मावत (पूर्वार्द्ध)
५००) विद्यापति-संग्रह
१००) सूर-पदावली
१००) शिवा-बावनी
४००) हिन्दी-भाषा-सार
११२५) भारतवर्ष का

आय राशि	आय विवरण	व्यय राशि	व्यय विवरण
			इतिहास भाग १
			४५०) सेनापति
			५००) अन्य पुस्तक
			२५०) सूचीपत्र विज्ञापन आदि
			४०७५)
१४००)	मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक	१४००)	मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक
	१४००) नोट का व्याज		१२००) पारितोषिक
	१४००)		१००) फुटकर
			२०) ताम्रपत्र
			२५) छपाई
			५५) तार डाक
			१४००)
६२५०)	स्थायी सदस्य २५ भावी सदस्यों का शुल्क	६२५०)	स्थायी कोष २५ भावी स्थायी सदस्यों का शुल्क।
४०५)	'सम्मेलन-पत्रिका'	१००५)	'सम्मेलन-पत्रिका'
	३००) सदस्यों के अतिरिक्त ग्राहकों से		६००) छपाई
	१००) विज्ञापन		३००) कागज
	५) फुटकर		१००) टिकट
			५) फुटकर
	४०५)		१००५)
१६०२)	सम्मेलन खाते	१२५०)	प्रचार खाते
	१२००) व्याज		६००) उपदेशक वेतन
	१५०) सम्बद्ध शुल्क		४००) मार्ग-व्यय

२५२) सदस्य शुल्क
३००) प्रतिनिधि शुल्क

१६०२)

५२६४४॥)

३५१६६) आमदनी व्यय के लिए चंदे से होनी चाहिए

८८१६०॥) योग

३००) लेखक वेतन
५०) टिकट

१३५०)

८००) अन्य प्रदेश प्रचार
८००) पंजाब तथा आसाम में प्रचार

५००) अन्य संस्थाओं को सहायता आदि

२६०३) कार्यालय खाते
७८०) सहायक मंत्री
४०८) प्रबन्ध लेखक
३४८) अर्थ लेखक
२८८) चपरासी २
१८०) दफ़्तरी
२५०) मार्गव्यय
१२५) प्रोविडेण्ड फण्ड
२४) भंगी
२००) फुटकर

२६०३)

२५०) तार स्टाम्प खाते
४५) टिकट अर्थ विभाग
१५०) टिकट प्रबन्ध विभाग
५०) तार
५) चेक

२५०)

१३०) स्टेशनरी खाते
- ५) स्याही
- ३) निब
- ३) दावात
- ४) कलम
- २) टैग
- २) आलपीन
- २०) कागज साई-क्लोस्टाइल
- १) ट्वाइन
- ५) फुटकर
- ४५) रजिष्टर
- ४०) कागज

१३०)

१२७५) सामान
- ८००) लोहे की सन्दूक
- २००) कुर्सी आलमारी टाट आदि
- १२५) तस्वीर
- १२५) दरी, गद्दा आदि
- २५) ताला लालटेन बक्स आदि

१२७५)

२००) कागज छपाई खाते
- २००) नियमावली तथा फुटकर सूचना आदि की छपाई

२००)

१००) फुटकर खाते
इक्का भाड़ा, आतिथ्य,
तेल बत्ती

६०) वार्षिक अधिवेशन
६०) सम्मेलन में जाने
का मार्ग-व्यय

६०)

५००) किराया भाड़ा (टैक्स)
१३०) भूमि का किराया
१२०) पानी ”
२५०) मरम्मत

५००)

२०००) सम्मेलन प्रतिनिधिमंडल
२०००) घूमने में मार्गव्यय

२००) वार्षिक विवरण

१५००) संग्रहालय (पुस्तकालय)
१०००) पुस्तकें मोल
३००) आलमारी
१५०) जिल्द बँधाई
५०) अन्य व्यय

१५००)

२५०००) संग्रहालय भवन
भवन निर्माण में

८८११०॥) ८८११०॥) योग

६—श्री अर्थमंत्रीजी ने सूचना दी कि साहित्यरत्नमाला के प्रथम ग्रन्थ के प्रकाशन में जो व्यय हुआ है, वह अभी तक किसी खाते में नहीं डाला गया है और इसी 'माला' के नम पड़ा हुआ है।

निश्चित हुआ कि 'साहित्यरत्नमाला' का आयव्यय परीक्षा खाते में डाला जाय और परीक्षा-समिति की जो संवत् १९८० तक की बचत है, वह रत्नमाला के प्रकाशन में लगाई जाय।

७—अर्थमंत्रीजी ने यह विषय उपस्थित किया कि बाबू गोकुलचंदजी के दान किये हुए मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक सम्बन्धी प्रोमिसरी नोट का ब्याज निकालने के लिए स्थायी-समिति का कोई ऐसा निश्चय चाहिए जिससे प्रकट हो कि ब्याज किसके हस्ताक्षर से निकाला जायगा, इसी विषय के सम्बन्ध में बेङ्कों से रुपया निकालने तथा साधारण रीति से कार्यालय में आये हुए रुपयों की रसीद देने के सम्बन्ध में चर्चा हुई।

निश्चय हुआ कि प्रोमिसरी नोट का ब्याज तथा बेङ्कों में जो रुपया "हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन" के नाम से जमा हो वह प्रधानमंत्री तथा अर्थ-मन्त्री दोनों के संयुक्त हस्ताक्षर से निकाला जाय और इसके अतिरिक्त जो रुपया साधारण व्यवहार में सम्मेलन-कार्यालय में आता है वह अर्थमंत्री वर्त्तमान क्रमानुसार अपने हस्ताक्षर से लेते रहें।

८—सभापति को धन्यवाद देने के पश्चात् अधिवेशन समाप्त हुआ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

संवत् १९८० की प्रथमा परीक्षा का परीक्षा-फल ।

प्रथम श्रेणी

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
१००	श्री मदनगोपाल त्रिपाठी	श्री पं० उदयचंद त्रिपाठी	कन्नौज (सर्वप्रथम)
७९	" समर्थमल	" सेठ जवाहरलाल	उज्जैन
१०८	" रामेश्वर पांडेय	" शिवरत्नलाल पांडेय	कानपुर
१३४	" भगवतसहाय श्रीवास्तव	" मुं० झुमकलाल श्रीवास्तव	कांकेर
१३६	" नन्दलाल चक्रवर्ती	" रामकुमार चक्रवर्ती	"
१३७	" अश्विनीकुमार टांकसाल	" हरीभाऊ सदाशिवराव टांकसाल	"
१४९	" रामसरन गुप्त	" ला० वंशीधर वैश्य	खुरजा
२०६	" नारायण मोरेश्वर मोघे	" मोरेश्वर गोविन्द मोघे	झांसी
२१२	" विद्यादत्त बहूकंडी	" पं० प्रह्लाददास बहूकंडी	देहरादून
२५९	" रामलखन मिश्र	" राजनारायण मिश्र	प्रयाग
३०१	" गंगाप्रसाद द्विवेदी	" रघुनंदन प्रसाद द्विवेदी	बांदा
३६०	" ठाकुर सिंह	" राम खेलावन सिंह	मुजफ़्फ़रपुर
३७७	" रामधर द्विवेदी	" रामभरोस द्विवेदी	रीवां
४२६	" प्रतापभानु दिक्षित	" मन्नूलाल	हरदा

द्वितीय श्रेणी

द्वितीय श्रेणी

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
७२	श्री प्रतापनारायण	श्री बा० सूर्यनारायण	इटावा
१२६	" जोधासिंह	" बद्रीप्रसाद	कोटा
१३१	" हुकुम सिंह वर्मा	" ठा० उमराव सिंह	कांकेर
१३२	" लालूराम पोतदार	" चमारराम पोतदार	"
१३३	" रामगोपाल	" मोहनलाल	"
१५४	" ढाल सिंह	" उमराव सिंह	खुरजा
१५६	" द्वारकाप्रसाद लखोटिया	" भीखमचंदजी लखोटिया	चुरू
१६६	" फुन्दीलाल गर्ग	" गोविन्दप्रसाद गर्ग	जबलपुर
१७०	" जयनारायण शर्मा	" अनंत राम	जबलपुर
१८०	" रामगोपाल चौधरी	" गद्दीलाल जी चौधरी	जयपुर
१८९	" नंदकिशोर शर्मा	" गोविन्दराम शर्मा	"
२०५	" पन्नालाल	" मनबोदन	झांसी
२०९	" भगवानदीन	" गयादीन	"
२१०	" सुरेन्द्र सिंह नयाल	" ठा० श्याम सिंह नयाल	देहरादून
२१३	" राजनारायण पाठक	" रामगोपाल पाठक	"
२२०	" तेजपाल गुप्त	" मुं० कन्हैयालाल मुख़्तार	"

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
२२१	श्री ताराद‌त्त ध्यानी	श्री पं० भवानीदत्त शर्मा	”
२२२	” केशवदत्त नौटियाल	” पं० श्रीराम जी नौटियाल	”
२२६	” क़दम सिंह शर्मा	” चौधरी जीवन सिंह जी	देहली
२३९	” श्रीलाल	” जगन्नाथ	नारायण गढ़
२४०	” व्यंकटेश	” विश्वनाथ	”
२४१	” मन्नालाल पटवा	” नानालाल पटवा	”
२४३	” विद्यार्थी छोटेलाल दुबे	” दुर्गाप्रसाद दुबे	पथरिया
२४६	” ओंकारप्रसाद शुक्ल	” रामदयाल शुक्ल	”
२४८	” श्यामाचरण झा	” रूपनारायण झा	प्रयाग
२९५	” कन्हैयालाल अग्रवाल	” बद्रीदास जी अग्रवाल	बीकानेर
३१३	” हरगोबिन्द सिंह	” देवशरण सिंह	बैरिया
३१६	” श्रीकृष्ण राम	” रामनारायण राम	”
३२१	” रामाश्रय राम	” बसगितराम	”
३३५	” ब्रह्मचारी धर्मदेव वर्मा	” बा० चंद्रिका सिंह	”
३५४	” लक्ष्मीनारायण वर्मा	” अद्वैवटलाल	मुजफ़्फ़रपुर
३८६	” ज्योतिलाल भार्गव	” पं० प्यारेलाल भार्गव	लखनऊ
४२२	” रामगोपाल शुक्ल	” कन्हैयालाल शुक्ल	हरदा
४२६	” चंपालाल विद्यार्थी	” बिहारीलाल	”

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
६४	श्री मदन गोपाल मिश्र	श्री पं० गयाश्वर मिश्र	कन्नौज
१२२	" कुँवर बद्री सिंह	" ठा० जगन्नाथ सिंह	काशी
१२७	" राजमल	" पन्नालाल	कोटा
१३८	" शंकरलाल मीतल	" ला० पन्नालाल	खुरजा
१५०	" रामचन्द्र वैद्य	" ला० परसादीलाल	"
१५२	" मुरारीलाल	" पं० श्रीराम शर्मा	"
१५३	" मनबीर सिंह राघव	" इन्द्र सिंह राघव	"
१५५	" कैलाश चन्द्र गुप्त	" ला० पद्लराम	"
१६०	" गंगादयालु दीक्षित	" पं० बैजनाथ दीक्षित	चूरू
१६४	" रतनलाल मलैया विद्यार्थी	" किशोरीलाल मलैया	जबलपुर
१८५	" बद्रीनारायण शर्मा	" शिवनाथ शर्मा	जयपुर
२०३	" रामनारायण त्रिपाठी	" अयोध्याप्रसाद त्रिपाठी	झांसी
२१६	" तोता कृष्ण गैरोला	" पं० हंसराम	देहरादून
२२८	" चमनदेवी	" पं० चंचलराय	श्यामपुर
२५३	" भोलाबख़्श सिंह	" उदितनारायण सिंह	प्रयाग
२६५	" रघुबीर सिंह	" चंदन सिंह	फर्रुख़ाबाद
२६६	" तेजसिंह	" बल्देवसिंह	"
२७०	" शिवशंकर महता	" महावीरप्रसाद महता	बहराइच

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
२७६	श्री रक्षाराम त्रिपाठी	श्री पं० रामभरोसे त्रिपाठी	"
२७७	" युगल बिहारी	" बा० नवल बिहारी	"
२७८	" मुरारीलाल गौड़	" पं० देवकीनंदन	"
२७९	" प्रयागदत्त	" रामधन	बहराइच
३००	" रामभरोस गोसाईं	" रामसरन उर्फ़ धूमधाम	बांदा
३०८	" शुकदेव प्रसाद	" ला० जगन्नाथ प्रसाद जी हकीम	बुरहानपुर
३५६	" रामचन्द्र प्रसाद	" बा० यमुनाप्रसाद	मुजफ़्फ़रपुर
३५९	" नथुनी प्रसाद वर्मा	" रघुनंदनलाल	"
४१८	" शिखरचंद जैन	" लखमी चंद	हरदा

तृतीय श्रेणी

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
३	" शिवलाल विद्यार्थी	" जानकी प्रसाद	अनूपशहर
४७	" रामफेर द्विवेदी	" गयादत्त द्विवेदी	इनानजांव
५०	" शिवराम प्रसाद दुबे	" मातादीन दुबे	इन्दौर
५३	" राम सिंह	" मानधाता	"
५६	" महाबली प्रसाद	" विन्ध्याप्रसाद	"
५९	" बदलूराम	" छीटू	"
६२	" ताराप्रसाद शर्मा	" हरिहर प्रसाद	"
६६	" गजाधर	" चमनलाल	"

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
८३	श्री मोतीलाल	श्री नारायणदास	उज्जैन
८४	" मदनलाल सोनी	" बालकृष्ण जी	"
८६	" गोवर्द्धनलाल	" पं० घासीलाल जी	"
९०	" गोपाल दुबे	" यादवराव रामचन्द्र वैद्य	"
९१	" गेंदालाल अवस्थी	" पं० नीलकंठ जी	"
१०४	" केदारनाथ त्रिपाठी	" पं० जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी	कन्नौज
११७	" रघुनंदनलाल शुक्ल	" पं० शिवराखनलाल शुक्ल	काशी
११८	" रघुनंदन तिवारी	" महादेव तिवारी	"
१२५	" शमशेर अली	" दिलावर खाँ	कोटा
१३१	" रघुवीर प्रसाद	" जुगुल किशोर	खुरजा
१५८	" मोहनलाल शर्मा	" आशाराम शर्मा	चूरू
१६१	" इन्द्रचंद्र शर्मा	" मालचंद्र जी शर्मा	"
१७२	" किशनलाल सरसोंदे	" शालिग्राम सरसोंदे	जबलपुर
१८६	" चिन्तामणि जोशी	" भँवरलाल जोशी	जौरापुर
१९७	" गोवर्द्धनलाल	" चतुर्भुज जी गुप्त	"
१९८	" कन्हैयालाल त्रिवेदी	" नारायण त्रिवेदी	"
२०८	" तुलसीदास शर्मा	" पं० रामनाथ त्रिपाठी	झाँसी
२१८	" दौलत सिंह	" बा० हरीसिंह	देहरादून

क्रमसंख्या	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	केन्द्र
२५२	श्री राजप्रताप सिंह	श्री महावीर प्रसाद सिंह	प्रयाग
२५४	" भगवतप्रसाद श्रीवास्तव	" मुँ० साधोप्रसाद श्रीवास्तव	"
२५७	" रामपाल सिंह	" रघुनाथ सिंह	"
२६३	" अयोध्या सिंह	" लाल सिंह	"
२८०	" ऋषीराम त्रिपाठी	" पं० केदारनाथ त्रिपाठी	बहराइच
२८६	" मुहम्मद हसन	" शेख़ कादिर बख़्श	बहेड़ा
२६२	" मालचंद्र	" नानकराम जी	बीकानेर
२६४	" जयप्रकाश गुप्त	" ला० माईदयाल सिंह जी	"
३२०	" बनवारी तिवारी	" सहदेव तिवारी	बैरिया
३५८	" नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह	" बा० विष्णुदेव नारायण सिंह	मुजफ्फ़रपुर
३६२	" पूर्णानन्द शर्मा	" वामदेव जी	रतनगढ़
३७४	" रामचरण नायब मास्टर	" गहिरा	राजनांदगांव
३८४	" प्रभावती देवी	" पं० कुलदीप मिश्र	लखनऊ
३८५	" परमात्मादीन मिश्र	" पं० शिवप्रसन्न मिश्र	"
४१५	" हरिशंकर तिवारी	" पं० शिवप्रसाद जी तिवारी	हरदा
४२५	" प्रयागनारायण बाजपेयी	" शिवविनायक बाजपेयी	"
४३०	" कृष्णराव शर्मा	" गणपति राव शर्मा	"

परीक्षा-मंत्री

धन्यवाद !

निम्नलिखित पुस्तकें वृहत् संग्रहालय के लिये प्राप्त हुई हैं। प्रेषक महोदयों को कोटिशः धन्यवाद !

नाम	लेखक	प्रकाशक
१ लक्ष्मण विनोद	लक्ष्मण सिंह	लेखक
२ सुन्दर काड	शिवशंकरलाल	देशबंधु यंत्रालय बाराबङ्की
३ दान विचार	भगवान शर्मा	लेखक
४ प्राचीन पंडित व कवि	महावीर प्रसाद द्विवेदी	कमर्शल प्रेस, कानपुर
५ वनिता विलास	"	"
६ आदर्श बलिदान	अतरसेन	नेशनलबुकडिपो, मेरठ
७ स्वदेशी	जगन्नाथ पांडेय	भास्कर ग्रन्थमाला काशी
८ कथा कादम्बिनी	"	साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग
९ प्रेम	अश्विनीकुमार दत्त	हिन्दी मन्दिर, प्रयाग
१० ऋग्वेद संहिता सं० १ से ११२		
११ ऋग्वेद सार संग्रह	शिवनाथ	
१२ पत्रांजलि	कृष्णकुमारी	गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
१३ भारत की विदुषी नारियां	"	"
१४ सम्राट् चन्द्रगुप्त	बालमुकुन्द बाजपेयी	"
१५ द्विजेन्द्रलाल राय	दुलारे लाल भार्गव, रूपनारायण पांडेय	"
१६ आत्मार्पण	द्वारकाप्रसाद गुप्त	"
१७ भारतगीत	श्रीधर पाठक	"

नाम	लेखक	प्रकाशक
१८ इंग्लैण्ड का इतिहास	प्राणनाथ	गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
१९ मूर्ख मण्डली	रूपनारायण पांडेय	"
२० नन्दन निकुंज	चण्डीप्रसाद	"
२१ उद्यान	शंकरराव जोशी	"
२२ देव और विहारी	कृष्णविहारी मिश्र	"
२३ पूर्व भारत	मिश्र-बन्धु	"
२४ बंकिमचन्द्र चटर्जी	रूपनारायण पांडेय	"
२५ मंजरी	"	"
२६ बहता हुआ फूल	"	"
२७ मेवाड़ का इतिहास	ठाकुर हनुमन्त सिंह	राजपूत प्रेस, आगरा
२८ सीताजी का जीवन-चरित	"	"
२९ कृषि सुधार	"	"
३० महाराष्ट्र-केशरी शिवाजी	ताराचरण	"
३१ महादेव गोविन्द रानडे	रामचन्द्र वर्मा	"
३२ मेरी दुख गाथा	ठाकुर हनुमन्तसिंह	"
३३ रमणीपंच रत्न	"	"
३४ रमणीरत्न-माला	ठाकुर गिरिवरसिंह	"
३५ भारत महिला मंडल	"	"
३६ युवा रक्षक	पन्नालाल	"
३७ गृहस्थ चरित्र	ठाकुर हनुमन्तसिंह	"
३८ बालकोंका सुधार	"	"
३९ वनिता-हितैषिणी	"	"

साहित्य भवन लिमिटेड द्वारा प्रकाशित उत्तमोत्तम पुस्तकें

१—साहित्य-विहार—मूल्य ॥।≋)

यह वियोगीजी के चुने हुए भक्ति विषयक और साहित्य विषयक ११ सुन्दर लेखों का संग्रह है। इस पर निम्नलिखित सम्मतियां देखिए—

शिक्षा (पटना) इस तरह की पुस्तक हिन्दी साहित्य में प्रकाशित नहीं होती हैं। सरस हृदय का झंकार इस पुस्तक के प्रत्येक सन्दर्भ में सुनाई पड़ता है। कवि हृदय, कवि नयन, किस पदार्थ को किस प्रकार समझता है, किस तरह देखता है यह बात आप इस पुस्तक के देखने से जान सकते हैं। हम इस पुस्तक को पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुए हैं।

प्रभा (कानपुर) वियोगी हरिजी ने एक अजीब तबियत पाई है। प्रस्तुत पुस्तक क्या है हरिजी के दिलकी एक धड़कन है। ब्रजभाषा के कवियों को आपने इसमें एक अनूठे ढंग से पेश किया है।.........प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की उक्तियों पर हरिजी की चुभती हुई आलोचना चित्त को लुभा लेती है। पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक अनोखी वस्तु है।

२—छद्मयोगिनी—मूल्य ।)

इस पुस्तक में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की छद्म लीला का वर्णन है। इस पर श्रीमान् श्रीधर पाठकजी की सम्मति देखिए—

"भक्तिपथ-पथिक प्रेम-रसरसिक श्रीवियोगीहरिजी विरचिता हरिश्चन्द्रीय "चन्द्रावली" की सहोदरा यह नूतन नाटिका प्रेमाभिषिक्तों के लिये अनिर्वचनीय आनन्द-सुधा की सततवाहिनी वहा है। आशा है, इससे बहुतों को प्रियतत्व का पता प्राप्त होगा।

३—कविकीर्तन—ले० श्रीवियोगीहरि मूल्य ॥)

इसमें चन्द वरदाई से लेकर आधुनिक काल के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों का कविता में गुणगान किया गया है।

४—गल्पलहरी—लेखक स्वर्गीय श्रीगिरिजाकुमार घोष मूल्य १।)

घोष बाबू से हिन्दी संसार अच्छी तरह परिचित है। यह पुस्तक आपकी चुनी हुई सुन्दर गल्पों का संग्रह है।

५—होमर गाथा—संपादक स्वर्गीय श्रीगिरिजाकुमार घोष

महाकवि होमर के ओडिसी और इलियड नामक काव्यों का भावानुवाद मूल्य १); इसके अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकें हमारे यहां मिलती हैं।

पुस्तकें मिलने का पता—साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क ५—पौष, १९ ०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)

प्रत्यङ्क ≡)

विषय-सूची

संख्या	विषय	पृष्ठ

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्ण १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है, जो भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाक व्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआरडर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें पत्रिका के सम्पादक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से और प्रबन्ध संबन्धी पत्र 'मन्त्री' हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से आना चाहिए।

५—कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने, प्रकाश करने वा न करने का अधिकार सम्पादक को है।

पुस्तक-विक्रेताओं को सूचना

१—सम्मेलन की पुस्तकें सभी पुस्तक-विक्रेताओं को नकद मूल्य पर दी जाया करेंगी। किसी पुस्तक-विक्रेता से सम्मेलन का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

२—अभी २०) से कम की पुस्तकें देने का प्रबन्ध कार्यालय से नहीं किया गया है।

३—२०) से लेकर १००) तक की पुस्तकें एक साथ मोल लेने से २०) फी सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

४—१००) या १००) से अधिक की पुस्तकें एक साथ मोल लेने से २५) सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

५—प्रत्येक आर्डर के साथ ५) पेशगी आना चाहिये। आर्डर के अनुसार भेजी हुई पुस्तकें लौटाई न जायँगी।

मंत्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थ-रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है। अभी हम लोगों ने वर्तमान साहित्य का उद्धार ही क्या किया है? यदि हमें अपने साहित्य में प्राण संचार करने की आवश्यकता है, तो प्राचीन ग्रन्थों की खोज करना तथा बिना लाभ के लोभ के उन्हें प्रकाशित करना भी अनिवार्य्य है। इसी सिद्धान्त पर सम्मेलन ने इस माला का गूँथना निश्चित किया है। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह

इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् श्री० पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराजभूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ; उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली ही पुस्तक है। 'मिश्रबन्धु विनोद' रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

३—भारतगीत

लेखक—श्री० पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठकजी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा? आपकी गणना वर्तमान हिन्दी साहित्य के महारथियों में हैं। आपकी राष्ट्रीय कविता नव-

युवकों में जातीय जीवन संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य मर्मज्ञ श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५०० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा जहां से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का संदेश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ-संख्या ४०६, मूल्य केवल १॥)

५—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस

पुस्तक :से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुंदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य २)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिंगल

ले०—श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुंदर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छंदों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अंत में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

९—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री व्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस. सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुंदर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।=)

१०—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक-श्री वियोगी हरि

सागर में से ५२० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-

रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उन की जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक कागज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४२५ मूल्य २)

११—बिहारी-संग्रह

संपादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की बिहारी सतसई से प्रथमापरीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटासा संग्रह तैयार किया गया है। जहां तक संभव हुआ है इसमें एक दम शृंगारी दोहों का समावेश नहीं किया गया है, केवल ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी संकोच के प्रथमा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४ मूल्य ।)

१२—ब्रज-माधुरी-सार

संपादक—श्री वियोगी हरि

इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार संकलन किया गया है। इस संग्रह की चार विशेषताएं हैं:—

(१) सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया है, कोई प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गईं हैं जिससे साधारण पाठक भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

(४) प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवन चरित और उसकी कविता की सूक्ष्म आलोचना भी की गई है।

संक्षेप में, प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को आद्यन्त इस ब्रजमाधुरीसार का अवलोकन करना चाहिये। पृष्ठ संख्या ६३२, मूल्य सजिल्द संस्करण का केवल २)

१३—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

संपादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसीकृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। पहले खण्ड से लेकर २४ वें खण्ड तक इस भाग में समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठ संख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और सजिल्द का १।) रु०

परीक्षार्थियों को सूचना

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओं की, संवत् १९८१ की, विवरण-पत्रिका छप गई है। जो विद्यार्थी परीक्षा देना चाहें उन्हें तुरन्त -)॥ का टिकट भेज कर मँगा लेना चाहिए। इससे परीक्षा सम्बन्धी सब बातें ज्ञात हो जायँगी।

परीक्षा मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११ } पौष, संवत् १९८० { अङ्क ५

सिद्धान्त

बिधि विष्णु ईश बहु रूप तुई
नभ तारा चारु सुधाकर है।
अंबा धारानल शक्ति स्वधा
स्वाहा जल पौन दिवाकर है।
हम अंशी अंश समझते हैं
सब ख़ाक जाल से पाक रहैं।
सुन लालबिहारी ललित ललन!
हम तो तेरेई चाकर हैं॥

—सीतल

ग़ज़ल

[ले० श्री० देवीप्रसादजी 'प्रीतम']

रंग पीले पड़ गए जिनके लिए,
वह हरी आए न दो दिन के लिए ?
क्यों न कुम्हिला जाए राधे सी कली,
क्या यह ग़म घर ऐसी कमसिन के लिए ?
हमने क्या बोये थे कांटे कृष्ण को,
बन गए जो हार मालिन के लिए ?
शोक-सागर बूड़ते व्रज की दशा,
देख जाते हाय इक छिन के लिए ?
कोई प्रीतम प्राणप्यारे से कहे,
अब जियें व्रजबाल किस दिन के लिए ?

अन्तर्नाद

६—प्यासी वसुन्धरा

रक्त विपासु वसुंधरे ! क्या तू न मानेगी ? तेरी लाललाल विकराल आँखें किसे टक लगा कर देख रही हैं ? क्या आज तू अपने छोटे-छोटे बच्चों पर रुष्ट है ?

संभव है, तू बाल-क्रीड़ा देखते-देखते ऊब गई हो। आज तू उनकी, कच्चे दूध के समान, भोली-भाली चितवन पसंद नहीं करती है, कदाचित् तुझे उनकी रुधिर-वर्षिणी भयंकर दृष्टि देखनी है। तभी तो आज तू उनके हाथ में खिलौने न देकर रक्त पांसिनी तलवार पकड़ा रही है। इतनी भीषणता क्यों ? जिन बालकों को तूने सैकड़ों बरसों से माधुर्य के हिंडोले पर झुलाया है, सुकुमारता के पालने में सुलाया है, वे आज तेरे दिये हुए इस नये खिलौने के साथ कैसे क्रीड़ा कर सकेंगे ?

उनका रक्त वीर आर्यों का है, उनका पालन-पोषण प्रकृति-देवी ने किया था, उनकी अर्द्धोन्मीलित आँखें रणाङ्गण के बीच में बंद हुई थीं, पर आज वे अपने आपको भूलकर कृत्रिम सभ्यता-रमणी के गुलाम हो रहे हैं, उनके ओजस्वी नेत्रों में कामोद्दीपक मद्य झलक रहा है, सिर पर जटा-जूट के बदले तैल-रंजित छल्लेदार बाल चमक रहे हैं। जिनकी छाती पर लोहे के कवच बँधे रहते थे, आज वहां फूलों के हार भार से मालूम होते हैं। जिन की कलाइयाँ फौलाद की बनी हुई थीं, जिन पर रण-कंकण बाँधा जाता था, आज वे नाज़ुक दिखाई पड़ती हैं और रण-कंकण के स्थान पर रिस्ट-वाच नज़र आ रही है! जिनका सुकुमार हाथ छड़ी के उठाने पर बल खा रहा है, भला उसमें तू बे-म्यान की तलवार देकर किस अनर्थ के करवाने पर उतारू है?

समझ पड़ता है, तेरी रक्त-पिपासा अब शान्त होने की नहीं। मा, तेरे वक्षस्थल पर दुर्दान्त दानवों की कराल क्रीड़ा अवश्य असह्य है, पर क्या इन कायरों का भार तुझे उस क्रीड़ा से भी अधिक असह्य न होगा? क्या आज तू बार बार अपने वीर सपूत परशुराम का स्मरण न करती होगी?

यह नपुंसक कुपूत, मा! अपनी पौरुषहीन आंखों से अत्याचारी दानवों की उन्माद-लीला देख रहे हैं! तेरी छाती पर नर-पिशाचों का तांडव-नृत्य देखते हुए भी इनकी आँखों से खून नहीं टपकता! यह निर्लज्ज अपने श्वास-प्रश्वास को 'जीवन' का नाम दे रहे हैं! धिक्कार!

जिसके स्तनों से इन्होंने सहस्रों वर्ष दुध पिया, जिसके अंक में बैठ कर पुरुष और प्रकृति के गूढ़तम रहस्य प्रत्यक्ष किये, जिसके वात्सल्य-संकेत द्वारा इन्हें निर्वाणका परमानंद प्राप्त हुआ, जिसकी शक्तिसे इन्होंने बड़े बड़े बीरों को थर्रा दिया, आज यह उस मातृभूमि को क्या अपना एक चुल्लू भर उष्ण रक्त भी न पिला सकेंगे? पर, तू तो सदा वीर पुरुषों का ही पवित्र रक्त पान करती है। इन

कायरों का कलुषित रक्त, इन कामियों का गंदा खून भला तू क्यों पीने चली ?

पर नहीं, तू यही खून पियेगी, इनकी मलिनता को अपनी पवित्र वात्सल्य-धारा से पखारेगी, इनकी कायरता का नाश करेगी यदि ऐसा न होता, तो तू इनके कंपित हाथों में तलवार देने का अनुरोध क्यों करती ?

तलवार पकड़ कर इन्हें क्या करना होगा ? इस नग्न चंडी को किसे छाती से लगाना होगा ? क्या कहा कि यह तलवार नहीं है, सुकोमल पुष्प-माला है ? धन्य ! मा, निराश न हो, तेरे इस वात्सल्य-उपहार को यह अवश्य धारण करेंगे और तेरी चिर-पिपासा भी बुझायँगे ।

७—स्वाधीनता का यज्ञ

ऐं ! यह 'स्वाहा स्वधा' का शब्द कहाँ से आ रहा है ? यह सरस्वती का तट ता है नहीं, यह तपोभूमि तो है नहीं, यह ऋषियों और अग्निहोत्रियों का पुण्याश्रम भी नहीं है, फिर यह पवित्र प्रतिध्वनि किधर से आ रही है ? ऐसा शब्द तो यज्ञ-मंडप से ही उठा करता है । किन्तु इस युग में यज्ञ का आयोजन कैसे हो सकता है ? जिस देश में 'भूखे भक्ति न होइ गुसाईं' वाली लोकोक्ति व्याप्त हो रही है, जहां पर धान्य और गोरस स्वप्न के धुंधले चित्रों में योग दे रहे हैं, जहाँ के पतित निवासियों का धार्मिक जीवन तिरस्कृत होकर अन्तर्हित होता चला जा रहा है और जहां की आत्मिक ज्योति टिमटिमाती हुई बुझना ही चाहती है, वहां यह कल्पना करना कि यह शब्द यज्ञ-मंडप से प्रतिध्वनित हो रहा है, भ्रम नहीं तो क्या है ?

फिर है क्या ?

वही—यज्ञ-मंडप का शब्द ।

किस यज्ञ का ?

वह यज्ञ बिल्कुल निराला और काया-कल्प कर देने वाला है ।

नाम ?

"स्वाधीनता का यज्ञ।" इसकी वेदी बड़ी ही भीषण है। इसके ऋत्विज वहीं हो सकते हैं जो स्वार्थ के शत्रु, इन्द्रियों के शासक, स्वतंत्रता के उपासक और जातीयता के प्रकाशक हों। इस हवन-कुंड में असंख्य वीर-मुंडोंकी आहुति दी जाती है। सैकड़ों लाल अपनी मा की गोद सूनी करके आपसे आप इस कराल कुंड में कूद पड़ते हैं। सहस्रों युवक अपनी प्राणप्रिया पत्नी का प्रेम-पाश तोड़कर इस कृतान्त-कुंड को छाती से लगाते हैं।

यह सब किसलिये ?

यज्ञ-देवता के प्रसन्न करने के लिये। सुना है कि, इन आहुत वीरों के रक्त की एक एक बूंद से सहस्रों वीर-पुंगव उत्पन्न होंगे। वे कृत्रिम सभ्यता को दबोच कर पैर के तले कुचलेंगे, पराधीनता को पापड़ की तरह चबाकर अन्याय और अत्याचार को मसलेंगे, सत्ताधारियों के मुकुट को तोड़-मरोड़ कर स्वतन्त्रता के आंगन में कलोल करेंगे, स्वाधीनता की बांसुरी बजायँगे, दिगन्तव्यापी विजय संख फूंकेंगे। तथास्तु !

८—मदान्ध

मदोन्मत्त ! ज़रा आँख तो खोल। देख, यह क्या हो रहा है ? तेरा यह सुसज्जित राजप्रासाद जल कर भस्म होनेवाला है। आग लग गई—अब बुझने की नहीं। आश्चर्य, तू अब भी मख़मली गद्दियों पर करवट बदल रहा है ! मुलायम तकियों को छाती से लगाये मस्त पड़ा है ! तुझे अपने सर्वनाश का तनिक भी ख्याल नहीं ?

तू ने राज-सिंहासन पर बैठ कर क्या किया ? यही न, कि सच्चे रत्नों का हार खूंटी पर टांग कर कच्चे कांच के टुकड़े अपने आभूषणों में जड़वाये, आर्य-सभ्यता को ताक में रखकर विदेशी चाल-ढाल को अपनाया, ग़रीब किसानों के झोपड़े फूँक कर अपने महल में ऐयाशी के सारे सामान इकट्ठे किये, कंकाल-शेष भूखी-प्यासी प्रजा का रक्त चूस चूस कर वेश्याओं के हावभाव के शिकार बने, प्याले पर प्याले ढाले और सियारों की तरह दुम दबा कर अपने नाम के साथ 'सिंह' शब्द को लजाया ? क्या तू ने कभी

किसानों के करुण-क्रन्दन को सुन कर गान-वाद्य की ओर से अपने कान हटाये हैं ? क्या तू ने मृगनयनी कामिनी के कटाक्षों को भुला कर दीन प्रजा की डबडबाती हुई आंखों पर तरस खाया है ? क्या तू ने कभी शक्ति और स्वतन्त्रता के आगे भोग-विलासों को ठुकराया है ? क्या तू ने कभी मछलियों और चिड़ियों का शिकार छोड़कर अत्याचारियों का हृदय चीड़कर तप्त रुधिर पान किया है ? क्या तू ने चापलूसों, धूर्तों और लंपटों के अतिरिक्त कभी धर्म, जाति या देश के नाम पर भी एक पैसा दिया है ? कभी नहीं, हरगिज़ नहीं।

इन सब कुकर्मों के बदले में तू यह चाहता है कि "प्रजा मुझसे प्रेम करे, मुझ पर कट मरे, मैं क्षत्रिय कहलाऊँ, लोग मुझे 'धर्म-धुरंधर' कहें, दानवीर कर्ण कहें, सत्यवीर हरिश्चन्द्र कहें ?" रहें झोपड़ी में, ख्वाब देखें महलों के ! कहीं अत्याचारी भी राज-भक्ति की आशा कर सकता है ? क्या कोई कायर भी क्षत्रिय बनने का दावा करेगा ? कहीं चरित्रहीन भी धर्मध्वज कहा जा सकता है ? क्या लोलुप और झूठे भी कर्ण और हरिश्चन्द्र हो सकते हैं ? अरे ! राम का नाम लो।

मदान्ध ! अब तेरा सुख-स्वप्न समाप्त हो गया। क्रान्ति की भीषण अग्नि प्रज्वलित हो उठी है। कुछ क्षण बाद तेरा प्रासाद भस्मावशेष रह जायगा। भोग-विलास की समग्र सामग्री धुएँ के साथ उड़ जायगी। इन मख़मली गद्दों और तकियों में कांटे चुभने लगेंगे। मृगनयनी के कटाक्ष पैने भाले हो जायँगे। ललित ललनाओं के भ्रू-विक्षेप में मृत्यु-देवी का तीक्ष्ण संकेत दिखाई देगा, प्राणवल्लभा की मीठी मुसक्यान में कराल काल का अट्टहास्य नज़र आयगा। और इन प्यालों में ज़हर घुला मिलेगा। गरीबों की लंबी आह तेरी सुरीली बीना को बेसुर कर देगी, उनके जिगर के फफोले तेरी रँगीली फुलवाड़ी जला कर ख़ाक कर देंगे। बेख़बर ! जिसे तू इन्द्रलोक समझ रहा है, थोड़ी देर में वह ऊजड़ मसान हो जायगा, जिसे तू स्वर्ग मान बैठा है, घड़ी भर में वह नरक हो जायगा।

विशेष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

स्वागताध्यक्ष श्रीनागेश्वर रावजी का भाषण

कोकनाडा में, हाल में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो विशेष अधिवेशन हुआ है उसके स्वागताध्यक्ष का पूरा भाषण नीचे दिया जाता है—

महाशयो, आंध्र देशवासियों तथा इस प्रान्त में काम करनेवाले हिन्दी-प्रचारकों की ओर से, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के विशेषाधिवेशन में उपस्थित आप सज्जनों का मैं सादर स्वागत करता हूं। यह मेरा अहोभाग्य है कि इस प्रान्त में आप महानुभावों का स्वागत करने का सुअवसर मुझी को मिला है। हिन्दी भाषा की जन्मभूमि काशी, प्रयाग, गया आदि पुण्यतीर्थों और कोकनाडा में वहुत अन्तर है। कोकनाडा एक साधारण नया शहर है। काशी गयादि के समान न यह पवित्र तीर्थ स्थान ही है और न प्राचीन नगर है। ऐसे एक साधारण शहर में आप लोगों के यथोचित सत्कार के प्रबन्ध में शायद हम कच्चे हों। ऐसे सत्कार की कमी वस्तुओं की कमी हीसे होगी प्रेम के अभावसे कदापि नहीं। हमारे प्रेम ही को आप सत्कार मान कर हमारी त्रुटियों को क्षमा करेंगे ऐसी मेरी आशा है।

भाषा देशाचार आदि के भिन्न भिन्न होने के कारण यद्यपि दक्षिण और उत्तर भारत में अन्तर है, तो भी जबरदस्त भौतिक पाश के बिना साधारण धर्मयुक्त ज्ञान-पाश से बन्धे रहना समस्त भारतवर्ष का समान्य गुण है। विज्ञान-विशारद महर्षियों ने विज्ञान-पाश से विषयाज्ञों को बांध कर सारे भारतवर्ष में एक भाव को उत्पन्न किया है। संस्कृत, वेद, पुराण, आगम, निगम, मताचार, समान ध्येय आदि ने भिन्न भिन्न प्रांतवासियों के हृदयों को एक रीति से बांधा है। भाषा के भिन्न होनेपर भी भाव जहां एक से हों वहां प्रेम और विश्वास का होना आसान है। बंग, महाराष्ट्र, गुजरात पंजाबादि प्रांतों की भाषाओं के भिन्न भिन्न होनेपर भी समस्त भारतवर्ष के साधारण संस्कार में ये सब प्रांत मिलकर अपने भिन्न भेद भाव को निकालकर बंधुत्व की पुष्टि

करते हैं। सामान्य संस्कार के काम में लगे हुए लोगों के लिये सामान्य भाषाका होना बहुत आसान होगा। जो लोग सामान्य काम में लगे नहीं है उन लोगों में एक भाषाका होना मुश्किल है। समान संस्कार में लगे हुए भारतवासियों के लिये स्वदेशी हिन्दी-हिन्दुस्तानी का सामान्य भाषा होना जैसे आसान है वैसे विदेशी-अंग्रेज़ी भाषा का होना आसान नहीं है। लोगों के सामान्य संस्कार में लगे रहने के अलावा भाषा के बन्धुत्व के ख्याल से भी हिन्दी हिन्दुस्तानी ही सामान्य भाषा होने लायक प्रतीत होती है। यद्यपि दक्षिणी भाषाओं और संस्कृत का वही संबन्ध नहीं है जो प्राकृत और संस्कृत का अथवा हिन्दी और संस्कृत का है, तोभी दक्षिणी भाषाओं में भी संस्कृत शब्दों का खूब ही प्रयोग होता है। इस कारण से दक्षिण भारतवासियों को हिन्दी-हिन्दुस्तानी का अभ्यास करना आसान है।

भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने के लिये भाषा की तरह एक लिपि का भी होना ज़रूरी है। वह लिपि वही हो सकती है जिससे सभी शब्द आसानी से और ठीक ठीक लिखे जा सकें। ऐसी लिपि मेरी समझ में नागरी ही है। महात्माजी की इच्छा है कि हिन्दू संस्कृत के साथ उर्दू, और मुसलमान उर्दू के साथ नागरी सीख कर भाषा प्रचार और हिन्दी-उर्दू में मेल बढ़ावें। दक्षिणवासी हम लोगों को संस्कृत और हिन्दी का अभ्यास करने के लिये नागरी लिपि का अभ्यास कर लाभ उठाना है—चाहे हम उर्दू न भी सीखें।

इन सुविधाओं के रहने से हिन्दी-साहित्य तथा भाषा-प्रचार करने के लिये पवित्र नगर काशी में भारत-भूषण पंडित मदनमोहन मालवीय जी के सभापतित्व में संवत् १८६७ वि० में इस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पहला अधिवेशन हुआ। उसी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन का आज इस आन्ध्र देश में होना विचित्र है। अन्य वैचित्र्यों की तरह इस वैचित्र्य का भी कारण महात्मा गांधीजी हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का, आरंभ में, जो उद्देश्य था, महात्माजी ने उसी को पूर्ण किया।

हिन्दी-हिन्दुस्तानी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है। यह देशभर में आसानी से समझी जाती है। ३० करोड़ में २५ करोड़ भारतवासी इस भाषा को आसानी से समझ लेते हैं। इतने लोगों से समझी जानेवाली इस भाषा को भगवान् हीने राष्ट्रभाषा बनाया है। अंग्रेज सरकार करोड़ों रुपये खर्च कर डेढ़ सौ वर्ष में भारतवर्ष के १००० में ६ ही लोगों को अंग्रेज़ी सिखा सकी। हज़ारों वर्ष प्रयत्न करने से भी अंग्रेज़ी कभी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। आज तक जो अंग्रेज़ी सिखायी गयी वह भी विज्ञान के लिये नहीं, काम-धन्धों ही के लिये। अंग्रेज़ी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयत्न निरर्थक होकर भारत के विकाश के नहीं, किन्तु भारत के बन्धन को मज़बूत बनाने में सहायक बने हैं। पाश्चात्य सम्बन्ध ने हमारे जीवन-प्रवाह को धीमा बनाया। भाषा, भाव, विज्ञान, रहन-सहन इन सब में हम पराधीन हो गये। हमारा लक्ष्य पाश्चात्य रीति, पाश्चात्य सभ्यता ही है। बिना इसके हमारा जीना ही मानो असाध्य है। मिल्टन बायरन आदि पर हमारी जो श्रद्धा है वह आन्ध्र कवि पोतन्न, भारतीय कवि तुलसीदासजी आदि महानुभावों पर नहीं है। घरबार बेचकर बीसों वर्ष के अभ्यास से हम जिस भाषा का अभ्यास करते हैं उससे हमारे विज्ञान और आत्मोद्धार की नहीं, किन्तु पराधीनता और बन्धनकी पुष्टि होती है।

हमारी पराधीनता की हमेशा याद दिलाते रहनेवाले ये पाश्चात्य ढंग हमारे लिये अच्छे नहीं है। जिस प्रणाली की दृष्टि में प्रातस्मरणीय लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीजी—जिन्होंने देश की सेवा में अपने को अर्पित कर दिया—दोषी हैं, वह प्रणाली हमारे उद्धार के लिये सहायक कैसे बन सकती है? इस सत्य को पहचान, हिन्दी का प्रचार करना आवश्यक समझ कर महात्मा गांधीजी ने हिन्दी-प्रचार का काम शुरू किया। कांग्रेस में अंग्रेजी का जो निष्कंटक राज्य था उसको हटाकर हिन्दी-हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा के उच्चासनपर बैठाया और हमारे राष्ट्रीय जीवन में नये युग का प्रारम्भ किया। राष्ट्रीय निर्माण का जो काम आज तक

थोड़ी संख्या के अंग्रेज़ी जाननेवालों के हाथ में था वह अब बहुत संख्या की साधारण जनता के हाथ में आ गया। हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रयोग कांग्रेस और अखिल भारत कांग्रेस कमेटी में बढ़ने लगा। देश भर में हिन्दी-हिन्दुस्तानी भाषाभ्यास की ओर रुचि बढ़ने लगी। हिन्दी-साहित्य के प्रचार का जिस संस्था ने बीड़ा उठाया वही संस्था हिन्दी-भाषा का प्रचार करने के लिये मद्रास में एक केन्द्र कार्यालय की स्थापना करके हिन्दी-प्रचार में बहुत सहायता करने लगी। उसी सहायता से आंध्र देश में भी खूब प्रचार हुआ। यद्यपि इस प्रचार के लिये सरकार से कुछ भी और साधारण जनता से जितना चाहिये उतनी सहायता नहीं मिली तो भी नवयुवकों के तथा प्रचारकों के—विशेष कर श्रीयुत हरिहर शर्माजी, हृषीकेशजी और रामभरोसे जी—के प्रयत्न से प्रचारका काम बहुत व्याप्त हुआ। आंध्र देश में हिन्दी-प्रचार का काम जैसे बढ़ा वैसे तामिल या कर्नाटक प्रान्त में नहीं बढ़ा। प्रचार के लिये केन्द्र-कार्यालय द्वारा हिन्दी साहित्यसम्मेलन ने आंध्रदेश को जो सहायता पहुँचायी उसके लिये मैं आंध्रों की ओर से उक्त सम्मेलन को धन्यवाद देता हूं। मैं आशा करता हूं कि आगे भी आंध्र-हिन्दी-प्रचार-कार्यालय को सम्मेलन वैसे ही सहायता देता रहेगा।

आंध्र देश में हिन्दी-प्रचार साधारण जनता की सहायता पर निर्भर है। जनता ने आज तक उदारता से सहायता दी है सही, किन्तु यह आवश्यकतानुसार नहीं थी। आगे अधिक उत्साह के साथ आंध्र लोगों को हिन्दी-प्रचार के लिए सहायता देनी होगी।

आंध्र-नवयुवकों में हिन्दी के प्रति जो प्रेम है वही इस विशेषाधिवेशन का कारण है। भाषा के आधार पर भारतवर्ष का जो प्राकृतिक विभाग था उसे निकाल कर इस अंग्रेज़ी सरकार ने देशी भाषाओं को कमज़ोर बना दिया। एक ही प्रान्त में तीन तीन चार चार भाषाएं हों तो किसी भी भाषा की उन्नति का होना कैसे सम्भव है? इसी से करीब करीब सभी भाषाएं क्षीण दशा को प्राप्त हुईं। गांधीजी ने कांग्रेस द्वारा फिर से भाषा के अनुसार ही राष्ट्र

का विभाग करा के प्रजा-जीवन को उत्तेजित किया। जनता को मातृभाषा द्वारा ही काम चलाने का ढंग मालूम हुआ। 'अंग्रेजी के बिना काम ही न चलेगा' ऐसा ख्याल ही उठ गया। आंध्र देश में तो बहुत दिनों से ही मातृभाषा द्वारा काम चलाने का क्रम जारी है। कांग्रेस ने आंध्र देश को एक अलग प्रांत माना, इसी से आज कांग्रेस का और इस सम्मेलन के विशेषाधिवेशन का कोकनाडा में होना सम्भव हुआ। भिन्न भिन्न स्थिति से भिन्न भिन्न लाभ होते हैं। इसलिये आंध्र देश में हिन्दी-प्रचार के लिए एक अलग कार्यालय तथा समिति की स्थापना उचित और आवश्यक समझकर हम ने ऐसा करने का निश्चय किया है। ऐसी संस्था के होने से प्रचार का काम अवश्य ही तेजी से चलेगा। अलग व्यक्तित्व को पाकर जो प्रांत आत्मनिर्भर हैं उनमें अलग कार्यालय का होना उचित ही है। यद्यपि हम जिस संस्था के खोलने के प्रयत्न में हैं उसको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन उचित सहायता देता ही रहेगा, तो भी आंध्र लोगों को चाहिये कि वे इसको अपना ही काम समझकर शीघ्र उसे स्वावलंबी बनाने का प्रयत्न करें।

हिन्दी-प्रचार के काम में कुछ बातें सोचने की हैं। यद्यपि भाषा प्रचार और साहित्य-प्रचार में सम्बन्ध अवश्य है, तो भी उत्तर की तरह दक्षिण में भी भाषा और साहित्य दोनों का प्रचार होना मुश्किल है। दक्षिण में हिन्दी भाषा का प्रचार व्यवहार के व्यापकतार्थ आवश्यक है, न कि साहित्य के व्यापकतार्थ। आंध्र देश में साहित्य की व्यापकता मातृभाषा आंध्र द्वारा ही होनी चाहिये। इस लक्ष्य को दूर करने से जो बुरे नतीजे निकलते हैं वे अंग्रेजी के प्रचार से हमें अच्छी तरह मालूम हो ही गये। अंग्रेजी द्वारा साधारण लोगों को विज्ञान और व्यवहार की बातें सिखाना असम्भव है। इन दोनों लक्ष्यों को ध्यान में रखकर कार्य करना हिन्दी-प्रचार की वृद्धि के लिये उचित है।

हिन्दू-मुसलमान का मेल, भारत की सब जातियों की एकता, स्वधर्म की रक्षा और स्वाधीनता इन सबका साधन है हिन्दी-प्रचार।

इस विषय में यह सम्मेलन खूब सोच कर कार्य करने के ढंग का निर्णय करेगा। महात्मा गांधीजी ने कहा है कि राष्ट्रीयता का आधार चरखा और हिन्दी है। एक बाह्य बन्धन को और दूसरा भीतरी बंधन को तोड़ने वाला है। जब तक हम इन दोनों बंधनों से छुटकारा न पावें, तब तक स्वराज्य-सुखानुभव के हम पात्र नहीं हो सकते। महात्माजी के बंधन के समय में तो उनके उपदेशानुसार हम काम करें यह हमारा कर्त्तव्य है। मुझे पूर्णतया विश्वास है कि ऐसे देशभक्त, त्यागमूर्ति सब गुणों से विभूषित महानुभाव के सभापतित्व में इस विशेषाधिवेशन को परमेश्वर अवश्य सफल बनावेगा। आप लोगों से भी आंध्र-देश-वासियों की तरफ से मेरी प्रार्थना है कि हमारे त्रुटियुक्त, किन्तु भक्तिभरे, आतिथ्य को स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कोकिनाडा की विशेष बैठक के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी का भाषण

वन्देमातरम्

सज्जनो !

आपने मुझे ऐसे स्थानपर बिठा दिया है, जहां बैठने में मुझे बहुत संकोच होता है। मैं समझता हूं कि मुझे इस आसन के ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं साहित्य का पंडित नहीं हूं, मैं ने साहित्य की कोई सेवा भी नहीं की है। मैं यह भी नहीं कह सकता, कि मैं साहित्य में विशेष रुचि रखता हूं। यदि कुछ रुचि थी भी तो वह राजनीति के भँवर में पड़कर लापता होगयी है। तो फिर मैं यहां क्यों हूँ ? इसके लिये मैं आप को दोषी ठहराऊं या स्वयं अपने को ? यदि आपने मुझे सभापति निर्वाचित करने में भूल की, तो क्या मैं ने उस पद को स्वीकार कर उससे भी अधिक भूल नहीं की ? आप मेरी अयोग्यता कदाचित् न भी जानते हों, पर मैं तो जानता था।

आपकी भूल मार्जनीय हो सकती है, पर मेरी कदापि नहीं। तथापि मैं यह विश्वास दिला सकता हूँ, कि मुझे हिन्दी से प्रेम है, हिन्दी-साहित्य से प्रेम है और यह प्रेम कृत्रिम नहीं; क्योंकि मैं ने इनसे परिचय कभी नहीं किया; पर यह प्रेम स्वाभाविक है और मैं समझता हूं, कि शायद इसी प्रेम के कारण आपने मुझे इस उच्चासन पर बिठाया है। मेरे भाषण में आप साहित्यिक आनन्द खोजने पर भी नहीं पावेंगे और न उसमें आपको विद्वत्ता ही मिलेगी। पर जिस रंग में आज सारा भारत रंगा हुआ है—जिस राष्ट्रीयता की मधुर वीणा से आज समस्त देश गूंज रहा है—उसी रंग का आभास यदि आपको आज यहां दिखला सकूं, उसी के एक तार की झंकार मात्र सुना सकूं, तो अपने को धन्य समझूँगा।

अस्तु। समस्त संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों और जातियों के इतिहास देखने से मालूम हो जाता है, कि राष्ट्रीयता का भाषा और साहित्य के साथ बहुत ही घनिष्ठ और गहरा सम्बन्ध है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि राष्ट्रीयता और जातीयता के अंगों में सबसे अधिक आवश्यक अंग एकता है, और वह एकता किसी विषय-विशेष में नहीं; वरन् वह एकता, जितनी व्यापक होगी, उतनी ही राष्ट्रीयता में स्थिरता होगी और वह शक्तिशाली होगी। भावों की एकता अन्य सब प्रकार की एकताओं का मूल है और यह भावों की एकता तभी हो सकती है, जब वे विभिन्न व्यक्ति, जिनके द्वारा राष्ट्रीयता का निर्माण होता है, अपने भावों को एक दूसरे पर व्यक्त कर सकें। इस महान् कार्य के लिये एक भाषा की अत्यन्त आवश्यकता है। साहित्य क्या है? साहित्य मानव-जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर विचारों तथा भावों का वह गुच्छ है, जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगन्ध दोनों ही मनको मोह लेते हैं। कोई जाति तबतक बड़ी नहीं हो सकती, जबतक उसके भाव और विचार उन्नत न हों। जब भाव और विचार उन्नत होंगे, तब उनका विकास उस जाति के साहित्य-रूप में ही हो सकता है; इसलिये जाति या राष्ट्र के उत्थान के साथ-साथ उस जाति या राष्ट्र के

साहित्य की भी उन्नति और उत्थान होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार साहित्य की अवनति उस जाति के पतन का अटल और अटूट प्रमाण है।

भारत के ही इतिहास को लीजिये। महाभारत, रामायण और उपनिषद् अवश्य ऐसे समय में लिखे गये थे, जब यह देश बहुत उन्नत था। यह कल्पना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है, कि ऐसे ग्रन्थ-रत्न किसी असभ्य बर्बर जाति के आचार्यों द्वारा लिखे गये हों। जब बौद्धों का राज्य भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया और उनका प्रभुत्व तथा गौरव भारतवर्ष के बाहर भी पहुँच गया तो पाली भाषा और पाली-साहित्य की उन्नति भी उस साम्राज्य की उन्नति के साथ ही साथ बढ़ती गयी। बौद्ध समय के प्रसिद्ध अंगरेज़ी इतिहास-वेत्ता डा० रीज़ डेविड्स ने लिखा है :—

"राजनीतिक सत्ता के साथ साथ भारतवर्ष में भाषा के प्रभुत्व का केन्द्र भी बदलता गया है। पहले वह केन्द्र पंजाब में, उसके बाद कोशल में, और उसके बाद मगध में हुआ, और अन्त में जब संस्कृत समस्त भारतवर्ष की एक भाषा हो गयी, तब पश्चिमी भारत में सब से प्रसिद्ध प्रान्तीय भाषा पायी जाती थी* और इसी बौद्ध-काल के सम्बन्ध में उनकी राय है, कि वह युग भारतीय साहित्य का सुवर्ण युग था† बौद्ध धर्म और बौद्ध साम्राज्य के ह्रास के उपरान्त जब वैदिक धर्म और वैदिक जाति का फिर उत्थान हुआ, तब उस उत्थान के साथ ही साथ संस्कृत भाषा और संस्कृत-साहित्य का भी पुनरुत्थान देखा जाता है।"

डा० भण्डारकर, जो बड़े प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता हो गये हैं, लिखते हैं, कि "बौद्ध धर्म के कमज़ोर पड़ते ही ब्राह्मणों का ज़ोर बढ़ने लगा और उस समय तक पाली भाषा में जो कुछ हो रहा था, वह अब संस्कृत द्वारा किया जाने लगा। संस्कृत और प्रान्तीय

---

* Rhys Dawid's Budhist India p. p. 155.

† p. p, 137.

भाषाओं के इतिहास तथा साहित्य के देखने से ही धर्म और राजनीति की क्रान्तियों का पता चलता है। जब भारतवर्ष में द्वितीय बार हिन्दूधर्म की स्थापना हो गयी, और गुप्त वंश के राजाओं का अधिकार या प्रभुत्व स्थापित हो गया, तब फिर भी संस्कृत साहित्य का पुनरुत्थान हुआ और उसी समय कालिदास बाणभट्ट जैसे कवि-पुंगवों का आविर्भाव हुआ।" उस समय के सम्बन्ध में मि० विन्सेन्ट स्मिथ लिखते हैं :—

"गुप्त राजाओं का समय—जो मोटामोटी ३०० से ६५० खृष्टाब्द तक कहा जा सकता है और जिसमें, विशेष कर चौथी तथा पांचवीं शताब्दियों को समझना चाहिये, कितने ही क्षेत्रों में विशेष मानसिक विकास का समय था। वह ऐसा समय था, जिसकी तुलना, अंग्रेज़ी इतिहास में, एलिज़ाबेथ और स्टुअर्ट राजाओं के समय से करना अनुचित न होगा। भारतवर्ष में कालिदास के चमत्कार के सामने अन्य छोटे छोटे कवि ठीक उसी तरह छिप जाते थे, जैसे इङ्गलैण्ड में शेक्सपिअर के मुकाबले में दूसरे लेखक। पर, जैसे एलिज़ाबेथ के समय का साहित्य, यदि शेक्सपिअर न होता, तौभी बहुत उच्चकोटि का होता, वैसे ही भारतवर्ष में यदि कालिदास के ग्रन्थ न भी बचे रहते तो दूसरे के रचे हुए ग्रन्थों की संख्या, साहित्यिक दृष्टि से, उस समय को अपूर्व उत्पादक शक्ति रखनेवाला प्रमाणित करती। मृच्छकटिक और मुद्राराक्षस का भी यही समय बताया जाता है।"

हर्षवर्द्धन का राज्य एक ओर तो हिमालय से लेकर नर्मदा, मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र तक तथा दूसरी ओर आसाम तक विस्तृत था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग ने हर्षवर्द्धन के राज्य-प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा की है, और उसे धर्म पर स्थित बताया है। हर्षवर्द्धन आदि गुप्तवंशीय राजाओं ने केवल उत्तरी भारत ही नहीं, बल्कि भारत के दक्षिणी हिस्से तक भी अपना राज्य फैलाया था। हर्षवर्द्धन स्वयं कवि थे और उनके लिखे हुए व्याकरण और नाटक आज भी पाये जाते हैं। उन्हीं के दरबार में गद्य-काव्याकाश को

कादम्बरी रूपी कादम्बिनी-माला से सुशोभित कर सहृदय-मयूरों के प्राण को नित्यप्रति नचानेवाले बाण कवि रहते थे। इसी प्रकार यदि हिन्दी-साहित्य का भी इतिहास देखा जाय तो मालूम होगा, कि चन्दवरदाई की काव्य-रचना हिन्दुओं के सरताज तथा हिन्दू-धर्म के प्राण पृथ्वीराज के समय, और भूषण कवि का सम्मान शिवाजी के दरबार में हो सकता था। भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य भी यही बताता है, कि जहां, जिस प्रान्त में, जिस भाषा के बोलनेवालों के बीच राष्ट्रीय भाव जाग्रत हुआ, उसी भाषा का आधुनिक साहित्य भी उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर हुआ है। बंगला, मराठी और गुजराती साहित्य इस बात के प्रमाण हैं और इधर थोड़े काल से हिन्दी-साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि भी यही बताती है, कि साहित्योन्नति और राष्ट्रीयता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

यूरोप का इतिहास भी इसी बात का साक्षी है, कि जिस समय किसी देश ने राजनीतिक उन्नति की है, ठीक उसी समय या उसके आसपास वहां की शिल्पकला और साहित्य की भी उन्नति हुई है। सब से पुरानी जाति—जिसकी विद्या, कला और साहित्य का प्रभाव युरोप के समस्त इतिहास पर पड़ा है और जिसका साहित्य आज भी बड़े चाव के साथ मनन किया जाता है—वह ग्रीक जाति है। ग्रीस देश पर पारसियों का भयंकर आक्रमण, खृष्टाब्द के प्रायः पांच शताब्दि पूर्व, हुआ था। उस समय ग्रीस में कई छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमें से एक एथेन्स ही पारसी-आक्रमण का अवरोध करने में अगुआ बना था और ग्रीस के सभी राज्यों को ऐक्य-सूत्र में बांध कर उसी एथेन्स ने पारसियों को पराजित किया, इसका फल यह हुआ कि एथेन्स का नेतृत्व प्रायः सारे ग्रीस को स्वीकार करना पड़ा और इसी समय एथेन्स का साम्राज्य स्थापित हो गया। इतिहास लिखनेवालों का विचार है, कि ग्रीस के इतिहास में सब से अधिक महत्व का यही समय था। उस समय का एथेन्स शान्ति, सु-संगठित शक्ति और पारस्परिक एकता का केन्द्र हो रहा था, पर-

राष्ट्रों के साथ भी, इसका किसी बात में मनमोटाव न था। पेरिक्लिस के नेतृत्व में उसके अधीन एक बड़ा साम्राज्य, जहाजों का एक बड़ा बेड़ा और बहुत धन था। *इस समय का वर्णन करते हुए ऐतिहासिकों ने कहा है, कि "मानव जाति के इतिहास में यह एक आश्चर्यजनक घटना है, जिसके कारण का पता न तो किसी प्राचीन लेखक ने बताया है और न किसी अर्वाचीन मित्र की बुद्धि ने लगाया है। ऐसी अशान्ति के समय भी, इस छोटे राज्य में जिसकी स्वतंत्र प्रजा की संख्या शायद ही तीस हजार कुटुम्बों की हो, शिल्प, निर्माण, कला और नय इस उच्च स्थान तक पहुंच गये थे, जिसके कारण एथेन्स पृथ्वी का उस समय से आजतक गुरु समझा जाता है। आधुनिक काल में कई प्रकार के विज्ञानों ने उन्नति की है, और कला की कितनी ही नयी-नयी शाखाओं ने विज्ञान को सहायता दी है; पर उस समय का एथेन्स विचार-सौन्दर्य्य में इस परिपूर्णता को पहुँचा था, जहां आजतक कोई भी देश नहीं पहुँच पाया है। जिस प्रकार दिग्भ्रम में पड़ा हुआ मल्लाह ध्रुवतारा को देख कर अपना रास्ता ठीक कर लेता है, उसी प्रकार जब कभी बर्बरता ने अपना आधिपत्य जमा लिया, तब विचारों की स्वच्छता को फिर से स्थापित करने के लिये उसी की ओर सबों ने देखा है और भविष्य में भी अधःपतन तथा भ्रष्टता से बचने का सब से अच्छा उपाय यही है, कि उसके आदर्श को अपने सामने रखा जाय"। यहाँ के दर्शन, इतिहास, वाक्चातुर्य, कविता तथा नाटक-सभी में अत्यन्त सुन्दरता और गाम्भीर्य्य पाया जाता है, और आजतक वे ही समस्त यूरोप के लिये पथ-प्रदर्शक हो रहे हैं।

इसी प्रकार इस्लाम ने प्रायः पांच सौ वर्षों के अन्दर अपना आधिपत्य एशिया, अफ्रिका और यूरोप के हिस्सों में जमा लिया था। उसका भी इतिहास यही प्रमाणित करता है, कि मानसिक उन्नति-जिसका वाह्य स्वरूप सुन्दर साहित्य का होता है-राजनीतिक

*Historian's History Vol. 3 p. 431

उन्नति के साथ ही साथ हुई है। अब्बास ख़लीफों का समय सब से अधिक महत्व का समझा गया है। उसी महत्वपूर्ण समय के सम्बन्ध में श्रीयुत अमीरअली, जो एक बड़े विद्वान् इतिहासवेत्ता हैं, लिखते हैं कि उनका राज्य-प्रबन्ध ऐसा सुन्दर था, कि आज के अच्छे-से-अच्छे देश की शासन-प्रणाली से किसी बात में कम नहीं था। यहां तक कि पुस्तक-बेंचनेवालों का स्थान समाज में बहुत ऊंचा था और लेखन-कला की भी बड़ी उन्नति हुई थी। इस सम्बन्ध में एक युरोपीय विद्वान् ने लिखा है—"उस समय का अगाध साहित्य, वहां की प्रतिभा का चमत्कार और बहुमूल्य आविष्कार जो मानसिक शान्ति का परिचय देते हैं इस बात के भी प्रमाण हैं, कि वे युरोप के लिये सभी बातों में शिक्षक बने थे। उन्होंने एक ओर तो मध्यकालीन समय के इतिहास के लिये मसाला अपनी यात्राओं और जीवनियों में रख छोड़ा है और दूसरी ओर अपने अद्वितीय परिश्रम, सुन्दर निर्माण, शिल्प और कला के अत्यन्त उच्च उदाहरण दिये हैं।" * ख़लीफा मामून का समय इस्लाम के इतिहास में सब से अधिक यशस्वी और प्रख्यात समझा जाता है, और उसका प्रेम साहित्य, दर्शन और विज्ञान के ऊपर बराबर था। यह सच कहा गया है कि मुस्लिम देशों के मानसिक विकास के इतिहास का मूल मामून के राज्य-काल में पाया जाता है। † स्पेन और अफ्रिका में मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया था। स्पेनमें उस की लम्बाई-चौड़ाई बहुत लम्बी-चौड़ी नहीं थीं; पर उसमें एक बड़े साम्राज्यके के सब सामान मौजूद थे। उसमें तीस बड़े-बड़े शहर, अस्सी दुर्ग और हज़ारों दीवारों से घिरे हुए गांव थे। मध्य-भूसागर के किनारे पर कितने ही बन्दरगाह थे, जहाँ बड़ी तिजारत जारी थी। वहां के खेतों में सब प्रकार के अन्न उपजते थे और फलों के भाण्डार से बाग के बाग भरे पड़े थे। वहां

* Sedillot quoted by M. Amiir Ali.

† खुदा ब्रक्श—Islamic Civilization. P. 276. 277.

के निवासी सभी स्थानों में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। वहां की राजधानी गेनेडा अत्यन्त सुन्दर नगर था, जहां आमोद-प्रमोदके लिये सुन्दर बाग-बगीचे और झरनों से सुशोभित एक बहुत ही मज़बूत किला भी था। मकान बहुत ही मनोमोहक तथा आरामप्रद थे और वहां की तिजारत बहुत दूर तक फैली हुई थी, साथ ही वहाँ के खलीफ़ा शिल्प और साहित्य के भी बड़े प्रेमी थे। उन्हीं की सहायता और विद्या-प्रेम के कारण बड़े-बड़े विद्वान् और कवियों ने उपयुक्त पदों को सुशोभित किया था। केवल पुरुष ही नहीं, वरन् वहां की स्त्रियों ने भी साहित्यिक क्षेत्र में बड़ा काम किया था। केवल साहित्य में ही नहीं, बल्कि इतिहास, भूगोल, दर्शन, ज्योतिष विज्ञान, चिकित्सा और संगीत शास्त्र को भी वहां के निवासियों ने उन्नति की चरमसीमा को पहुँचा दिया था। यहां तक कि वहां एक विश्वविद्यालय भी स्थापित था। महाविद्यालय के फाटकों पर निम्नलिखित अनमोल वाक्य लिखे रहते थे—

"पृथ्वी चार स्तम्भों पर खड़ी है। वे स्तम्भ हैं, विद्वानों की विद्या, बड़ों का न्याय, सुजनों की प्रार्थना, उपासना और भजन तथा वीरों का पराक्रम।"

भारतवर्ष के मुसलमानी राज्य में अकबर का राज्य बड़े महत्त्व का समझा गया है। यद्यपि अकबरने भी हिन्दू राजाओं को पराजित कर मुग़ल राज्य स्थापित किया, तथापि अकबर के राज्य में हिन्दुओं को अपने धर्म-कर्म में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी। अकबर स्वयं बहुत बातों में हिन्दू-रीतियों और विचार-शैली को श्रद्धा की दृष्टि से देखता था और उसने हिन्दुओं के प्राचीन साहित्य से परिचय प्राप्त करने में परिश्रम भी किया था। उसका शासन प्रभावशाली होने के कारण देश में शान्ति थी। भारतवर्ष के लिये अकबर का राज्य-काल और इङ्गलैण्ड में एलिज़ बेथ का राज्य-काल एक ही समय में पड़े थे। और दोनों देशों के साहित्य पर उस समय का बहुत प्रभाव पड़ा है। अकबर की आज्ञा से बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का उल्था फ़ारसी में किया गया था, जिनमें महा-

भारत, रामायण, अथर्ववेद आदि विशेष उल्लेख्य हैं, पर इसके अतिरिक्त अकबर का समय हिन्दी-साहित्य के लिये भी अत्यन्त गौरव का है; क्योंकि उसके सूर्य और चन्द्रमा—तुलसी और सूर—दोनों ही मानों एक ही साथ उदय ले कर विलक्षण ज्योति और प्रभा का विस्तार कर रहे हैं।

युरोपीय अर्वाचीन राष्ट्रों का इतिहास भी यही प्रमाणित करता है कि राष्ट्र और साहित्य का उत्थान समकालीन हुआ करता है। इङ्गलैण्ड के सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है कि महारानी एलिज़वेथ का समय अत्यन्त गौरवान्वित समय समझा जाता है। महारानी विक्टोरिया का समय भी वैसा ही महत्व और गौरव का है। एलीज़वेथ का समय स्पेन निवासियों के साथ युद्ध में विजय लाभ कर अंग्रेज़ी राज्य और राष्ट्र के प्रभुत्व-स्थापन तथा वाणिज्य व्यापार के विस्तार के ख़याल से महत्व का समझा जाता है, तो शेक्सपिअर आदि जैसे प्रतिभाशाली महाकवियों के कारण भी वह समय कम गौरव का नहीं हो सकता। एक प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता ने लिखा है कि किसी और अंग्रेज़ी राजा के आस-पास इतने विख्यात राजनीतिज्ञ और शासक नहीं थे, जितने एलीज़वेथ के। कोई दूसरा राज्य भी ऐसा नहीं था, जिसमें साहित्यिक तथा प्रभा और तेज के धनिक, तिजारती और वीर नाविक—जिन्होंने अपनी वीरता और साहस से इङ्गलैण्ड के नाम को समुद्र पार के अज्ञात देशों में विख्यात बनाया था—एक ही साथ इतनी संख्या में पाये गये हों। उस समय में ऐसे ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जिनके लिये कोई भी जाति और कोई भी समय अपने को गौरवान्वित मान सकता है। इसी प्रकार रानी ऐन का समय भी अत्यन्त महत्व का समय है। वह समय राजनीतिक सुधारों के लिये प्रख्यात है। इसी समय में न्याय राजा के पंजों से छुटकारा पाकर शुद्ध और स्वच्छ हो गया, फौज स्थायी रूप से तैयार की गयी, बहुत बातों में पार्लियामेण्ट का अधिकार स्थापित हो गया, समाचार-पत्रों को स्वतंत्रता मिल गयी, सन् १६८८ ई० की राज्य-क्रान्ति में प्रजा के अधीन राजा को

लाने का जो काम शुरू हुआ था, वह और भी स्थिर और स्थायी हो गया। इसी समय युरोप की कई लड़ाइयों में फ्रांस को पराजित कर इङ्गलैण्ड ने बड़ी विजय प्राप्त की। इङ्गलैण्ड के साहित्यिक इतिहास में भी यह समय बड़े महत्व का समझा जाता है। उस समय साहित्य और विज्ञान के ज्ञाता राज्य के बड़े-बड़े पदों को सुशोभित करते थे, गणिताचार्य सर आईज़क न्यूटन, टकसाल के अधिपति, दार्शनिक जौन लौक बाणिज्य मंत्री और एडिसन मंत्री का काम करते थे। इनके अतिरिक्त स्वीफ्ट प्रभृति दूसरे साहित्यिक सज्जन भी उत्साहित किये जाते थे।

उन्नीसवीं शताब्दि, इङ्गलैण्ड के इतिहास में, सब से अधिक गौरव और महत्व की है। नैपोलियन के विरुद्ध विजय पाकर, इङ्गलैण्ड युरोप की महाशक्तियों में प्रायः सर्वोच्च स्थान पा गया उसका साम्राज्य पृथ्वी के सभी महाप्रदेशों में फैल गया। इङ्गलैण्ड का वाणिज्य अत्यन्त विस्तृत और उस का प्रभुत्व समस्त भूमण्डल में स्थापित हो गया। इसी शताब्दि में प्रजासत्तात्मक राज्य भली-भांति स्थापित हुआ। जहां देखिये वहीं अंगरेजी महत्ता और उस के प्रभुत्व का प्रभाव देखा जाता है। इस शताब्दि में भी अंगरेजी महाकवियों और अंगरेजी साहित्यिकों की प्रतिभा ने अपना चमत्कार खूब ही दिखाया है। वर्ड्सवर्थ, वाल्टर स्कौट, वायरो, शेली, टेनिशन, ब्रोडनी की कविताएं संसार की उत्तमोत्तम कविताओं की तुलना में आ सकती हैं। इसी प्रकार कार्लाइल, रस्किन, जौनमौर्ली प्रभृति का गद्य-काव्य, किसी समय के अच्छे गद्य के साथ मुकाबला कर सकता है, थैकरी और डिकेन्स के उपन्यास, आज भी अपनी योग्यता के लिये मशहूर हो रहे हैं। विज्ञान और दर्शन के भी धुरन्धर लेखकों का अभाव नहीं है। सारांश यह है, कि इङ्गलैण्ड के इतिहास में यदि राजनीति, साम्राज्य और वाणिज्य की दृष्टि से यह समय अत्यन्त महत्व और गौरव का है, तो शिल्प, कला, विज्ञान, दर्शन तथा गद्यपद्यमय साहित्य की दृष्टि से भी यह समय वैसा ही गौरव और महत्वपूर्ण है।

फ्रान्स के इतिहास में खृष्टाब्द की १७ वीं शताब्दि बड़े मार्के की हुई है। इसी शताब्दि में राजा के अधिकार बहुत ही विस्तृत और पक्के हो गये हैं। १३ वें लूई और १४ वें लूई का राज्य कई बातों के लिये प्रसिद्ध है। १३ वें लूई के सम्बन्ध में कहा गया है, कि वह बहुत धार्मिक और उदार राजा था। वह सदा धर्म का पालन और दूसरे की भलाई करने में तत्पर रहता था, पर वह कमज़ोर था और इसी से उसे दूसरे के सहारे पर भरोसा करना पड़ता था। इसी लिये उसके राज्य-काल में रीशलू का दबदबा फ्रांस में जम गया। रीशलू ने राजा की महत्ता और शिष्टता को इस दर्जे तक पहुँचा दिया, जिस से राजसत्ता और प्रजा-हित दोनों में कुछ भी अन्तर न रह गया। रीशलू ने प्रोटेस्टैंट धर्म को प्रायः विनष्ट कर वहाँ एकता स्थापित कर दी। सूबादारों के अधिकार और शक्ति कम कर के उस ने राजा की शक्ति बढ़ा दी, न्याय का काम ठीक ठीक चलने लगा, पुलिस संगठित रूप से काम करने लगी, खज़ाने के काम पर पूरी निगरानी रहने लगी। रीशलू ने समाचार-पत्र का भी आविष्कार किया तथा जनता की भलाई के लिये स्थान-स्थान पर चिकित्सालय क़ायम हुए। कृषि, शिल्प, और वाणिज्य-व्यापार में उन्नति की गयी, नहरें खुदवायी गयीं, फौज की सुन्दर व्यवस्था हुई, जंगी और तिजारती बेड़े तैयार कराये गये। साथ ही, उस ने साहित्य, विज्ञान और शिल्प को भी प्रोत्साहन देने में कमी न की। उसी ने ४० विद्वानों की एक संस्था स्थापित की, जिस का नाम 'फ्रेंच एकेडमी' रखा गया। फ्रेंच एकेडमी का सदस्य होना, आज भी, विद्वानों के लिये सब से बड़ी प्रतिष्ठा समझी जाती है। इस समय साहित्य को जो प्रोत्साहन मिला, उसका प्रभाव कुछ दिनों बाद तक चला गया। १४ वें लूई के समय का साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है, और उस समय विज्ञान, कविता, वाचनशक्ति, नाटक, निर्माण, शिल्प, संगीत शास्त्र, सभी बड़ी उन्नत अवस्था को प्राप्त हुए। इसी प्रकार फ्रांस की बड़ी राज्यक्रान्ति के पूर्व वालटेयर, डिडरो और रूसो ने उस के लिये जमीन तैयार कर रखी थी, इन्हीं

के लेखों ने फ्रांस की जनता के विचारों और भावों में इतना परिवर्तन कर दिया था, कि जो देश उस समय तक राजा के अधिकारों में जकड़बंद थे, वहीं, थोड़े ही दिनों के बाद, शक्तिशाली राज्य को चूर-चूर कर जनता ने प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित कर लिया। इससे बढ़ कर पृथ्वी के इतिहास में राजनीति पर साहित्य के प्रभाव का प्रमाण दूसरा नहीं मिलता। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासवेत्ता रामबौड ने लिखा है, कि वाल्टेयर का आधिपत्य १४ वें लूई के आधिपत्य से अधिक प्रभावशाली था। सच्चा राजा वही था; क्योंकि उस का अधिकार प्रजा के मस्तिष्क और हृदय पर था। उस समय के जितने विचार थे, सबों को उस ने उथल-पुथल कर दिया। इसी प्रकार रूसो का प्रभाव भी बहुत गहरा पड़ा। उस ने फ्रेंच जाति के विचारों में क्रान्ति पैदा कर दी, जिस का असर, थोड़े ही काल में, वहां की राज्य-क्रान्ति के रूप में देखा जाता है। यह उसी की शिक्षा थी कि प्रकृति सभी मनुष्यों को एक दूसरे के बराबर पैदा करती है, तो फिर एक मनुष्य दूसरे पर क्यों अधिकार जमाता है? स्वत्व का कारण शक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यदि ऐसा हो तो अधिक शक्तिशाली होने से ही स्वत्व भी बढ़ जायेगा, अर्थात् शक्ति के घटने-बढ़ने से स्वत्व नहीं घटता-बढ़ता। उस ने लोगों को यह भी बताया, कि जब मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है, तब उस पर दूसरे का किसी प्रकार का अधिकार नहीं हो सकता; पर मनुष्य-जाति के व्यक्ति अपनी रक्षा और हित के लिये अपने अधिकारों को राजा के यह प्रतिज्ञा करने पर कि वह उनकी रक्षा करेगा, छोड़ देता है और इसलिये जो अधिकार राजा के हैं, वे प्रजा के दिये हुए हैं, अर्थात् प्रजा के ही अधिकार हैं। इस शिक्षा का प्रभाव केवल फ्रांस की क्रान्ति में ही नहीं, वरन् समस्त यूरोप के इतिहास पर देखा जाता है और यह नहीं कहा जा सकता, कि अभी वह प्रभाव यूरोप से बिलकुल हट गया।

फ्रांस का इस समय का इतिहास एक ऐसी जाति का इतिहास है, जो अपने देश के अमीर-उमरा और राजा के अत्याचारों से

पीड़ित हो कर समाज-संगठन को एकबारगी तोड़-मरोड़ कर तथा नयी संस्थाएं स्थापित कर राज्य-संचालन का भार जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप देता है, पर उन में सहिष्णुता, धर्म और त्याग के अभाव के कारण प्रजा की नव जागरित शक्ति फिर एक मनुष्य के हाथ की कठपुतली बन कर प्रायः बीस बरसों तक यूरोप को अपने पावों के नीचे दबाये रख सकती है। साहित्य ने अपने ही देश में स्वदेशीय राजा के विरुद्ध राज्य-क्रान्ति कराई; पर इतिहास में इस बात के भी उदाहरण मौजूद हैं जब अन्य देशीय राजा के विरूद्ध, पददलित जनता ने उठ खड़ी होने की चेष्टा और स्वराज्य स्थापित करने का प्रयत्न सर्व प्रथम अपनी भूली हुई भाषा और विस्तृत साहित्य का सहारा ले कर किया है। यह एक जानी हुई बात है, कि जब एक देश दूसरे देश पर अपना आधिपत्य जमा लेता है, तब उस आधिपत्य को स्थायी बनाने के लिए वह विजित प्रजा के विचारों तथा भावों को इस प्रकार बदल देना चाहता है, जिस में वह अपने गौरव को भूल जावे और केवल विजेता के ही गौरव तथा महत्ता की स्मृति रख सके। इस के उदाहरण सभी विजित जातियों के इतिहास में पाये जाते हैं। भारतवर्ष भी मुसलमानी आधिपत्य-काल से आज तक इसी नीति का शिकार बनता चला आया है। मुसलमानी राज्य-काल में हिन्दुओं को राजकर्मचारी बनने के लिए फारसी की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी और यद्यपि इसका प्रभाव उनके जीवन और रहन-सहन पर बहुत पड़ा, तथापि यह नहीं कहा जा सकता, कि हिन्दुओं का मस्तिष्क इतना दुर्बल हो गया था, जिस से वह कोई भी प्रतिभाशाली पुरुष उत्पन्न न कर सका हो। उसी समय प्रायः सभी प्रान्तिक भाषाओं के उत्तमोत्तम कवि हुए हैं। अंगरेजी राज्य ने अपना प्रभाव हमारे जीवन के हर एक कोने में पहुँचाया। यद्यपि अंगरेजी शिक्षा और अंगरेजी भाषा का विस्तार इतना अधिक नहीं हुआ है, जितना हो सकता था; फिर भी उसका प्रभाव बहुत गहरा पड़ा। उसी का फल यह है, कि आज अंगरेजी-शिक्षित समाज दुर्बल और परावलम्बी

हो रहा है—वह अंगरेजी सभ्यता, अंगरेज़ी प्रतिभा, अंगरेज़ी शक्ति, अंगरेज़ी साहित्य और अङ्गरेज़ी गौरव के भार से इतना दब गया है, कि वह अपने देश के इतिहास, साहित्य और शक्ति पर भरोसा नहीं कर सकता। हाल का दूसरा उदाहरण एक छोटी सी घटना में पाया जाता है। यूरोपीय महासमर के बाद जब सुलह की बात हो रही थी, तब फ्रांस ने सीरिया पर अपना आधिपत्य क़ायम रखने के सबूत में यह भी कहा, कि उसने उस देश में बहुतेरे विद्यालय स्थापित कर दिये हैं। इस का अर्थ यही हो सकता है, कि फ्रांस ने मानसिक आधिपत्य जमाना आरम्भ कर दिया है, इसलिए उसे राजनीतिक आधिपत्य भी प्राप्त करने का हक़ हो गया। इसीलिए विजित जातियों ने स्वराज्य के संग्राम में पहले विजेता के मानसिक आधिपत्य से अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया है। इसके उदाहरणस्वरूप हंगरी और आयर्लैण्ड के इतिहास मौजूद हैं। हंगरी युरोप का एक देश है, जो आष्ट्रिया के अधीन हो गया था। यों तो दोनों देशों ने एक दूसरे के साथ मिलकर बराबरी का दरजा रखते हुए एक राजा के आधिपत्य को स्वीकार किया था, पर राजधानी आष्ट्रिया के विएना नगर में होने के कारण और हंगरी के देश-प्रेम के अभाव के कारण आष्ट्रिया ने हंगरी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था, और जब कुछ हंगरी के स्वदेश-प्रेमियों ने आष्ट्रिया के विरुद्ध षडयंत्र किया, तब उसके नेता फांसी पर लटका दिये गये; पर कुछ लोगों ने हंगरी की जातीयता और राष्ट्रीयता की याद को कायम रखा और जब १८३३ ई० में वहां की महासभा की बैठक हुई, तब एक ऐसी घटना हुई जिस का प्रभाव हंगरी के इतिहास पर बहुत पड़ा। उस महासभा में हंगरी के एक धनी नवयुवक ने उठकर मातृभाषा में वक्तृता दी। उसके अपने देशी भाइयों ने, जिन्होंने आष्ट्रिया की संगत में पड़कर अपने राष्ट्रीय भाव को बिल्कुल खो दिया था, उसका तिरस्कार करना आरम्भ कर दिया और उसकी इस धृष्टता का कारण उसकी कम उमर को बताया; पर जब फिर दुबारा अवसर आया, तब वह नवयुवक फिर

४

भी अपनी मातृ-भाषा में बोलने का अपराधी हुआ। इसका फल यह हुआ, कि वह उसी समय से जनता की आँखों में श्रद्धास्पद हो गया। बहुतेरे उसकी इस ढिठाई से डर गये, बहुतेरों के हृदय में जातीयता के भाव जाग्रत हो गये, पर मातृभाषा के उस अनोखे प्रेमी जेकेनी ने राजनीतिक नेतृत्व अपने हाथों में नहीं लिया। उसने हंगरी की शिक्षा, शिल्प, विज्ञान और साहित्य को ही पुनरुज्जीवित करने का भार अपने ऊपर लिया और जो कार्य जेकेनी ने अपनी मातृभाषा का उद्धार करके उसके द्वारा आरम्भ किया था, वह उस समय के राजनीतिक नेता डोक की चतुरता और दृढ़ता से असहयोग द्वारा हंगरी में कुछ दिनों के बाद पूरा किया। जनता की ओर से दो मांगें पेश की गयीं, एक तो यह कि हंगरी के निवासियों से उतना ही कर लिया जाय, जितना आष्ट्रिया के निवासियों से लिया जाता है, और दूसरा यह, कि हंगरी की भाषा को भी राज्य-कार्य में स्थान दिया जाय। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि उन्होंने अपनी भाषा के महत्व को कितना ऊंचा समझा था। और इसीलिये कहा गया है, कि पृथ्वी की किसी भी दूसरी जाति के सम्बन्ध में यह सचाई के साथ नहीं कहा जा सकता, कि उसकी आत्मा उसके साहित्य में लिप्त है, जैसा कि मैगियार (हंगरी जाति) के विषय में। और अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता बचाये रखने की चेष्टा सर्वदा अपनी मातृभाषा और साहित्य की महत्ता के साथ ही अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रखती है। जिस समय हंगरी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में लगा हुआ था, उसी समय उसके कवियों और नाटककारों ने उत्तमोत्तम ग्रन्थ रचे। उसके वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक खोज और अन्वेषण से विज्ञान की सीमा बढ़ायी और ऐतिहासिकों ने खोज कर इतिहास लिखा जिसका फल यह हुआ कि राष्ट्रीयता जागरित हुई और देश का उद्धार हुआ।"

इसी प्रकार आयर्लैंण्ड का इतिहास भी यही बताता है, कि मानसिक स्वतंत्रता और स्वाधीन विचार ही बाह्य राजनीतिक स्वतंत्रता के कारण हो सकते हैं। इसलिये विजित और पतित जातियों का

अपने को स्वतंत्र और उन्नत बनाने के लिये पहला काम यही होना चाहिये कि वे अपनी मानसिक स्वतंत्रता, विचार-स्वतंत्रता और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लें। इसके लिए विजित जाति विजेता जाति के आचार-व्यवहार, रहन-सहन, भाषा और साहित्य के आधिपत्य से अपना छुटकारा करा ले और जब तक अपने इतिहास. साहित्य, धर्म और रीति में श्रद्धा तथा प्रेम न हो, तबतक उस सच्ची जातीयता का बीजवपन नहीं हो सकता। आयर्लैंएड के हितचिन्तकों ने इस तत्त्व को अच्छी तरह समझ लिया था और गेलिक-प्रचारिणी सभा स्थापित करके अपने साहित्य तथा भाषा को उन्नत करने का प्रयत्न किया। इस गेलिक-प्रचारिणी सभा में सब प्रकार के विचार वाले सम्मिलित हुए। सभों ने उसे उन्नत करना अपना कर्त्तव्य समझा और आयरिश जाति के पुनरुद्धार के लिये आयरिश भाषा का पुनरुद्धार आवश्यक माना। इस सभा ने अपना मुख्य उद्देश्य आयरिश भाषा की रक्षा, आयरिश साहित्य का पठन-पाठन और आयरिश-भाषा के भाण्डार को पूर्ण करना रखा। इसका सिद्धान्त है कि जातीय जागृति मातृ-भाषा-प्रचार के बिना नहीं हो सकती। टौमस डेविस ने कहा था:—

"मातृ-भाषा-हीन जाति, जाति नहीं कही जा सकती, मातृ-भाषा की रक्षा देश की सीमा की रक्षा से भी अधिक आवश्यक है। क्योंकि यह पर्वत और नदी से भी अधिक बलवती है। जबतक भाषा आयरिश रहेगी, हृदय और मर्म भी आयरिश रहेगा। यह निश्चय जान रखो, कि आयरिश भाषा-भाषी आयर्लैंएड सर्वदा स्वतंत्र रहेगा। क्या तुम जानते हो, कि हमारी मातृ-भाषा क्या है? यह निर्जीव शब्दों का कोष भी है, अपरिचित चिन्हों का भाण्डार भी है, यह जाति के जीवन की साक्षात् मूर्ति है, यह जातीय शक्ति की वह प्रतिमा है, जो जाति के विचारों को और उसके हृदय-स्थित भावों को सुरक्षित रख कर उन्हें दूसरों पर प्रकट करती है। हमारे इतिहास, विचार और प्राचीन साहित्य-भाण्डार की यह कुञ्जी है। इससे भी अधिक यह उस प्रभावशाली साहित्य का दिग्दर्शन

कराती है, जो माननीय विचार और प्रबल वासनाओं से परिपूर्ण हैं। हा! उसी को हम भुलाना चाहते हैं! वास्तव में, आयर्लैण्ड का भावी साहित्यिक और मानसिक गौरव मातृ-भाषा के भविष्य पर ही निर्भर है।

* * * * * *

हमारी संतान के लिये मस्तिष्क की स्फूर्ति को वढ़ाने का उपाय मातृ-भाषा के अध्ययन से वढ़ कर दूसरा नहीं।

* * * * * *

यह भाषा हृदय को उत्तेजित करती है, मन को दृढ़ बनाती है, आत्मा को शुद्ध रखती है।

* * * * * *

इसके मनन से विचार ऊंचे होंगे, मन और आत्मा में बल आयेगा।

(क्रमशः)

कविवर नन्ददास

[ले०—श्री रामवहोरी गर्ग, विशारद]

'सम्मेलन-पत्रिका' की गत आषाढ़—श्रावण, संवत् १९८० वि० की संयुक्त-संख्या में श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' महाशय द्वारा लिखित 'कविवर नन्ददास और उनकी कविता' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें लेखक ने अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि महात्मा नन्ददास की जीवनी की आवश्यक एवं व्यापक घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए उनकी कविता पर भी विचार किया है। महात्मा नन्द-दासजी पहुँचे हुए संत तथा उच्चकोटि के कवि थे। उनके विषय में 'और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया' प्रसिद्ध ही है। उनका भ्रमरगीत

हिन्दी-काव्याकाश के सूर्य महात्मा सूरदास के टक्कर का है, कोई कोई तो इनके 'भ्रमरगीत' को श्रीसूरदासजी के 'गीत' से बढ़ा-चढ़ा मानते हैं। 'भ्रमर गीत' के अतिरिक्त नन्ददासजी की रास पंचाध्यायी, अनेकार्थ मंजरी यह दो उच्चकोटि के ग्रंथ साहित्य-संसार को अभी तक प्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई ग्रंथ उक्त महापुरुष की लेखनी द्वारा प्रसूत बताए जाते हैं, परन्तु अभी तक खोज में वे मिले नहीं। देखें, कब उनके दर्शन का सौभाग्य होता है!

श्रीयुत निर्मल महाशय ने अपने उपरि उल्लिखित लेख में 'भाव समानता' नामक शीर्षक के अन्तर्गत नन्ददासजी का अन्य कवियों से भाव-सादृश्य दिखलाया है। यद्यपि यह सृष्टि परिवर्तनशील है, इसकी प्रत्येक वस्तु में काल-क्रम के अनुसार सदा कुछ न कुछ परिवर्तन होता ही रहता है, परन्तु तो भी यदि हम इस समय संसार की अन्य वस्तुओं की ओर से थोड़ी देर के लिए अपना ध्यान हटाकर केवल साहित्य-संसार का ही ध्यान करें, तो यह कहना ही पड़ेगा कि यदि सच पूछा जाय तो इसमें बहुत कम परिवर्तन हुआ है और हो रहा है। यह दूसरी बात है कि कभी लोगों का ध्यान काव्य के किसी विशेष अंश की ओर रहता है, तो थोड़े ही दिन बाद उनकी रुचि दूसरी ओर झुकती है। वास्तव में, जो कुछ वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों अथवा पुराणों में सहस्रों वर्ष पूर्व लिखा जा चुका है वही क्या संस्कृत, क्या हिन्दी, क्या बंगला क्या मराठी या अन्य भारतीय भाषाओं में कुछ हेर-फेर के साथ नये कवियों द्वारा संसार के सम्मुख एक के बाद दूसरा उपस्थित किया जाता है। कहा जा सकता है कि इनके पश्चात् की कृति में नई सूझ बहुत कम पाई जाती है। किसी ने लिखा भी है 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'। यदि यह कथन अक्षरशः सत्य नहीं माना जा सकता तो अधिकांशतया सत्य है। अस्तु।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि कोई भी कवि अपने पूर्ववर्ती कवि या लेखक के भावों का, अपने काव्य में, उपयोग कर सकता है, न कि

अपने पश्चात् आविर्भूत होनेवाले कवि के विचारों का ! श्रीनिर्मल जी ने 'पत्रिका' के ४६२ पृष्ठ पर लिखा है:—

........"अब जिन महाकवियों ने कविवर नन्ददासजी के काव्य का भावापहरण किया है, पाठकगण उनका भी मुलाहिजा फरमावें।" इसके बाद आपने श्रीनन्ददासजी की रास-पंचाध्यायी की तीन भिन्न भिन्न स्थानों से आकृष्य पंक्तियों से मिलती हुई गोस्वामी तुलसीदास-विरचित श्रीरामचरितमानस की तीन चौपाइयाँ उद्धृत कर यह दिखाने का प्रयास किया है कि गोस्वामीजी ने नन्ददासजी का भावापहरण किया है। यदि यह बात वास्तव में सत्य होती तो कोई हानि न थी, क्योंकि गोस्वामीजी का 'मानस' तो उन्हींके कथनानुसार "नानापुराण निगमागम........" का भाषा में निचोड़ मात्र है। पर मेरी समझ में यह नहीं आता कि (प्रसिद्ध एवं मान्य ऐतिहासिक विद्वान् मिश्रबन्धु-त्रय के अनुसार) संवत् १६२३ में जन्म ग्रहण करनेवाले नन्ददासजी के भाव संवत् १५८६ में आविर्भूत गोस्वामी तुलसीदास ने किस प्रकार अपहरण किए ! गोस्वामीजी ने स्वयं रामचरितमानस के प्रथम सोपान में लिखा है—

"संवत सोरह सौ इकतीसा, करौं कथा हरि पद धरि सीसा"

तो क्या संवत् १६३१ में आठ वर्ष की आयुवाले नन्ददासजी अपनी अत्यंत प्रतिभापूर्ण 'रास-पंचाध्यायी' निर्माण कर चुके थे ? यह सम्भव नहीं। इससे तो उलटे नन्ददासजी ही गोस्वामी जी की छाया पर पंचाध्यायी की उद्धृत पंक्तियां लिखनेवाले ठहरते हैं।

अच्छा हो, यदि लोग ऐसी निर्मूल बातें लिखने के पूर्व ऐतिहासिक रीति से भी उस बात पर विचार कर लिया करें, जिसे वे संसार को बताने जारहे हों। इनसे भ्रम फैलने की आशंका होती है।

कोकनाडा-सम्मेलन के प्रस्ताव

कोकनाडा-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए:—

१—यह सम्मेलन श्रीमुन्शी देवीप्रसादजी मुंसिफ़, श्री० पंडित प्रतापनारायणजी वाजपेयी, श्री० पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र, श्री० प्यारेलालजी मिश्र वार-एटला; श्री० कोमाराजु लक्ष्मणराव एम. ए. राष्ट्रभाषा-प्रेमियों की मृत्यु पर महान् शोक और उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करता है।

सभापति की ओर से।

२—यह सम्मेलन आन्ध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक प्रान्तनिवासियों से अनुरोध करता है कि वे अपने बालकों को अपनी मातृभाषा के साथ साथ स्कूलों में या घर पर राष्ट्रभाषा हिन्दी के भी पढ़ाने का प्रबन्ध करें।

प्रस्तावक—श्री रंगैया। अनुमोदक—श्री कृष्णवर्मा ऐयङ्गर। समर्थक—श्री बाबू राधामोहन गोकुलजी।

३—यह सम्मेलन मैसूर और हैदराबाद-विश्वविद्यालय तथा आन्ध्र देश के भावी विश्वविद्यालय के अधिकारियों से प्रार्थना करता है कि वे अपने पाठ्यक्रम में हिन्दी को भी स्थान दें और उसके पठन-पाठन का उचित प्रबन्ध करें।

प्रस्तावक-श्रीनागेश्वरजी। अनुमोदक—श्री प्रो० जगतनारायणलाल।

४—(अ) यह सम्मेलन अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा से प्रार्थना करता है कि देश की पूर्ण स्वतन्त्रता को लक्ष्य में रख और अंग्रेज़ी भाषा की गुलामी को तुरन्त छोड़ राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी में अपनी कुल कार्रवाई करने का प्रबन्ध करे, और इस प्रकार देश के इस कलङ्क को मिटाकर यह भाषासम्बन्धी स्वतन्त्रता के विषय में देश के लिये पथप्रदर्शक बने।

(६) यह सम्मेलन अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सभी सदस्यों से प्रार्थना करता है कि वे जिस प्रकार खद्दर पहनना अपना कर्तव्य समझते हैं, वैसे ही राष्ट्रभाषा हिन्दी का व्यवहार भी अपना कर्तव्य समझें।

प्र० --श्रीरामदास गौड़ (काशी)। अनुमोदक-श्री प्रो० जगतनारायणलाल।

५-यह सम्मेलन मद्रास प्रान्त की म्युनिसिपल, कौंसिलों, जिला-बोर्डों तथा अन्य संस्थाओं से अनुरोध करता है कि वे अपने स्कूलों में राष्ट्रभाषा हिन्दी को दूसरी भाषा के तौरपर पढ़ाने का प्रबन्ध करें। प्र०—श्रीनरसिंह राव, अनुमोदक—श्रीपति वेंकट नरसिंह माचार्य।

६-यह सम्मेलन दक्षिण प्रान्त की ज़िला तथा ताल्लुका कांग्रेस-कमेटियों से अनुरोध करता है कि वे उन संस्थाओं की सहायता करें, जिनका उद्देश हिन्दी (हिन्दुस्तानी) के प्रचार का है। प्रस्तावक-श्रीहरिहर शर्मा; अनुमोदक—श्रीरामानंद शर्मा; समर्थक—श्रीनागेश्वर रावजी।

७-यह सम्मेलन आन्ध्र, तामिल, नाड्डु, केरल और कर्नाटक के निवासियों से अनुरोध करता है कि वे अपने अपने प्रान्तमें राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार करने के लिए एक एक प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्थापित करने की व्यवस्था करें। प्रस्तावक-देशभक्त श्रीकोण्डावेंकटप्पैया।

८-पिछले छः वर्षों में सम्मेलन की ओर से दक्षिण भारत में प्रचार का जो कार्य हुआ है और जिस प्रकार दक्षिण भारतीय जनता ने उसका सहयोग किया है, उस पर यह सम्मेलन अपना सन्तोष प्रकट करता है, और अपने सब प्रचारकों तथा सहायकों को धन्यवाद देता है। प्रस्तावक-श्रीसुन्दरलालजी (मध्यप्रान्त)। अनुमोदक श्री पं० माखनलाल चतुर्वेदी।

कांग्रेस में प्रतिध्वनि

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है

कोकोनाडा कांग्रेस की स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री० कोण्डा वेङ्कटपय्या ने अपने हिन्दी भाषण में एक स्थल पर कहा है—

"इस बात की आवश्यकता सब ने स्वीकृत की है कि राष्ट्रीय एकता को दृढ़ बनाने और देश के विभिन्न भागों में बसे हुए लोगों के बीच व्यावहारिक सुविधा होने के लिये राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। इस बात को भी सब स्वीकृत कर चुके हैं कि हिन्दी को छोड़कर और कोई भाषा इसके लिये उपयुक्त नहीं। अतः यह स्पष्ट है कि जिन प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार नहीं है उनके अधिवासियों को हिन्दी सीखना चाहिये जिससे वे अन्यान्य प्रान्तों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकें, कांग्रेस की कार्यवाही को समझ सकें और उसमें भाग ले सकें।"

कांग्रेस की नियमावली में उचित संशोधन

(ले०—श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन)

[दिल्ली में, कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के अवसर पर, कांग्रेस के नियमों में संशोधन करने के लिये जो कमेटी बनाई गई थी, उसके श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन भी एक सदस्य थे। आप ने कोकोनाडा-कांग्रेस में कतिपय उचित संशोधनों के साथ हिन्दुस्तानी भाषा-सम्बन्धी जो संशोधन भेजा था, उसका अविकल अनुवाद नीचे उद्धृत किया जाता है।—सम्पादक]

सबसे अन्तिम, किन्तु मेरे विचार से सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन, जो मैं कांग्रेस की नियमावली में देखना चाहता हूं वह यह है कि कांग्रेस का भाषा सम्बन्धी नियम उसमें जोड़ दिया जाय। इस विषय पर वाद विवाद हो चुका है, यद्यपि कई वर्षों से कांग्रेस या विषय-निर्वाचिनी-समिति में इसकी चर्चा नहीं हुई है। मेरी सम्मति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि अब अंग्रेज़ी के स्थान में हिन्दुस्तानी को कांग्रेस की नियमित भाषा बनाने के लिए स्पष्ट रूप से उद्योग होना चाहिये। वास्तव में, महात्मा गांधीजी तो अमृतसर कांग्रेस के ही अवसर पर इस बात का विचार कर रहे थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव का मसविदा ही तैयार कर लिया था। उनका असली मसविदा मेरे पास था, किन्तु इस समय मुझे खोजने से नहीं मिलता है। वह मसविदा मैंने अपने मद्रास प्रान्त के मित्रों को दिखाया था। उनकी राय थी कि जो कुछ दिनों से मद्रास प्रान्त में लोगों को हिन्दुस्तानी भाषा से परिचित कराने के लिए आन्दोलन हो रहा है, वह अभी कुछ दिनों तक और चलाया जाय और तब इस प्रकार का प्रस्ताव कांग्रेस के सामने उपस्थित किया जाय, इसलिए प्रस्ताव उस समय उठा लिया गया था। किन्तु उसी बैठक में कांग्रेस की नियमावली में संशोधन करने के लिए एक समिति बनायी गई थी। महात्माजी उस समिति के प्रमुख सदस्य थे और उन्हीं के कहने से

समिति का जो प्रस्तावित मसविदा प्रकाशित किया था, उसमें इस विषय का एक बहुत स्पष्ट प्रस्ताव रखा गया था। किन्तु जब नागपुर की विषय-निर्वाचिनी-समिति के सामने नियमावली का प्रस्तावित मसविदा उपस्थित हुआ, तो विषय-निर्वाचिनी-समिति ने मुख्य मुख्य बातों पर विचार करके इस विषय को बाहरी सदस्यों की एक छोटी सी उपसमिति बनाकर उसके हवाले कर दिया। इस उपसमिति की बैठक, जिसका मैं भी सदस्य चुना गया था, विषय-निर्वाचिनी-समिति की बैठक समाप्त होने के बाद प्रारम्भ हुई थी, और जहां तक मुझे स्मरण है यह अर्द्ध रात्रि के उपरान्त का समय था। विषय-निर्वाचिनी-समिति के लम्बे चौड़े वादविवाद के बाद सब लोगों की यही मंशा थी कि अब कोई नया विवादग्रस्त विषय न छेड़ा जाय। श्रीयुत केलकर और अन्य दो एक सज्जनों की यह राय थी कि भाषा का प्रश्न इस समय उठाना ठीक नहीं है, और महात्माजी ने उनकी बात मानली। यह तो सब को मालूम है कि असहयोग और कांग्रेस के उद्देश्य प्रस्तावों की ओर ही उस चिरस्मरणीय अधिवेशन का सारा ध्यान लगा हुआ था, और अन्य सब विषय एक प्रकार से गौण समझे गये थे, जिनका बाद में निर्णय हो सकता था। इसलिये जब पुनः भाषा सम्बन्धी प्रश्न विषयनिर्वाचिनी समिति के सामने प्रस्तुत किया गया था तो उसमें से यह निकाल दिया गया। इसी मस विदे को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था और अब तक उसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है।

किन्तु इस बीच में कांग्रेस की कार्यकारिणी-समिति ने इस सम्बन्ध में कुछ उद्योग किया है। उसने, अपने बम्बई के २२, २३ नवम्बर के अधिवेशन में, भाषा के सम्बन्ध में एक मन्तव्य स्वीकृत किया था। यह विषय दिल्ली के ४, ५ नवम्बर की कांग्रेस कमेटी के प्रस्तावानुसार सौंपा गया था। मैं कार्यकारिणी-समिति के कार्यविवरण की एक प्रतिलिपि नत्थी कर रहा हूँ। इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने के लिए, जहाँ तक ज्ञात है, किसी ने ध्यान नहीं दिया। अतएव मैं ज़ोर देकर यह राय प्रकट करना चाहता हूं

कि इसमें थोड़ा सा परिवर्तन करके, जो अब आसानी के साथ किया जा सकता है, इस विषय का कांग्रेस की नियमावली में एक नियम बना देना चाहिए। मेरी सम्मति में उसकी शब्दावली कुछ कुछ इस प्रकार की होनी चाहिये—

६६—कांग्रेस की कार्यवाही में, और कांग्रेस की विज्ञप्तियां और कार्यविवरण प्रकाशित करने में साधारणतः हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया जायगा, जो दोनों—देवनागरी और फ़ारसी—लिपि में लिखी जा सकती है। और साधारणतः सब कार्य हिन्दुस्तानी भाषा के द्वारा किये जायँगे, किन्तु विशेष-विशेष परिस्थिति में प्रान्तीय भाषाओं और अंग्रेज़ी का भी प्रयोग किया जा सकेगा। प्रान्तीय कार्य और प्रान्तीय प्रकाशन या तो उसी प्रान्त की भाषा में या हिन्दुस्तानी में किया जायगा।

कविता-कौमुदी

[प्राप्ति-स्वीकार]

प्रिय त्रिपाठी जी,

सादर प्रेमाभिवादन स्वीकृत हो।

यथा समय 'कौमुदी' 'टूटती हुई आशा' को तोड़ने के लिए आपके 'रिक्मेण्डेशन' के साथ आ पहुँची थी, परन्तु उस समय काम की अधिकता से समझिये वा मानसिक प्रतिक्रियाओं के संघर्षण से समझिये, भली भांति उसका स्वागत न कर सका। आशा है कि, मेरी परिस्थित को कवि-सुलभ-भावुकता ने क्षमादान की पात्री समझा होगा। अस्तु;

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक वायुमण्डल में जिन्हें कवि समझा जाता है, यदि वे ही कवि हैं तो कदाचित् ही किसी जन्म में हम विश्व-साहित्य का निर्माण करने का अवसर पावेंगे। त्रिपाठी जी ! हमारे दूषित समाज ने 'कवि' क्या चीज़ है और 'कवि का हृदय' क्या चीज़ है, कदाचित् इसका अनुभव नहीं किया—हमारा साहित्य अपनी इसी हृदय-हीनता का फल भोग रहा है और तबतक भोगेगा,

जबतक 'कवियों' के हृदय, उनके कलेजे, अपने रुदन से, आंसू से, आह से, हमारी आंखों में विश्वजनीन करुणा की शराब न भर देंगे।

मैं जो भावनाएँ आपके सामने पेश कर रहा हूं, उसे यदि सम्मेलन के प्लेट-फार्म पर, या किसी पत्रिका द्वारा जनता के सामने रखता तो कोई कहता, इसका दिमाग़ फिर गया है, कोई कहता अहंकारी है, कोई कुछ कहता, कोई कुछ, किन्तु मैंने आपकी रचनाओं में सहृदयता की एक झलक देखी है, जिससे मुझे विश्वास सा हो गया है कि इस 'पागलपन' को आप 'हृदय की आँखों' से देख सकते हैं और देखेंगे उसको हँसी में न उड़ा देंगे। औरों से न कहकर आपसे कहने का यही एक प्रधान कारण है।

कविता की परख के पूर्व, सौन्दर्य की छानबीन करने से पहले, उचित है कि कवि का अर्थ समझ लिया जाय, सौन्दर्य का तत्व हृदयंगम कर लिया जाय। किसी चीज़ के विषय में राय देने के पहले यह समझ लेना 'अहम ज़रूरी'—अत्यावश्यक—है कि वह है क्या बला ?

कवि पहिचानने का साधारणतः कोई सुलभ साधन नहीं है, तो भी विचार के साथ उसकी परीक्षा के लिए एक कसौटी निश्चित की जा सकती है। हिन्दी साहित्य के विद्वानों में दो मत हैं। कुछ लोग कविता को हिन्दी के प्राचीन कवियों के साँचे में ढालना चाहते हैं, और कुछ उपदेश दिलाना, सामयिकता के साँचे में ढालना चाहते हैं, उससे देशदशा के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने की सलाह देते हैं पर ये दोनों रायें अपूर्ण और अनुचित हैं। विश्व में सदैव एक प्राकृतिक प्रवाह बहा करता है। जो चीज़ें उस धारा के अनुकूल होती हैं, वे तो संसार में रह जाती हैं और जो हठ करके उसका अतिरोध करती हैं, वे नाश हो जाती हैं। इसीलिए हम देख रहे हैं कि अधिकांश में इन दोनों प्रकार के विचारों का हमारे साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं है। हिन्दी में अब जो भावुक कवि पैदा हो रहे हैं, वे विश्व प्रवाह के अनुकूल जा रहे हैं, वे निश्चय ही अपनी प्रतिभा में एक दिन टेनीसन और टैगोर का विकास कर सकेंगे। 'कविता कौमुदी' के कवियों में से, 'जयशङ्कर' 'वियोगीहरि' और 'माखनलाल' के अतिरिक्त किसी से मुझे ऐसी आशा नहीं है।

कवि, उपदेशक नहीं, 'प्रकृति के मूलरूप एवं उसके विकृत भाव-विकार का चित्रकार' है। वह शंकर नहीं, चैतन्य है; वह कबीर नहीं, मीरा है। उसके लिए

किसी का कोई बन्धन नहीं; वह सामयिकता का दास नहीं। वह व्यापक और अनन्त प्रकृति का चित्रकार है, अतएव उसकी सीमा भी व्यापक और अनन्त है।

कविता की जान वा कवि की प्रतिभा, भावनाओं को संगठित और स्वाभाविक रूप से चित्रित कर देने की शक्ति ही है। इसी मैदान में आकर कवियों की प्रतिभा का पता चलता है, उनके जौहर खुलते हैं। एक सच्चे कवि की सर्वोत्कृष्टता इसमें नहीं कि वह सूक्ष्म दार्शनिक बातें कहे, नूतन उपमाएँ निकाले अथवा चुभती हुई नई सूक्तियों का आविर्भाव करे; उसकी जाँच तो उस मैदान में आकर होती है जहाँ वह भावनाओं को उनके वास्तविक रूप में, ज्यों का त्यों, 'पेन्ट' करता है, जहाँ वह नित्य आँखों के सामने नाचते रहने पर भी समझ में न आने वाले दृश्यों का चित्र खींचता है, जहाँ मानवता वा दानवता, क्रोध, द्वेष, विषाद, प्रेम, आकर्षण इत्यादि भिन्न भिन्न भावनाओं को बिना घटाये-बढ़ाये—परिवर्तन किये—चित्रित करता है। कवि का आदर्श नूतन उपमाओं वा सूक्तियों के आविष्कार में पूरा नहीं होता, वह वहाँ जाकर अपनी सीमा का उल्लंघन करता है, जब कवि एक दम 'प्रकृति का चित्रकार' हो जाता है। कविता का आदर्श है 'कागज़ पर कलेजा निकाल कर रख देना' अथवा और सभ्य शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि 'इस क्षुद्र मांसपिण्ड में अन्तर्हित अनन्त भावनाओं के घातप्रतिघात से बने हुए 'रूपहीन' अन्तस्तल को उसके सजीव रूप में कागज़ पर चित्रित कर देना'। यही संसार का सब से कठिन कार्य है, जो कवि को करना पड़ता है।

विश्व के परमाणु-परमाणु में जो असीम आनन्द छलका पड़ता है, हृदय से निरन्तर स्रोत में उसको गाना ही कवि की कविता है। अनन्त जगत् के रोम रोम में संगीत की जो लहर बह रही है, उससे जब कवि की यह कविता टकराती है तो चोट खाई हुई वीणा के समान विश्व का तार तार झंकार कर उठता है कि 'यह कविता है'।

कवि का सम्बन्ध मस्तिष्क से उतना नहीं जितना हृदय से है। संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, उन सब से एक न एक ध्वनि निकलती है, कविता की भी एक ध्वनि है और वह है इन सब ध्वनियों की, हृदय की झंकार से, 'हारमनी' (Harmony) करना। जो कवि हिन्दी-साहित्य के रत्न कहे जाते हैं, उनमें से कितनों ने इस कार्य को पूरा किया है ?

जो लोग अपना सर चकराकर, रात दिन नींद हराम करके नई सूक्तियों की सृष्टि करते हैं, वे कवि नहीं हैं, ऐसा ही मेरा विश्वास है। मेरा ही नहीं, हिन्दी

वालों को छोड़ समस्त संसार की भावनाएँ मेरे ही विश्वास के अनुकूल जा रही हैं।

सृष्टि की निरन्तर वृद्धि होती रहती है। सीमा में ही असीम बनजाने के लिए मनुष्य जैसे छटपटाया करता है, वैसे ही विश्व की प्रत्येक वस्तु जान में वा अनजान में निरन्तर अपना विकास करती रहती है। कविता का भी विकास हुआ है, उसमें भी परिवर्त्तन हुआ है, बड़ी भारी तरक्की हुई है। यदि 'केशव' का पाण्डित्य ही कविता है, तो बीरबल का दिमाग़ भी कवि ही है। कविता, हिसाब लगाना नहीं है, सोचना नहीं है, वह कुछ दूसरी चीज़ है, जो अभी तक हम नहीं देख सके थे। हर्ष की बात है, हिन्दी भी धीरे धीरे उसकी ओर बढ़ रही है।

यह है कवि की परिभाषा और कविता का उद्देश्य। मुझे समय होता तो इस पर कुछ अधिक विस्तार से लिख सकता, पर अनेक आवश्यक कार्य हैं, अतएव इस नियम पर आज यहीं तक।

इस प्रकार संसार जिन्हें कवि कहकर आजकल सम्बोधित करता है और मैं भी जिन्हें कवि समझता हूं, उनकी थोड़ी झलक कविता-कौमुदी के एकाध कवियों में है, अन्यथा इनमें कोई भी कवि शब्द से अभिहित किए जाने योग्य नहीं।

यह तो हुई कवि और कविता विषयक बात। यह मैंने "कौमुदीकार" पं० रामनरेश त्रिपाठी को नहीं, 'कवि-हृदय' त्रिपाठीजी को लिखा है। कौमुदी के विषय में आगे लिखता हूं।

आपतो सम्पादक हैं, अतएव मुझे आपको कुछ उलाहना देने का अधिकार नहीं है, इसी लिए ऊपर मैंने लिख दिया है कि आपको ये बातें 'कौमुदीकार' की दृष्टि से नहीं लिखी गई है। कौमुदी पर सम्मति यों हैं—

"कौमुदी को देखकर चित्त-चकोर का नाच उठना स्वाभाविक ही है। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवियों की चुनी हुई रचनाएँ एकत्र करके आपने हिन्दी-साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। चुनाव अच्छा और सुरुचिपूर्ण हुआ है। आपने पक्षपात से दूर रह कर इसको लिखने की जो चेष्टा की थी, उसमें बहुत अधिक मात्रा में कृतकार्य हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं। दो एक बातों की शिकायत होते हुए भी कहना ही पड़ेगा कि संग्रह सब प्रकार से उत्तम, निर्दोष और मनोहर हुआ है। अच्छा होता, यदि हिन्दी के आधुनिक काव्य-विकास पर एक

आलोचनात्मक प्रस्तावना भी लगा दी गई होती। भगवान् करे, आपकी कौमुदी कविता की ओर लोगों का हृदय खींच सके।"

थोड़े में, इसे ही मेरी सम्मति समझिये। शिकायत क्या है, सो मित्रतापूर्ण हृदय की भावनाओं के साथ आपसे कहता हूं। जैसा कि पहले मैं लिख चुका हूं इन कवियों में से बहुत कम में 'कविता' की 'चीज़' मुझे मिली है। हरिश्चन्द्र की रचनाओं में, 'हरि औध' के प्रियप्रवास में, 'सनेही' (त्रिशूल नहीं) की स्नेहमयी सूक्तियों में, शिवाधार पाण्डेय के 'समर्पण' में, जयशंकर 'प्रसाद' के 'झरने' में माखनलाल की फुटकर रचनाओं में, 'वियोगी हरि' के साहित्य-विहारादि में तथा आपके 'मिलन' एवं 'पथिक' में मैंने कुछ पाया है। ये रचनाएँ बहुत कुछ 'कविता की 'हम शक्ल' हैं, और मैं तो इन्हीं लोगों को कवि कहने के लिए वाध्य हूं।

जिन्हें दर्द भरा दिल नहीं मिला है, जिनका हृदय दुनिया की दानवता और हृदय-हीनता से एक बार टूक टूक नहीं हो चुका है, जो दूसरों के दुख में रो और अपने दुख में हँस नहीं सकते, वे कवि नहीं है। जो शेर की दहाड़ के सामने, सृष्टि के घोर विनाशकाल में, वा अपने घर को जलता देखकर भी आनन्द के आधिक्य से मुस्करा उठते हैं, वे ही वस्तुतः कवि हैं और हो सकते हैं। ग्रंथ लिखने, न लिखने से कवि कोई नहीं हो जाता।

समालोचक की दृष्टि से नहीं, एक मित्र की नाईं, Publicly न हीं, व्यक्तिगत रूप से मैं आपसे पूछता हूं कि आपने 'मतवाला' के 'निराला' (सूर्यकांत त्रिपाठी) को क्यों नहीं स्थान दिया ? उनकी 'अनामिका' किसी भी कवि की भावाराधिनी कविता से टक्कर ले सकती है। 'कौमुदी-कुंज' में उद्धृत 'तुम और मैं', 'मतवाला' के गतांकों में निकली हुई रचनाएँ, छन्दों के नियमों को तोड़ने पर भी, जो कुछ हैं, वे तो यदि सच पूछिए तो, मुझे श्रीधर, शंकर और 'दीन' के पास भी नहीं मिलीं। सुभद्रा की 'चलते समय' कविता में जो 'सरूर' है, वह समग्र कविता कौमुदी में भी मुझे कहीं न मिला। पत्रिकाओं में समय समय पर 'परन्तप' नाम के किसी अच्छे कवि के दर्शन हो जाते हैं। 'नयन' का 'प्रेम भिखारी' और 'मन मोर' ही मेरी समझ से उसे अमर कर जायँगे। भगवतीचरण वर्मा के 'एकान्तरोदन' ने कितने ही बार मुझे रुलाया है। 'नवीन' (प्रभा-सम्पादक) की रचनाओं में भी 'कविता' की

काफ़ी सामग्री मौजूद रहती है, फिर ये बेचारे, केवल छोकरे समझ कर, क्यों निकाल दिये गये ? इन लोगों की रचनाओं की पंक्ति-पंक्ति से विदग्धता फूट फूट कर बह निकली है, फिर भी हृदय में स्थान देकर पूजा किए जाने योग्य इन विमल विभूतियों को 'दूध की मक्खी' समझ कर क्यों फेंक दिया गया है ?

मैं आप की आलोचना नहीं कर रहा हूं। एक मित्र का दूसरे पर जो अधिकार समझा जाता है उसी के प्रवाह में पड़ कर ये प्रश्न पूछे हैं। सच पूछिये तो इन उभरते हुए कलेजों की उपेक्षा देख कर मेरा हृदय रो रहा है। प्रकृति के निखरे हुए यौवन की भाँति इनके हृदय की जो विदग्धता है, यदि स्वार्थ से सनी हुई उपयोगिता और ख़रीद-फ़रोख़्त की हृदय-हीन दृष्टि से देख कर हम उसे पामाल करते हैं, तो उतना ही पाप करते हैं जितना कि एक खिलती हुई जूही की कली तोड़ कर माली का स्वार्थ से सना हुआ निर्दय हाथ करता है, अथवा टटके पारिजात पुष्प के ढेर को कुचलनेवाला एक अल्हड़ जन्तु करता है।

असल बात तो यह है कि हिन्दी-संसार ने इन कोमल कलेजों को बड़ी बेदरदी से हलाल किया है। हिन्दी के प्रकाशक, हिन्दी के समालोचक, सम्पादक सभी ने उनकी उपेक्षा की है, जिसके लिए वे एक न एक दिन अवश्य रोवेंगे। आज यहीं तक।

मेरे पत्र से यदि अप्रसन्न हुए तो मैं समझ लूँगा कि आपने मेरा भाव नहीं समझा।

सौरभ कुटी, काशी
२७। १२। २२.

आपका
रामनाथलाल 'सुमन'
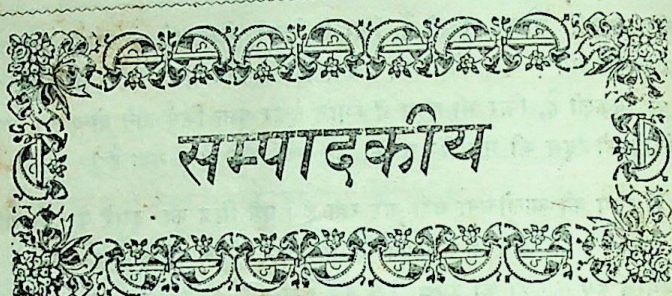
सम्मेलन का विशेष अधिवेशन

कोकोनाडा में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का विशेष अधिवेशन सोत्साह और सानंद समाप्त हो गया। सौम्यमूर्ति बाबू राजेन्द्र प्रसादजी अस्वस्थता के कारण वहाँ उपस्थित न हो सके। स्वागत-कारिणी-समिति ने देशभक्त जमनालाल बजाज को स्थानापन्न सभापति निर्वाचित किया। यह अच्छा ही हुआ। जमनालालजी का स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रभाषा-भक्ति किसी से छिपी नहीं है। आपने राजेन्द्र बाबू का ओजस्वी ललित भाषण पढ़ा और स्वयं भी राष्ट्रभाषा हिन्दी का महत्व लोगों को समझाया। अन्य भाषा-भाषी आन्ध्र प्रान्त में इस विशेष अधिवेशन का अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां पर हम सहयोगी "हिन्दी नवजीवन" का कुछ अंश उद्धृत करेंगे। सहयोगी लिखता है—

"………यह बड़े हर्ष का विषय है कि आज एक अन्य भाषा-भाषी प्रान्त अपने नगर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन करा रहा है। तामिल और तेलगू भाषा-भाषी सज्जनों का हिन्दी ही में भाषण देने का प्रयत्न बड़ा ही उत्साह को बढ़ानेवाला और प्रशंसनीय था। ……हिन्दी-प्रचारकों को सहस्रशः धन्यवाद! इस प्रान्त में हिन्दी का कल्पनातीत प्रचार हो गया है। आपको मुश्किल से ऐसा स्वयंसेवक मिलेगा जो अपने काम पुरता हिन्दी न समझता और बोल सकता हो।"

विश्वास है, सहयोगी का यह अवतरण पढ़ कर राष्ट्रभाषा-भक्तों का हृदय आनन्द से उद्वेलित हो जायगा।

चौदहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

बड़े ही हर्ष का विषय है कि आगामी अधिवेशन के सभापति पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय होंगे। उपाध्यायजी सिद्धहस्त, प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली लेखकों में से हैं। आपकी ब्रजभाषा की कविताएँ भारतेन्दु काल का स्मरण कराती हैं। आपके ब्रजभाषा के सहस्रों कवित्त अभी अप्रकाशित ही पड़े हैं। आपके सम्बन्ध में एक विलक्षण बात हमें यह दिखाई पड़ती है कि आप ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों पर ही समानरीति से सिक्का जमानेवाले हैं। भाषा और भाव दोनों पर ही आपका पूरा अधिकार है। क्लिष्ट से क्लिष्ट और सरल से सरल भाषा लिखने में आपका चातुर्य देखते ही बनता है। उदाहरणार्थ, प्रियप्रवास और ठेठ हिन्दी का ठाट सरीखी पुस्तकें उपस्थित की जा सकती हैं। आपकी खड़ीबोली की कविता में जो प्रसाद और माधुर्य की झलक दिखाई पड़ती है वह ब्रजभाषा के बिलकुल बहिष्कृत न कर देने के कारण है, और हमारी राय में ऐसा करना सर्वथा उचित है। गद्य और पद्य दोनों की भाषा एक नहीं हो सकती। इनकी भाषाओं में जो अन्तर है यही कविता की जान है। श्रद्धेय उपाध्यायजी जिस खूबी के साथ पद्यकाव्य लिख सकते हैं उससे कहीं अधिक चमत्कार उनके गद्य में दृष्टिगोचर होता है। वह साहित्य के सच्चे पारखी और काव्यरत्नों के असली जौहरी कहे जा सकते हैं।

इस वर्ष हिन्दी-संसार की दृष्टि पूज्य द्विवेदीजी पर थी। द्विवेदीजी की साहित्य-सेवा का परिचय कराना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। हम सब लोग उन्हें अपने हृदय के सर्वोच्च आसन पर बिठाने को तैयार हैं। स्वागत-कारिणी-समिति ने उनसे साभापत्य स्वीकार करने के अर्थ सानुनय आग्रह भी किया था।

किन्तु द्विवेदीजी ने अस्वस्थता प्रकट करते हुए इनकार कर दिया। हिन्दी संसार तो उन्हें सम्मेलन का सभापति मान ही चुका, भले ही वह पार्थिक शरीर से सभापति के आसन को सुशोभित न करें।

समस्त हिन्दी-संसार को श्रद्धेय उपाध्यायजी के सभापतित्व के संसर्ग से साहित्य-वाटिका में विहार करने का सुअवसर प्राप्त करना चाहिए।

कांग्रेस की नियमावली में राष्ट्रभाषा का आदर

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने में अब तनिक भी सन्देह नहीं रहा। आज यह सुनकर कि कांग्रेस की नियमावली में हिन्दी-हिन्दुस्तानी भाषा द्वारा कार्यवाही की जाय, हमारा हृदय-सागर, आनन्द के मारे, उद्वेलित हो रहा है। आज हम अपने लक्ष्य के बहुत ही समीप पहुँच रहे हैं। राष्ट्रीय महासभा ने राष्ट्र के हृदय की आवाज़ सुनकर न केवल राष्ट्रीय भावों का आदर किया है किन्तु उसने राष्ट्रीय ज्योति को सदा के लिए प्रज्वलित कर दिया है। इस कार्य का बहुत कुछ श्रेय हमारे सहृदयवर श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टंडन को दिया जा सकता है। आप का सदा से जिस तरह हो सका उस तरह यही लक्ष्य रहा है कि राष्ट्रीय भावों का प्रकाशन राष्ट्रभाषा द्वारा होना ही श्रेयस्कर है। इस वर्ष कांग्रेस की नियमावली के संशोधनों के लिए जो दिल्ली में, कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के अवसर पर, एक कमेटी बनी थी उसके सदस्यों में श्रीटंडनजी भी थे। आप ने अन्य उचित संशोधनों के साथ एक यह भी संशोधन भेजा था कि कांग्रेस की कार्यवाही हिन्दुस्तानी भाषा द्वारा हो। आप का यह प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। महासभा ने संशोधन पर यह मन्तव्य स्वीकृत किया है कि "महासभा की भाषा जहाँ तक हो सके हिन्दुस्तानी रखी जाय।" प्रारंभिक अवस्था में हमें इस मन्तव्य को स्वीकार कर लेना चाहिए। और कुछ दिनों बाद "जहाँ तक हो सके" यह शब्द-समूह, विश्वास है, निकाल

दिया जायगा, और महासभा की भाषा हिन्दी—हिन्दुस्तानी—हो जायगी।

हम राष्ट्रीय महासभा को इस मन्तव्य पर हृदय से बधाई देते हैं।

कौन्सिलों में हिन्दी

कौन्सिलों और एसेम्बलीका नवीन निर्वाचन हो चुका। बड़े हर्ष की बात है कि इसमें स्वराज्य-दल की अच्छी विजय हुई। अब सामने सच्चा काम है। हमें अब इस बात के बारबार दोहराने की आवश्यकता नहीं रही कि राष्ट्रीय भावों के जागरित करने के लिए राष्ट्रभाषा की कितनी अधिक आवश्यकता है। हमें यह सुनकर और भी अधिक आनन्द हुआ कि इस वर्ष कांग्रेस की नियमावली में हिन्दुस्तानी भाषा को स्थान मिल गया। हिन्दुस्तानी भाषा में हमारे देश के विधाताओं को पहले से ही काम-काज करना चाहिए था किन्तु उनकी समझ में यह ज़रूरी मसला न आया। अब कांग्रेस के आदेशानुसार उन लोगों को प्राणपण से इस महत्वशाली कार्य में लग जाना चाहिए। युक्त प्रान्तीय कौन्सिल की पहली बैठक में स्वराज्य दलवाले सदस्यों ने, राजभक्ति की शपथ लेते समय, बड़ी भूल की। केवल श्रीसङ्गमलालजी अग्रवाल (प्रयाग के सदस्य) को छोड़कर सभी ने अंगरेज़ी शब्दों में शपथ ली। हम बाबू संगमलालजी की इस दिलेरी पर उन्हें बधाई देते हैं! हम तो समझते हैं कि वह कौन्सिल में स्वराज्य दल की ओर से जाकर इतने में ही अपना कर्त्तव्य पालन कर चुके। उन्होंने यह भी कहा है कि वह सदा कौन्सिल में अपना भाषण हिन्दी भाषा में देंगे। कौन्सिल के, विशेषतः स्वराज्य-दल की ओर से निर्वाचित, सदस्यों को तो उनका अनुकरण अवश्य ही करना चाहिए। यदि स्वराजी महारथियों के पहुँचने पर भी कौन्सिल-भवन में अंग्रेज़ी की तूती बोलती रही तो हमारी राय में उनका वहां जाना और न जाना बराबर ही है। वे लोग वहां लच्छे-

दार अंग्रेज़ी बोलने को नहीं गये हैं, किन्तु देश की वास्तविक परिस्थिति का नौकरशाही को ध्यान दिलाने के लिए, अथवा उनके शब्दों में सुधार सुधारने के लिए वा उनको समूल नष्ट कर देने के लिए। यह महान् कार्य देशी लिबास और देशी ज़बान के द्वारा ही हो सकता है। यदि नौकरशाही हमारी बातें नहीं समझ सकती है, तो उसे तुरन्त हिन्दुस्तानी भाषा सीखना चाहिए। दस आदमियों के लिए हज़ार आदमियों को कोई ज़रूरत नहीं कि वे अपने भाव विदेशी भाषा में व्यक्त करें।

अन्ततः, प्रान्तीय और बड़ी व्यवस्थापक सभा के माननीय सदस्यों से हमारा यही अनुरोध है कि वे यथाशीघ्र वहां हिन्दी—हिन्दुस्तानी-भाषा द्वारा कठिन से कठिन अवसर पर अपना कर्त्तव्य पालन करें। हम चाहते हैं कि राष्ट्रभाषा-भक्त श्रीसंगमलालजी के उच्च आदर्श को लेकर सभी सदस्य हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग करें। और थोड़े ही समय में सरकार को यह दिखा दें कि हमें न तो तुम्हारे भावों की ही ज़रूरत है और न भाषा की ही, हम हिन्दुस्तानी हैं, हिन्दुस्तानी ज़बान बोलनेवाले और हिन्दुस्तानी रहन-सहन पर चलनेवाले हैं। क्या हमारी इस आशा को पूरा करनेवाले कुछ देश के रत्न राष्ट्रभाषा की महती परीक्षा में उत्तीर्ण होने की चेष्टा करेंगे?

"मिश्रबन्धु-विनोद"

हिन्दी-भाषा के प्रेमियों को यह जान कर कदाचित् प्रसन्नता होगी कि उपर्युक्त ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण निकालने का प्रबन्ध हो रहा है। इस ग्रन्थ को जितनी प्रतिष्ठा हिन्दी-संसार ने की, उसकी आशा हमें स्वप्न में भी न थी। दो तीन वर्ष से इसके नवीन संस्करण की मांग हो रही है। पर हमें इतना अवकाश ही न मिला कि आवश्यक घटाव-बढ़ाव एवं संशोधन करके उसे प्रकाशित करा देते। इतने भारी ग्रन्थ का नूतन संस्करण प्रकाशित करने में भले-चङ्गे परिश्रम की आवश्यकता होती है। हिन्दी-प्रेमियों से अविदित नहीं है कि इसमें २६०० पृष्ठों से कुछ अधिक मैटर एवं हिन्दी के ४०० प्राचीन तथा नवीन कवियों और लेखकों का यथायोग्य वर्णन है और बहुतों की रचनाओं के नमूने भी दिये गये हैं।

यह भारी ग्रन्थ प्रायः १२ वर्ष हुए प्रकाशित हुआ था, तबसे हिन्दी के बहुतेरे नये लेखक विदित अथवा प्रकट हुए हैं एवं बहुतों के विषय में नयी-नयी बातें ज्ञात हुई हैं। ग्रन्थ में कुछ भूलें भी अवश्य ही रह गयी थीं जिनका यथासम्भव ठीक होना नितांत वांछनीय है। प्रथम संस्करण की प्रतियां अब प्रायः हस्तगत भी नहीं होतीं, इन सब कारणों से द्वितीय संशोधित संस्करण को शीघ्र निकालना निश्चित हो गया है।

अतः समस्त हिन्दी-प्रेमियों से हमारी विनीत भाव से प्रार्थना है कि इस महत्कार्य में हमारी यों सहायता करने की कृपा करें कि अपनी और अपने जानेहुए अन्य कवियों और लेखकों की जीवनियां लिख भेजें तथा विरचित ग्रन्थों का नाम, विस्तार विषय, निर्माणकाल, यदि वे मुद्रित हो चुके हों तो छापाखाने का नाम एवं पता, और जानने योग्य बातें तथा रचनाओं के कुछ नमूने भी भेजने की अनुकम्पा करें। हमारे इस ग्रन्थ में जो स्पष्ट भूलें जान पड़ें

उन्हें भी लिख देना अच्छा होगा, पर जहाँ केवल मतभेद हो उन झगड़ों में पड़ने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जिन महाशयों से इस प्रकार कुछ भी सहायता मिलेगी उनके शुभनाम ग्रन्थकी भूमिका में अथवा अन्यत्र किसी दृष्टि-आकर्षक स्थान पर छापे जायंगे और सहायता की मात्रा का भी वर्णन कर दिया जायगा।

यदि अन्य समाचार एवं सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक एवं प्रकाशक महानुभाव इस विज्ञापन को प्रकाशित करने की कृपा करेंगे तो हम उनके विशेष कृतज्ञ होंगे। हम अपने आर्थिक लाभ के लिये यह ग्रन्थ नहीं छपवाते, वरन् इसके प्रकाशित करने का अधिकार उस सज्जन या संस्था को दिया जायगा जो इसे अच्छे रूप में छापने एवं कम मूल्य पर बेचने का वचन देगी। इससे हम विज्ञापन-प्रकाशकों को धन्यवाद के सिवा और कुछ देना नहीं चाहते।

निवेदक

गणेश विहारी मिश्र
श्याम विहारी मिश्र
शुकदेव विहारी मिश्र } "मिश्र-बन्धु"

गोलागञ्ज, लखनऊ
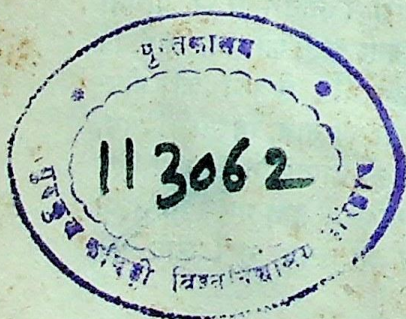
सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

निम्नलिखित पुस्तकें पौने मूल्य पर मिल सकेंगी—

१—देशभक्त लाजपत

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

लालाजी के जीवन में देश-सेवा करते हुए कैसी कैसी घटनाएँ हुई हैं, उन्हें क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कष्ट सहन करते हुए भी वे अपने पथ पर कैसे डटे रहे हैं, आदि सभी बातें लेखक ने इस पुस्तक में यथास्थान संपादित कर दी हैं। पृष्ठ संख्या ३२५ मूल्य १), रियायती मूल्य केवल ॥।)

२—नीति-दर्शन

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

यह नीतिशास्त्र की अद्वितीय पुस्तक है। हिन्दू-धर्म-व्यवस्था, राजनीति, समाज संगठन आदि सभी ज़रूरी बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डाली गयी है। पृष्ठ संख्या २१० मूल्य ॥।), रियायती मूल्य केवल ॥-)

सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में छपा।

साहित्य भवन लिमिटेड द्वारा प्रकाशित उत्तमोत्तम पुस्तकें

१—साहित्य-विहार—मूल्य ॥।≋)

यह वियोगीजी के चुने हुए भक्ति विषयक और साहित्य विषयक ११ सुन्दर लेखों का संग्रह है। इस पर निम्नलिखित सम्मतियां देखिए—

शिक्षा (पटना) इस तरह की पुस्तक हिन्दी साहित्य में प्रकाशित नहीं होती हैं। सरस हृदय का झंकार इस पुस्तक के प्रत्येक सन्दर्भ में सुनाई पड़ता है। कवि हृदय, कवि-नयन, किस पदार्थ को किस प्रकार समझता है, किस तरह देखता है यह बात आप इस पुस्तक के देखने से जान सकते हैं। हम इस पुस्तक को पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुए हैं।

प्रभा (कानपुर) वियोगी हरिजी ने एक अजीब तबियत पाई है। प्रस्तुत पुस्तक क्या है हरिजी के दिलकी एक धड़कन है। ब्रजभाषा के कवियों को आपने इसमें एक अनूठे ढंग से पेश किया है।······प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की उक्तियों पर हरिजी की चुभती हुई आलोचना चित्त को लुभा लेती है। पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक अनोखी वस्तु है।

२—श्रीछद्मयोगिनी—मूल्य ।)

इस पुस्तक में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की छद्म लीला का वर्णन है। इस पर श्रीमान् श्रीधर पाठकजी की सम्मति देखिए—

"भक्तिपथ-पथिक प्रेम-रसरसिक श्रीवियोगीहरिजी विरचिता हरिश्चन्द्रीय "चन्द्रावली" की सहोदरा यह नूतन नाटिका प्रेमाभिषिक्तों के लिये अनिर्वचनीय आनन्द-सुधा की सततवाहिनी वहा है। आशा है, इससे बहुतों को प्रियतत्व का पता प्राप्त होगा।

३—कविकीर्तन—ले० श्रीवियोगीहरि मूल्य ॥)

इसमें चन्द बरदाई से लेकर आधुनिक काल के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों का कविता में गुणगान किया गया है।

४—गल्पलहरी—लेखक स्वर्गीय श्रीगिरिजाकुमार घोष मूल्य १)

घोष बाबू से हिन्दी संसार अच्छी तरह परिचित है। यह पुस्तक आपकी चुनी हुई सुन्दर गल्पों का संग्रह है।

५—होमर गाथा—संपादक स्वर्गीय श्रीगिरिजाकुमार घोष

महाकवि होमर के ओडिसी और इलियड नामक काव्यों का भावानुवाद मूल्य १); इसके अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकें हमारे यहां मिलती हैं।

पुस्तकें मिलने का पता—साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।